बौद्ध हिमालयग्रन्थमाला–१

लदाख-प्रभा

लदाख में बौद्धविद्याओं का ऐतिहासिक एवं दार्शनिक सन्दर्भ–३

केन्द्रीय बौद्ध विद्या संस्थान·लेह लद्दाख

केन्द्रीय बौद्धविद्यासंस्थान, लेह, लदाख

लदाख-प्रभा-३



1/Bndd. Lib

Rev. Swami Samranandaji
Maharaj.
Pradhan.
~~Shanda~~ Sarda Peetha.
Calcutta.
2.9.1985.

लदाख-प्रभा [३]

लदाख में बौद्ध विद्याओं का ऐतिहासिक एवं दार्शनिक सन्दर्भ

प्रधान सम्पादक

टशी पल्जोर

प्रधानाचार्य

सम्पादक

श्री रामशंकर त्रिपाठी

श्री सेम्पा दोर्जे

केन्द्रीय बौद्ध विद्या संस्थान, लेह, लदाख

बुद्धाब्द २५२९] [ख्रीस्ताब्द १९८५

प्रकाशक एवं प्राप्ति-स्थान
प्रधानाचार्य
केन्द्रीय बौद्ध विद्यासंस्थान,
चोगलमसर, लेह, लदाख

प्रथम संस्करण—५०० प्रति

मूल्य—रु०

मुद्रक
तिब्बती प्रेस,
सारनाथ, वाराणसी

ḶADĀKH-PRABHĀ [3]

LAḌAKH MEṄ BAUDDH VIDYĀUṄ KĀ ATIHĀSIK EVAṀ DĀRSHANIK SANDARBH

General Editor

Tashi Paljor

Principal

Editor

Shri Rām Shaṅkar Tripāṭhī

Shri Sempā Dorje

Kendriya Bauddha Vidya Sansthan

LEH, LADAKH

B. E. 2529] **[C. E. 1985**

Published by

Principal

Kendriya Bauddha Vidya Sansthan

Chogalamasar, Leh, Ladakh

First Edition : 500 Copies

Price : Rs.

Printed at

Tibati Press,

Saranath, VARANASI

प्रकाशकीय

भगवान् बुद्ध की प्रज्ञा और करुणा से आलोकित लदाख शेष भारत से प्रायः अपरिचित रहा है। हिमालय की अधित्यका में चारों ओर से हिमाच्छादित पर्वत-श्रेणियों के मध्य में स्थित यह भारतीय भूभाग न केवल प्राकृतिक सुषमा की दृष्टि से ही दर्शकों के आकर्षण का केन्द्र रहा है, अपितु धर्म, दर्शन, विविध कलाओं एवं आन्तरिक उपासनाओं की दृष्टि से भी यह शताब्दियों से एक तपस्वी की भाँति मौन एकान्त साधना में निरत रहा है। धर्म, दर्शन, कला साधना, ज्योतिष, चिकित्सा आदि प्राचीन भारतीय परम्परागत विद्याओं के अध्ययन, अध्यापन एवं शोध के साथ-साथ लदाख की विशेषताओं से परिचय कराना भी लेह-स्थित 'केन्द्रीय बौद्ध विद्या-संस्थान' का उद्देश्य रहा है। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए संस्थान ने सन् १९८३ में तृतीय अखिल भारतीय परिसंवाद गोष्ठी का आयोजन किया, जिसका विषय था—"लदाख में बौद्ध विद्याओं का ऐतिहासिक एवं दार्शनिक सन्दर्भ"।

हमें सन्तोष है कि देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों और उच्च शिक्षासंस्थाओं के विशिष्ट विद्वानों ने बड़ी संख्या में सम्मिलित होकर अपने उच्च कोटि के निबन्धों और गम्भीर बिचार-विमर्श के द्वारा न केवल हमारे उत्साह को बढ़ाया, अपितु प्राचीन उत्कृष्ट भारतीय संस्कृति के पुनर्जागरण में लदाख के महत्त्वपूर्ण योगदान की सम्भावना का भी आकलन किया।

विद्वानों की राय में ईसा से पूर्व की शताब्दियों में ही लदाख का बौद्ध धर्म से सम्बन्ध स्थापित हो चुका था। प्रारम्भ में अशोक ने और उसके बाद कनिष्क ने इसके प्रचार-प्रसार एवं विकास में योगदान किया। सम्भवतः सर्वास्तिवादियों का यह क्षेत्र प्रमुख गढ़ रहा हैं। मध्यकाल में बाह्य आक्रमणों की वजह से भारत के मैदानी क्षेत्र में जब बौद्ध संस्कृति का विलोप हो गया तो लदाख के बौद्धों ने पड़ोसी तिब्बत से अपना सम्पर्क स्थापित किया। भारतीय और भोटदेशीय विद्वानों के दीर्घकालीन सहयोग से तिब्बत उन दिनों महायानी बौद्ध धर्म, दर्शन, संस्कृति, उपासनाविधियों, विविध कलाओं और प्राचीन विद्याओं के अध्ययन-अध्यापन का प्रमुख केन्द्र हो गया था। लदाख ने उन समस्त विद्या-शाखाओं और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों

का अपने यहाँ विकास किया। इस उत्कृष्ट एवं गहन परम्परा का तिब्बत से बाहर लदाख ही एकमात्र सबसे बड़ा उत्तराधिकारी रहा है। दुर्भाग्य से विश्व के मानचित्र से तिब्बत का स्वतन्त्र अस्तित्व बाधित हो जाने से उस महनीय परम्परा के संरक्षण और विकास का गुरुतर दायित्व भी अब लदाख पर है। भारत-सरकार की प्रेरणा और सहयोग से 'केन्द्रीय बौद्ध विद्या संस्थान' इस दिशा में प्रयत्नशील है। सहृदय विद्वानों की सहज अनुकम्पा एवं सक्रिय सहयोग भी नितान्त अपेक्षित है, जो हमें सहज सुलभ है।

गोष्ठी में पठित निबन्धों का संग्रह पुस्तक के रूप में विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अपार प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। इसमें हिन्दी, अंग्रेजी एवं तिब्बती भाषाओं में विद्वानों के उत्कृष्ट निबन्ध संकलित हैं। हमारा विश्वास है कि इनसे लदाख की प्राचीन बौद्ध विद्याओं की ऐतिहासिक और दार्शनिक परम्परा पर निश्चय ही प्रकाश पड़ेगा। इस दिशा में सहयोग के लिए विद्वानों के हम आभारी हैं।

दिनांक २ जुलाई १९८५
(गुरुपूर्णिमा)

टशी पलजोर
प्रधानाचार्य
केन्द्रीय बौद्ध विद्यासंस्थान, लेह, लदाख

केन्द्रीय बौद्ध विद्या-संस्थान, लेह, लदाख द्वारा आयोजित अखिल भारतीय परिसंवाद-गोष्ठी में प्रस्तुत निबन्धों का संग्रह।

निबन्धों में व्यक्त विचार एवं शोधनिष्कर्ष निबन्ध-लेखकों के अपने हैं। उनका सम्पूर्ण श्रेय एवं उत्तरदायित्व लेखकों का है।

—सम्पादक

लदाख में बौद्ध विद्याओं का ऐतिहासिक एवं दार्शनिक सन्दर्भ

विषय-सूची

२. अंग्रेजी निबन्ध

३. तिब्बती निबन्ध

लदाख-प्रभा—३

लदाख में बौद्ध-विद्याओं का ऐतिहासिक एवं दार्शनिक सन्दर्भ

हिन्दी निबन्ध

विद्यास्थाने पंचविधे योगमकृत्वा
सर्वज्ञत्वं नैति कथंचित् परमार्यः ।
इत्यन्येषां निग्रहणानुग्रहणाय
स्वाज्ञार्थं वा तत्र करोत्येव स योगम् ॥

(महायानसूत्रालंकारः ११ : ६६)

लदाख में बौद्ध विद्या : परम्परा और परिवर्तन[1]

श्री कृष्णनाथ

लदाख में बौद्ध विद्या की परम्परा तिब्बत से और तिब्बत की परम्परा मूल रूप से भारत की बौद्ध-परम्परा से जुड़ी हुई है। लदाख में तिब्बत से सम्पर्क के पूर्व धर्म और विद्या की क्या स्थिति रही है, यह इतिहास ज्ञात नहीं है। यह स्वतन्त्र खोज का विषय है। लदाख में प्रारम्भ में गोनपा में गुरु के साथ पूजा-पाठ, लिपि, भाषा का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त कर तिब्बत में उच्च अध्ययन के लिए जाने की प्रथा रही है। तिब्बत में बौद्ध-विद्या की परम्परा प्रायः सातवीं शताब्दी से लगा कर, एकाध अन्तराल को छोड़कर, बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक जीवित-जाग्रत रही है। जब कि अपने मूल देश में यह शताब्दियों से विच्छिन्न। इसलिए देश, काल, पात्र की दृष्टि से मैं इस विद्या परम्परा के बारे में और उसकी समस्याओं और सुधार-बिगाड़ की दिशाओं के बारे में कुछ कहने का अधिकारी नहीं। मेरे और लदाख की परम्परा के बीच मेरे अज्ञान का हिमालय है। इसलिए इस हिमवत देश से यथाशक्ति तद्रूप होकर (1) लदाख में बौद्ध-विद्या की परम्परा और (2) इसमें हो रहे परिवर्तन, और, (3) भविष्य की दिशा का यहाँ संकेत मात्र किया जा सकता है। इस पर निर्णय का अधिकारी वही है, जो लदाख की विशिष्ट प्रकृति, परिस्थिति और आकांक्षा से तदाकार हो, स्वयं उसका स्वरूप हो। वही जान सकता है जो वही है या हो जाता है, अन्यथा नहीं।

विदित है कि महायान बौद्ध परम्परा में पाँच महाविद्या मानी गयी हैं: 1–अध्यात्म विद्या, 2–हेतु विद्या, 3–शब्द विद्या, 4–चिकित्सा विद्या और 5–शिल्प

---

१. केन्द्रीय बौद्ध विद्या संस्थान, चोगलमसर-लेह-लदाख द्वारा 23 अगस्त से 27 अगस्त, 1983 तक लदाख में 'बौद्ध विद्याओं का ऐतिहासिक एवं दार्शनिक संदर्भ' विषय पर आयोजित गोष्ठी में प्रस्तुत पर्चा। पर्चे के प्रथम प्रारूप पर विचार विमर्श के लिए आचार्य समदोङ् रिन्पोछे, प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय, पं० रामशंकर त्रिपाठी, प्राध्यापक श्री रमेशचन्द्र तिवारी के प्रति हृदय से आभारी हूँ।

कर्मस्थान विद्या।[1] विद्या का यह ढाँचा अध्यात्म विद्या की नींव पर प्रतिष्ठित है। किन्तु इसमें आधार और ऊपरी ढांचे जैसा यान्त्रिक सम्बन्ध नहीं। अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है।

बुतोन रिन्पोछे [**हिस्ट्री आफ बुद्धिज्म** तिब्बती मूल से अनूदित, हाइडलबर्ग, 1931] ने सद्धर्म के पढ़ने, पढ़ाने और दोनों के अनेक लाभ बताये हैं। कहा गया है कि **व्याख्यायुक्ति** के अनुसार तथागत के सूत्र के पढ़ने के पाँच लाभ बताए गये हैं: (1) अज्ञात का ज्ञान, (2) पढ़े हुए अंशों का पुनर्विचार, (3) संशय का कटना, (4) सम्यक् दृष्टि का उत्पन्न होना, और (5) प्रज्ञा का गंभीर अर्थ-ज्ञान होना।

इस प्रकार विद्या अध्ययन से अन्ततः प्रज्ञा उत्पन्न होती है। बौद्ध परम्परा में शील, समाधि, प्रज्ञा त्रिशिक्षा है। शील पर प्रतिष्ठित होकर चित्त की भावना के द्वारा प्राप्त प्रज्ञा से ही नर नारी (तृष्णा रूपी) जटा को काट सकते हैं। इस प्रकार ज्ञान की पहचान काटना या दिखा देना है। अविद्या का काटना, अविद्या का दिखा देना। जैसे जौ का काटना, या अंधकार में दिया दिखाना। सो ही प्रयोजन लदाख में विद्या का है।

सामान्य रूप से यह विद्या-मात्र का प्रयोजन है। किन्तु पाँच विद्याएँ बौद्ध परम्परा के लिए विशेष हैं। सामान्यतः प्राचीन भारतीय परम्परा में चार विद्याएँ मानी गयी हैं: आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति। आन्वीक्षिकी न्यायविद्या

---

१. महायानसूत्रालंकार (11,66) में कहा गया है:—

विद्यास्थाने पंचविधे योगमकृत्वा सर्वज्ञत्वं नैति कथंचित्परमार्यः।
इत्यन्येषां निग्रहणानुग्रहणाय स्वाज्ञार्थं वा तत्र करोत्येव स योगम्॥

अर्थात् पाँच प्रकार की विद्या प्राप्त किये विना परम आर्य को सर्वज्ञत्व की प्राप्ति कथंचित् नहीं हो सकती। इनका अन्य के निग्रह-अनुग्रह और स्वयं ज्ञान के लिये योग करे।

इस विद्यास्थान श्लोक की व्याख्या करते हुए कहा गया है:—

पंचविधं विद्यास्थानम्। अध्यात्मविद्या, हेतुविद्या, शब्दविद्या, चिकित्साविद्या, शिल्पकर्मस्थानविद्या च। तद्यदर्थं बोधिसत्त्वेन पर्येषितव्यं तद्दर्शयति। सर्वज्ञत्वप्राप्त्यर्थमभेदेन सर्वम्। भेदेन पुनर्हेतुविद्यां शब्दविद्यां च पर्येषते निग्रहार्थमन्येषां तदनधिमुक्तानाम्, चिकित्साविद्यां शिल्पकर्मस्थानविद्यां चान्येषामनुग्रहार्थं तदर्थिकानाम्। अध्यात्मविद्यां स्वयमाज्ञार्थम्।

[**महायानसूत्रालंकार**, बुद्धिस्ट संस्कृत टैक्स्ट्स, नं० 13, दरभंगा, 1970, पृ० 70]

और आत्म-विद्या है। इसके अन्तर्गत, सांख्य, योग और लोकायत हैं। त्रयी में धर्म-अधर्म का प्रतिपादन है। इसके अन्तंगत हैं—ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद। वार्ता में अर्थ-अनर्थ का प्रतिपादन है। इसके अन्तर्गत हैं— कृषि, पशुपालन, वाणिज्य आदि। दण्ड नीति का विषय है :—नय-अनय। लोकयात्रा इस दण्ड नीति पर निर्भर है। अब इनकी तुलना यदि पाँच बौद्ध महाविद्या से करें तो भेद-अभेद दोनों हैं। आन्वीक्षिकी में बौद्ध विद्याओं के दो प्रकार—अध्यात्म और न्याय विद्या सम्मिलित हैं। त्रयी के लिए, वेद के लिए बौद्ध परम्परा में स्थान नहीं है। किन्तु उसके स्थान पर बौद्ध त्रिपिटक हैं। यह सब शब्द है। वैसे बौद्ध विद्याओं में शब्द के अन्तंगत काव्य, नाटक, छन्द, ज्योतिष, कोश आदि की उपविद्याएँ हैं। विद्या-उपविद्या का वर्गीकरण सर्वं सर्वत्र सर्वदा एक सा नहीं है। वार्ता और दण्डनीति का बौद्ध विद्या में स्थान नहीं है। आचार्य नागार्जुनकृत "रत्नावली" और 'सुहृल्लेख" में राजनीति का निरूपण है; बौद्ध विश्व में अर्थ-अनर्थ और नय-अनय की प्रतिपादिनी वार्ता एवं दण्डनीति विद्या का किसी न किसी प्रकार व्यवहार तो होता ही है। किन्तु इन्हें बौद्ध विद्यास्थान में शरीक नहीं किया गया है। सम्भवत: यह प्रस्थान एवं प्रयोजन की भिन्नता के कारण है। बौद्ध विद्या यत्किंचित् है गृहस्थों के लिए किन्तु बहुत करके विहारों में भिक्षु संघ के लिए है, वर्णाश्रम व्यवस्था या अन्य प्रकार की सत्ता-व्यवस्था के लिए नहीं है, जैसी कि बौद्ध-भिन्न प्राचीन भारतीय विद्या है। जो हो, इन चार विद्याओं का विद्यात्व धर्म-अधर्म का ज्ञान कराने में है। भिन्न प्रस्थान के होते हुए बौद्ध विद्या का भी यह विद्यात्व है। किन्तु प्रस्थान भेद से दृष्टि भेद है। पाँच बौद्ध विद्याओं का पर्येषण सर्वज्ञता के लिए है। सर्वज्ञता के बिना बुद्धत्व नहीं। सर्वज्ञता की अपेक्षा है कि वह पंच-विद्याओं से अवगत हो। इसमें हेतु, शब्द, शिल्प, चिकित्सा विद्या प्रधान रूप से परार्थ के लिए, अध्यात्म-विद्या स्वाज्ञार्थ है। फिर, महायान परम्परा में प्रज्ञा-उपाय, शून्यता-करुणा, युगनद्ध हैं। प्रज्ञा से वह देखता है, करुणा के वश क्रियाशील है, परार्थरत है, प्राणि-मात्र के हित में रत है। इसके आगे बोधिसत्त्व को अरसिक निर्वाण की स्पृहा नहीं।

आधुनिक युग में विद्या क्या है ? इसका प्रयोजन क्या है ? इस पर एक मत नहीं, अनेक मत, मतान्तर, दर्शन शिक्षा के हैं। उनके विस्तार में जाने का यहाँ न तो अवकाश है, न प्रयोजन। किन्तु प्रश्न है कि क्या आधुनिक विज्ञान जो ज्ञान स्थापित करता है, वह परम्परागत बौद्ध दृष्टि से ज्ञान है ? प्रज्ञा है ?

इसकी परीक्षा करें तो देखेंगे कि आधुनिक विज्ञान और टेक्नालाजी का भी एक प्रकार का अपना शील है। विशेषकर मृषावाद से विरत रहने का। सत्य के जबर्दस्त आग्रह और आचार के बिना वैज्ञानिक खोज संभव नहीं। इसी तरह वैज्ञानिक प्रयोग में भी एक प्रकार की समाधि, ध्यान-भावना, एकाग्रता है। किन्तु यह चित्त मात्र का व्यापार नहीं है। बाह्य भी है। यह बौद्ध परम्परा-प्राप्त शील, समाधि से भिन्न है, किन्तु है। इसी प्रकार आधुनिक प्राकृतिक और समाज विज्ञानों में प्राप्त ज्ञान-विज्ञान भी परम्परागत बौद्ध दृष्टि से एक सीमित अर्थ में प्रज्ञा हो सकता है। इस तरह संसार के यथाभूत ज्ञान में सहायक हो जाता है। इतना तो दोनों में सामान्य है। फिर विशेष-विशेष तो दोनों का भिन्न-भिन्न है। आधुनिक विज्ञान और टेक्नालाजी की विद्या और कला ने उत्पादन के साधनों का अभूतपूर्व विकास किया है। इसने औद्योगिक क्षेत्र में लोकयात्रा के निर्वाह की, जीवन स्तर को उन्नत बनाने की अपूर्व भौतिक सामग्री उपलब्ध करायी है। यह समृद्धि अपने आप में एक चीज है। दरिद्रता से बढ़कर कोई पाप नहीं। स्वेच्छया अपनायी हुई गरीबी तो साधना है। उसका अपना स्थान है। किन्तु बलात् थोपी गयी गरीबी अभिशाप है। जिसके पास साधन नहीं, उसके पास धर्म, विद्या और शान्ति नहीं। किन्तु पश्चिम में जहाँ भौतिक, बाह्य का इतना विकास हुआ है वहाँ अन्तर, आत्म, अध्यात्म का उतना विकास नहीं। इस दृष्टि से अध्यात्म विद्या का सिर्फ परम्परागत बौद्धों के लिए नहीं, आधुनिक मनुष्य मात्र के लिए उपयोग है।

बौद्ध परम्परा में यह शील-काल है। इस साधना काल में प्रज्ञा समाधि के साथ-साथ शील का अन्तःसम्बन्ध वस्तुओं और सेवाओं के प्रचुर उत्पादन से जुड़े तो मानव कल्याण हो। विशेषकर प्राणि-हिंसा से विरत रहने का शील, काम-मिथ्याचार से विरत रहने का शील, और सुरा आदि पान से विरत रहने का शील। रास्ता क्या है ? आधुनिक काल से विज्ञान-टेक्नालाजी ले लें प्राचीन बौद्ध परमम्परा से शील ले लें, दोनों का मिला कर एक मिश्रण बनाएँ, और उस पथ से प्राणिमात्र का कल्याण हो, ऐसा सरल मार्ग नहीं। आर्थिक विकास और शील का आन्तरिक, अटूट, अद्वय सम्बन्ध स्थापित हो। यह शायद एक नए परिपाक में संभव है।

फिर, बौद्ध परम्परा में जो प्राचीन—नवीन का, जिङ्मा, सरमा का द्वन्द्व है, वह आज की दृष्टि से बुनियादी नहीं। आज बुनियादी द्वन्द्व प्राचीन बौद्ध सहित

समस्त प्राच्य, आध्यात्मिक परम्परा का और आधुनिक पाश्चात्य भौतिक परम्परा का हैं। ज्ञातव्य है कि तिब्बत में बौद्ध सम्प्रदायों का काल, देश, शिक्षा की दृष्टि से अनेक प्रकार का विभाजन है। इनमें से ञिङ्मा अर्थात् प्राचीन और सरमा अर्थात् नवीन का भेद प्रमुख है। प्राचीन काल से आचार्य स्मृतिज्ञान तक बौद्ध तन्त्र का जो विकास तिब्बत में हुआ वह ञिङ्मा कहलाता है। फिर, लोचावा रिनछेन् जाङ्पो (10 वीं शती) के बाद से जो तन्त्रों का तिब्बत में अनुवाद हुआ उसके बाद का काल सरमा। इसके अन्तर्गत हैं—करग्युद्-पा, साक्या—पा, गेलुग्—पा। इस प्रकार जो तिब्बती परम्परा का नया भी है, सरमा—पा है, वह भी प्रायः 1,000 वर्ष पुराना है। इन सम्प्रदायों में मौलिक भेद नहीं, एकता है। इस दृष्टि से सम्प्रदाय-शास्त्र का अध्ययन—अनुसंधान भी हो, किन्तु प्रधानता मूल शास्त्र की हो, सो ही सम्यक् है।

जो हो, सरमा, नयों में भी गेलुग्—पा जो सबसे नया है वह भी आचार्य चोंखापा (14 वीं शताब्दी) द्वारा प्रवर्तित है। उन दिनों पाश्चात्य आधुनिक सभ्यता की बुर्जुआ और मार्क्सवादी-लेनिनवादी शाखाओं का उदय नहीं हुआ था। वैसे तो यह सभ्यता प्राचीन ग्रीस-रोम और मध्यकाल के महापुरुषों और सन्तों से अप्रत्यक्षरूप से जुड़ी हुई है, किन्तु प्रत्यक्ष रूप से नहीं। तो प्रत्यक्ष आधुनिक सभ्यता के पुनर्जागरण काल के पूर्व तिब्बत में चोंखापा जी सूत्र और तन्त्र का अपना परिपाक कर गये हैं। उसके बाद लगभग 6 शताब्दियों से, 14 वीं से लगा कर 20 वीं शताब्दी तक तिब्बत में बौद्ध विद्याओं का नवीनीकरण नहीं हुआ। ज्ञान अवरुद्ध हो गया। जीव-जगत् का प्रवाह रुका नहीं। इसलिए विद्या और वास्तविकता में खाईं पड़ गयी। इस प्रकार बौद्ध विद्या परम्परा के तार्किक ढाँचे में कमी नही है। वह तो बहुत युक्तिपूर्वक, जतन से गढ़ा है। फिर भी यह अपर्याप्त और अपूर्ण है। अपर्याप्तता को स्वीकार करने में परम्परा के प्रति अश्रद्धा नहीं है। यह तो यथाभूत दर्शन करना है। इसके बाद इस अपूर्णता को यथासंभव पूर्ण करने का रास्ता खुलता है। सर्वाकारज्ञता, सर्वज्ञता का मार्ग अपूर्णता से हो कर है। विद्या से विनय आता है।

शाश्वतवादी बौद्ध कह सकते हैं कि शाक्य मुनि ने जो आर्यसत्य की व्याख्या की है। वह तो शाश्वत है, नित्य हैं, ध्रुव है उसमें देश, काल, परिस्थिति के भेद से क्या फर्क पड़ता है ? एक अर्थ में यह ठीक है। किन्तु संदर्भ के बदलने के साथ, सत्य

की भाषा और संवेदना भी बदलती है। शब्द-अर्थ का नया-नया उन्मेष होता है। उदाहरण के लिए मध्यकाल में सिद्ध सरहपाद का वचन है—

जग उपपाअणे दुक्ख बहु, उप्पण्णउ तहि सुह-सार।

जग में उत्पन्न होने से यदि दुःख बहुत है तो सुख का सार भी वहीं है। दुःख सत्य का इतने से ही अर्थ, अर्थ की छाया में अन्तर पड़ जाता है। फिर, आधुनिक सिद्ध-साधक दुःख को जैसे देखते हैं, वस्तुत्व में, संगठन में, मान्यताओं, रूढ़ियों, रीति, रिवाजों, आदतों, टेक्नालाजी आदि में उसका इस रूप में प्राचीन काल में बखान नहीं हुआ हैं। इसी प्रकार दुःखसमुदय, मार्ग सत्य और निरोध की व्याख्या के बारे में भी। इसे स्वीकार न करना तो अनित्यता का निषेध है और शाश्वत अन्त में पतित होना है।

फिर अध्यात्म विद्या की भी अन्य परम्पराएँ हैं—शैव, शाक्त, जैन, वैष्णव, ईसाई, सूफी तथा अन्य। ये सब मनुष्य की आध्यात्मिक जरूरतों और साधनाओं से विकसित हुई हैं। इसके अलावा शब्द, प्रमाण, शिल्प और चिकित्सा विद्याओं में भी पिछली शताब्दियों में बहुत काम हुआ है। इनसे ज्ञान परिपूरित और शुद्ध होता है। इनके लिए अपने खिड़की—दरवाजे बन्द रखना तो ज्ञान का मार्ग नहीं, घुटन का है। लदाख में विद्या के लिए खिड़की—दरवाजे बन्द नहीं करना है, हाँ, किसी हवा में, खास कर पश्चिमी हवा में बह नहीं जाना है।

'अस्मिन् सति, इदं भवति' यह है तो यह होता है। यह प्रतीत्यसमुत्पाद बौद्ध विद्या पर भी लागू है। बौद्ध विद्या परम्परा के लिए आधुनिक काल में प्रमुख रूप से निम्नलिखित परिवर्तन के कारण उपस्थित हैं :

1—तिब्बत में कम्युनिस्ट चीन का आना और परम पावन दलाई लामा के नेतृत्व में तिब्बत की विद्या परम्परा का तिब्बत से निष्क्रमण।

2—राज्य और सद्धर्म के सम्बन्ध का विच्छिन्न होना।

3—लदाख का भारत गणराज्य का अंग-उपांग होना, और फलतः नए "त्रिरत्न" का शरण-गमन करना। ये हैं :—जनतन्त्र, समाजवाद और धर्म-निरपेक्षता।

4—संचार के तीव्र साधनों का विकास होना, लदाख का खुलना और टूरिस्ट आक्रमण का होना, और

5—लदाख में सार्वभौम, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का प्रारम्भ होना।

हिमालय की बौद्ध परम्परा में इन परिवर्तनों के प्रभाव के बारे में विस्तार से अन्यत्र कहा जा चुका है। यहाँ उसका विस्तार अनावश्यक है। लदाख में बौद्ध परम्परा इस्लाम और ईसाइयत का प्रथम आघात जैसे-तैसे झेल ले गयी। किन्तु आधुनिकीकरण के इस आघात से जैसे देश में वैसे लदाख में जैसे सांस्कृतिक रिक्तता आ गयी है। लदाखी के लिए यह कहना कठिन है कि वह किस परम्परा का वारिस है। वैसे वह अगर मुसलमान नहीं है, या कश्मीरी ब्राह्मण नहीं है तो बौद्ध है। लेकिन यह तो सिर्फ लेबुल है। बौद्ध होना क्या है ? क्या नहीं है ? सिर्फ शब्द नहीं। पानी, पानी, पानी कहने से प्यास नहीं बुझती। प्यास पानी से जाती है। क्या बौद्ध विद्या का यह जल उसे प्राप्त है।

अतः प्रश्न इतना है कि इस सांस्कृतिक रिक्तता को पूरने की दृष्टि से, परम्परागत बौद्ध विद्या का प्राण क्या हो ? प्राथमिकता क्या हो ?

प्राथमिकता के चुनाव का प्रश्न लक्ष्य के झुकाव का प्रश्न है। प्रश्न यह है कि लदाखी कौम का लक्ष्य क्या है ? उसके मुताबिक ही उसकी विद्या की प्राथमिकता का निर्धारण हो सकता है, अन्यथा नहीं। लदाख में बौद्ध विद्या का प्राण क्या हो ? मूल मन्त्र क्या हो ? यह निर्णय तो लदाख की बौद्ध परम्परा का काम है। सुझाव के तौर पर यह कहा जा सकता है कि लक्ष्य है लदाख की विशिष्ट संस्कृति की रक्षा और वृद्धि और शुद्धि के साथ-साथ मानव अखण्डता, प्राणिमात्र की दुःख-निवृत्ति, और सुख शान्ति की प्राप्ति करना। इस दृष्टि से लदाख में विद्या की परम्परा अध्यात्म विद्या पर ही प्रतिष्ठित हो सकती हैं। यदि पाश्चात्य आधुनिकता, भौतिकता, इहलौकिकता की आँधी में अध्यात्म विद्या का आधार खिसक गया तो यह लदाख के लिए और मनुष्य मात्र के लिए मृत्यु है। इस दृष्टि से परम्परागत बौद्ध सूत्र और तन्त्र का अध्ययन, अनुसंधान और अभ्यास बौद्ध विद्या परम्परा की विशेषता है, जो मेरी विनम्र दृष्टि में कायम रहनी चाहिए। इस दृष्टि से पालि, संस्कृत, तिब्बती भाषाओं का ज्ञान आवश्यक है। किन्तु आधुनिक विज्ञान और टेक्नालॉजी की उपेक्षा लदाख में न सम्भव है, न श्रेयस्कर। इस प्रकार मध्यम प्रतिपदा का एक नया रूप जरूरी है। प्राचीन से चिपके रहना एक अंत में पतित होता है, आधुनिकता में बह जाना दूसरे अंत में पतित होना है। दोनों अन्तों को छोड़कर जो मार्ग है, वह मध्यम मार्ग ही सम्बोधि का मार्ग है, अनदेखे में देखने की आँख देने वाला है। लेकिन प्रश्न तो यही है कि वह मार्ग क्या है ?

यह मार्ग एक बार में नहीं बखान किया जा सकता। जिस प्रकार भगवान्

बुद्ध के सारे शिक्षापद भी एक बार नहीं कहे गये, उसी प्रकार परम्परागत बौद्ध शिक्षा में आवश्यक सुधार या बिगाड़ भी एक साथ नहीं हो सकते। एक समय में एक कदम काफी है। शायद समस्त लदाख के लिए एक मार्ग भी नहीं। इसलिए प्रयोग की दृष्टि से निम्नलिखित प्रयोग सुझाए जा सकते हैं :

1—परम्परागत शिक्षा गोनपा में हो। फिर मैसूर में अपने-अपने सम्प्रदाय के विहार में प्रवेश हो।

2—आधुनिक शिक्षा लेह, श्रीनगर, दिल्ली, हार्वर्ड, लेनिनग्राड या तोक्यो इत्यादि में हो।

3—परम्परा-आधुनिकता के अन्तों का निरसनकर मध्यम प्रतिपदा की शिक्षा केन्द्रीय बौद्ध संस्थान, चोगलमसर, लेह (लदाख) में हो। या फिर, केन्द्रीय तिब्बती उच्च शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी में। इन संस्थाओं में यह प्रयोग और भूल और सुधार का क्रम जरूरी है।

यह तीन प्रकार विद्यार्थियों की रुचि, गति में व्यक्तिगत भेद के कारण आवश्यक हो सकता है। इनमें से किसी को एक या दूसरा या तीसरा पसंद आ सकता है। फिर भी किसी को खारिज करना कठिन है। व्यक्तिगत रूप से मुझे तीसरा प्रयोग ज्यादा सार्थक लगता है। लेकिन आग्रह नहीं। इस तीसरे प्रकार के संस्थानों में क्या पढ़ाया जाए? पाठ्यक्रम, शिक्षक, विद्यार्थी, शिक्षा की पद्धति, प्रशासन आदि क्या हो? कैसे हो? इस पर बैठकर विचार-विमर्श और व्यवहार की आवश्यकता है। व्यवहार असली चीज है। सिद्धान्त की परख व्यवहार में है।

जो हो, इतना ध्यान रहे कि इनमें बौद्ध सूत्रों के साथ-साथ बौद्ध योगतन्त्र की शिक्षा की व्यवस्था प्रधान रूप से हो। इस दृष्टि से कक्षा के साथ साथ ध्यान भी औपचारिक-अनौपचारिक जीवन-पर्यन्त शिक्षा का अंग हो। सार्वभौम शिक्षा हो, विशेषकर स्त्री-शिक्षा, किन्तु भिक्षु की शिक्षा का विशेष प्रबन्ध हो। बौद्ध परम्परा का प्राण है—शील-दर्शन-सम्पन्न भिक्षु। भिक्षु-शील का धारण करना और निर्वाह कठिन है, इसलिए ही व्रत और विनय की और अधिक आवश्यकता हैं। फिर, आधुनिक भाषाओं, प्राकृतिक एवं समाजविज्ञानों की शिक्षा भी आनुषंगिक रूप से दी जाए। कोई कह सकता है कि यह भारी बोझ है। लेकिन ज्ञान बोझ नहीं हैं, वह तो बन्धन काटता है, अंधकार में प्रकाश देता है, मृत्यु में जीवन। हाँ, इसमें एक या दूसरे अंत में, परम्परा या आधुनिकता अंत में पतित होने का, प्रवाह पतित होने का खतरा अवश्य हैं। सो तो है। द्वन्द्व है। लेकिन सत्य का मा,र्ग सर्वज्ञता का मार्ग, समरसता का मार्ग द्वन्द्व से होकर है। द्वन्द्वों में निर्द्वन्द्व अद्वय, शून्य के साक्षात्कार में है, अन्यथा नहीं।

●

बौद्ध विद्याओं के सन्दर्भ में लदाख की गोनपाओं की स्थिति तथा दायित्व

रमेशचन्द्र तिवारी

केवल बौद्ध धर्म ही नहीं, वरन् अन्य विश्वव्यापी धर्मों तथा उनसे जुड़ी संस्कृतियों के इतिहास को देखने से ज्ञात होता है कि प्रत्येक धर्म के मूल एवं प्रामाणिक ग्रन्थों के प्रकाश में आने के पश्चात् उनकी शास्त्रीय व्याख्याएँ होने लगती हैं और भाष्यों, टीकाओं आदि का भण्डार निरन्तर बढ़ता जाता है। इसी क्रम में धर्म, दर्शन तथा धर्मविद्याएँ पुष्ट और विकसित होते हैं। अपने मत के स्थापनार्थ तथा अन्य मतों एवं सम्प्रदायों का सामना करने के लिए धर्म-दर्शनों को अपना विशिष्ट प्रमाणशास्त्र भी निर्मित करना आवश्यक हो जाता है। इसी प्रकार धीरे-धीरे धर्म के विकास के साथ विद्या और ज्ञान का विस्तार होता है। विद्या और ज्ञान का यह विकास ऐसी विशाल साँस्कृतिक परम्परा का निर्माण करता है, जो केवल सम्बन्धित धर्म के अनुयायियों के लिये ही मूल्यवान् नहीं होती, बल्कि समग्र मानव संस्कृति को भी समृद्ध बनाती है। इस दृष्टि से बौद्ध विद्याओं का महत्त्व अतुलनीय है। विद्या और ज्ञान के विकास के मामले में बौद्ध धर्म तथा संस्कृति की देन, उसके उदात्त एवं आध्यात्मिक स्वरूप तथा उसके असाधारण महत्त्व की चर्चा के लिए यहाँ अवकाश नहीं है।

करीब ढाई हजार वर्षों की अवधि में बौद्ध शिक्षा परम्परा तथा विद्याओं का विकास अनेक चरणों से गुजरा हैं। इस विकासक्रम का इतिहास यद्यपि बहुत कुछ लिखा गया है किन्तु उसका सम्यक् तथा तथा सम्पूर्ण इतिहास अभी भी लिखा जाना बाकी है। लेकिन जहाँ तक लदाख में बौद्ध विद्याओं की बात है, इसमें सन्देह नहीं है कि इस प्रदेश की बौद्ध विद्या पूरी तरह से भोट विद्या है। वह भोट विद्या जो अपने मूल में भारतीय बौद्ध विद्या परम्परा है। लदाख अनेक सांस्कृतिक धाराओं का ऐसा ऐतिहासिक मिलन स्थल रहा है, जहाँ भारतीय, मध्य एशियाई, बल्ती, दरदी तथा तिब्बती आदि अनेक संस्कृतियां एक दूसरे में घुली-मिली हैं। किन्तु

इसमें सन्देह नहीं है कि विगत करीब एक हजार वर्षों के अन्दर लद्दाख में जो श्रेष्ठ संस्कृति पनपी और फैली है उसका प्रधान स्रोत तिब्बती संस्कृति और भोट विद्या है।

(I)

बौद्ध विद्या का मूल उद्देश्य धार्मिक और दार्शनिक सिद्धान्तों का विधिवत् निरूपण करना रहा है। किन्तु बौद्ध धर्म तथा बौद्ध संस्कृति के व्यापक प्रसार के साथ इस विद्या भंडार में लौकिक ज्ञान तथा विज्ञानों का भी समावेश हुआ। इस प्रकार बौद्ध विद्या ने अपने विकास के क्रम में आध्यात्मिक तथा लौकिक दोनों प्रकार की विद्याओं को समाविष्ट किया। ईसा की तीसरी सदी में योगाचार विज्ञानवाद के प्रवर्तक तथा महायान सूत्रालंकार के रचयिता आचार्य मैत्रेयनाथ के द्वारा विद्याओं के सामान्य वर्गीकरण के अन्तर्गत पांच विद्याएँ गिनाई गई हैं—अध्यात्म विद्या, प्रमाण विद्या, भाषा विद्या, चिकित्सा विद्या तथा शिल्प विद्या। बाद में इन विद्याओं के साथ एक अन्य विद्या, ज्योतिष को भी सम्मिलित किया गया। प्रसिद्ध चीनी यात्री इत्सिंग तथा युआन-च्वांग के यात्रा विवरणों तथा विभिन्न अन्य स्रोतों के आधार पर ज्ञात होता है कि उनके समय में भारत में बौद्ध विद्या का विस्तार क्षेत्र बहुत व्यापक था।

मोटे तौर पर बौद्ध विद्या को दो प्रधान भागों में बाँटा जा सकता है—(१) आध्यात्मिक तथा (२) लौकिक। अध्यात्म विद्या के अन्तर्गत बौद्ध धर्म के मूल सिद्धान्त अथवा अभिधर्म, तत्त्वमीमांसा आदि आधारभूत ज्ञान आता है। आध्यात्मिक विद्याओं के अन्तर्गत ही मंत्रविद्या, अथवा गुह्यविद्या अथवा साधना विद्या को भी सम्मिलित किया जा सकता है। लौकिक विद्याओं में निम्नांकित प्रमुख विद्याएँ शामिल हैं : (अ) शब्द विद्या—जिसमें भाषाशास्त्र, शब्दशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, छन्द-शास्त्र, नाट्यशास्त्र आदि साहित्यिक शास्त्र सम्मिलित हैं। (ब) प्रमाण-विद्या—जिसमें ज्ञानमीमांसा तथा तर्कपद्धति को भी स्थान दिया गया। (स) चिकित्सा विद्या—द्रव्यगुणशास्त्र, व्याधिकी, शल्यशास्त्र, कायचिकित्सा आदि, तथा, (द) शिल्पविद्या—जिसमें वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, कंठ एवं वाद्य संगीत आदि समाहित था। (य) ज्योतिषविद्या—जिसमें खगोलशास्त्र, गणित ज्योतिष, सिद्धान्त ज्योतिष तथा फलित ज्योतिष सम्मिलित थे। प्रसिद्ध व्याकरण के रचयिता आचार्य चन्द्रगोमिन् के बारे में लामा तारानाथ ने लिखा है कि उन्होंने नालन्दा महाविहार में रहकर

शिल्पविद्या, व्याकरण, तर्क, वैद्यक, छन्द, नाटक, अभिधान, काव्य, ज्योतिष इत्यादि के अनेक छोटे-बड़े शास्त्रों के ४३२ ग्रन्थों की रचना की। इस प्रकार के वृत्तान्त प्रायः सभी प्रमुख महायानी आचार्यों के बारे में विभिन्न तिब्बती और चीनी आदि स्रोतों से प्राप्त होते हैं।

स्पष्ट है कि बौद्ध विद्याओं का विपुल विस्तार आध्यात्मिक क्षेत्र में तो था ही, किन्तु लौकिक क्षेत्र में भी कम नहीं था। लौकिक विद्याओं को अपनी शिक्षा प्रणाली में महत्त्व देने के कारण बौद्ध विद्याओं को महत्ता गृहत्यागी एवं निर्वाण के इच्छुक भिक्षुओं तक सीमित नहीं रही। सामान्य गृहस्थों अथवा उपासकों के अतिरिक्त प्रशासकों के लिए भी लौकिक प्रकार की बौद्ध विद्याओं का महत्त्व कम नहीं था। इसी कारण हम देखते हैं कि टशील्हुन्पो जैसे तिब्बती बौद्ध महा-विहारों में गैर-भिक्षुओं को भी शिक्षा प्राप्त करने के अवसर प्राप्त थे। चूँकि इस विस्तृत ज्ञान क्षेत्र को समाहित करने वाली बौद्ध विद्या का तिब्बती पर्याय भोट-विद्या है, अतएव लदाख की परम्परागत बौद्ध विद्या के स्वरूप को इसी पृष्ठभूमि में देखा और समझा जा सकता है। लदाख में बौद्ध विद्या के प्रसार का इतिहास करीब एक हजार वर्ष पुराना है। लदाख क्षेत्र के प्रतिभावान् एवं निष्ठावान् विद्वान् भिक्षुओं एवं लोचावा लोगों ने विद्या के प्रसार तथा अभिवर्धन में जो योगदान किया है, उसका प्रामाणिक तथा समग्र इतिकृत्य अभी लिखा जाना बाकी है।

(II)

बौद्ध विद्याओं के स्वरूप तथा विकास पर विचार करने के सिलसिले में इस महत्त्वपूर्ण तथ्य की कभी उपेक्षा नहीं की जा सकती कि इन विद्याओं का प्रवर्तन, संरक्षण तथा संवर्धन संगठनात्मक एवं संस्थागत आधार के बिना सम्भव नहीं हो सकता था। इन विद्याओं को संस्थागत आधार प्रदान किया बौद्ध विहारों ने। बौद्ध विहारों के विकास की कहानी बौद्ध धर्म के इतिहास के साथ भगवान् बुद्ध के समय से ही जुड़ी हुई है। तथागत के जीवनकाल में ही उनके धर्म और संघ के प्रसार के साथ भिक्षुओं की आरण्यक चर्या विरल होने लगी थी। एकाकी जीवन के स्थान पर भिक्षुगण सामूहिक जीवन बिताने लगे थे। धीरे-धीरे साधन सम्पन्न उपासकों ने संघ को विहार बनाकर दान देने का क्रम प्रारम्भ किया। एकाकी चर्या का स्थान आवासिक जीवन ने ले लिया। प्रारम्भ के बौद्ध विहारों में भिक्षुओं को

धार्मिक चर्या में प्रतिष्ठित करने के लिए शिक्षापदों तथा विनय के नियमो को सीखने पर बल दिया जाता था। किन्तु कालान्तर में बौद्ध विद्याओं और विहारों का महत्त्व विद्या के केन्द्रों के रूप में बढ़ने लगा। ऐसा माना जाता है कि विहारों का विद्या के केन्द्रों के रूप में विकास के क्रम का प्रारम्भ ईसा की प्रथम शताब्दी में हुआ। किन्तु विद्याकेन्द्रों के रूप में उनका वास्तविक उत्कर्ष महायान के विकास के साथ हुआ। सर्वविदित है कि नालन्दा, वल्लभी, विक्रमशिला, ओदन्तपुरी, जगद्दला आदि बौद्ध महाविहारों का भारत के प्राचीनतम उच्च विद्या के केन्द्रों अथवा विश्वविद्यालयों के रूप में विकास सातवीं शताब्दी तथा उसके बाद हुआ था। इन्हीं संस्थाओं—विहारों की परम्परा बाद में तिब्बत में प्रतिष्ठित हुई और समये, गल्देन, डेपुंग, सेरा टशील्हुन्पो आदि अनेकों तिब्बती महाविहारों का उद्भव हुआ। निश्चय ही तिब्बती महाविहार भारतीय महाविहारों के नमूने पर बनाये अवश्य गये थे, किन्तु तिब्बती संस्कृति तथा प्रतिभा ने उन्हें अद्वितीय विशिष्टता प्रदान की। यहाँ पर तिब्बत में विहारों की परम्परा पर अधिक कुछ कहने का अवसर नहीं है, फिर भी यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि आठवीं शती के ओदन्तपुरी महाविहार के नमूने पर निर्मित प्रथम तिब्बती विहार--समये महाविहार--के बाद लगातार एक से एक विशाल और उत्कृष्ट महाविहारों का निर्माण हुआ। इस सन्दर्भ में पश्चिमी तिब्बत में और विशेषकर लदाख में बौद्ध विहारों की स्थापना में महान् लोचावा रिन्छेन जांग्पो का स्मरण अनायास ही हो जाता है। यह विदित हैं कि पश्चिमी तिब्बत में, विशेषकर गूगे प्रान्त में महान् भारतीय धर्मगुरु तथा विद्वान् अतिशा तथा लोचावा रिन्छेन जांग्पो ने करीब एक हजार वर्ष पूर्व बौद्ध धर्म के ऐतिहासिक पुनर्जागरण का सूत्रपात किया। महान् लोचावा ने अपने पांडित्य तथा चामत्कारिक प्रतिभा से लदाख सहित सारे पश्चिमी तिब्बत को आलोकित किया। महाविहारों के निर्माण और विकास की प्रक्रिया को चौदहवीं शताब्दी से तिब्वत के महान् धर्मगुरु और धर्मसुधारक चोंखापा के चामत्कारिक नेतृत्व से असाधारण बल मिला और कालान्तर में तिब्बती विहारों की संस्कृति ने अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त किया।

लदाख में बौद्ध विहारों का ज्ञात इतिहास लोचावा रिन्छेन जांग्पो द्वारा स्थापित विहारों से होता है। उन्होंने पुरांग, गूगे, लदाख, लाहुलस्पीती तथा जंस्कर आदि क्षेत्रों में 108 विहारों की स्थापना की थी। लदाख में उनके द्वारा स्थापित अलची का विहार सबसे प्रसिद्ध है। इस विहार की स्थापना दसवीं शताब्दी के

अन्त में अथवा ग्यारहवीं शती के प्रारम्भ में हुई थी। किन्तु लदाख में बृहद् आकार की प्रथम गोनपा लिकिर में स्थापित हुई। यह गोनपा प्रथम लदाखी राजवंश के छठवें राजा ल्हाचेन ग्यालपो ने सम्भवतः ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त में बनवा दी थी। लिकिर गोनपा की यह भी विशेषता है कि वास्तुकला तथा विहार स्थापित करने की परम्परा की दृष्टि से यह लदाख की प्रथम गोनपा है, जिस पर सीधा तिब्बती प्रभाव पड़ा। इसके पूर्व लोचावा रिन्छेन जांग्पो द्वारा स्थापित विहारों पर काश्मीरी बौद्ध परम्परा, स्थापत्यकला तथा संस्कृति का सीधा प्रभाव दिखाई देता है। लिकिर गोनपा की स्थापना के पश्चात् परवर्ती राजाओं के प्रश्रय तथा प्रतिभावान् लामाओं की सहायता से लदाख में गोनपाओं के विकास तथा निर्माण का क्रम चलता रहा। इन गोनपाओं में से अधिकांश अब भी कायम हैं। उदाहरणार्थ, स्पितुक गोनपा का परिवर्धन तथा रूपान्तरण महान् धर्माचार्य चोंखापा के द्वारा लदाख में भेजे गये धमदूत की प्रेरणा से प्रथम लदाखी राजवंश के सत्रहवें नरेश ल्हाचेन द्रास्पा –वुमदे द्वारा सम्पन्न हुआ। इसी प्रकार लदाख के सबसे यशस्वी राजा सेन्गे नमग्यल के शासनकाल में तगछङ् रेपा ने प्रसिद्ध हेमिस गोनपा की स्थापना की। स्मरणीय है कि लामा तगछङ् रेपा, जो लामा सोमूनाथ के नाम से अधिक विख्यात हैं, लदाख के इतिहास में सबसे प्रभावशाली तथा चामत्कारिक गुणों से सम्पन्न लामा रहे हैं। काल-क्रम में विभिन्न सम्प्रदायों से सम्बद्ध गोनपाएँ स्थापित होती चली गईं। लदाख की यह एक विशेषता है कि यहाँ तिब्बती बौद्ध धर्म के चारों प्रमुख सम्प्रदायों--ञिङ्मा, कर्ग्युद, साक्या तथा गेलुक–की गोनपाएँ आज भी जागृत हैं। और उन सभी का इतिहास काफी पुराना है।

लदाख में बौद्ध विद्याओं के विकासक्रम तथा वर्तमान स्वरूप पर विचार करते समय यहाँ की गोनपाओं की भूमिका तथा स्थिति को समझना आवश्यक है। अतएव जब हम वर्तमान सन्दर्भ में लदाख में बौद्ध विद्याओं की चर्चा करते हैं तो यह देखना अपेक्षित है कि आज इन गोनपाओं की स्थिति क्या है और वह परम्परागत बौद्ध विद्या के संरक्षण तथा संवर्द्धन में क्या योगदान दे सकते हैं।

(III)

लद्दाख के बौद्ध धर्म का इतिहास जिन घात-प्रतिघातों से गुजरा है, उनका प्रभाव वहाँ की गोनपाओं की स्थिति पर पड़ना स्वाभाविक था। मोटे तौर हम इस इतिहास को पांच चरणों में बांट सकते हैं— (१) इस्वीं पहली सदी के आसपास

से लेकर दसवीं सदी तक--इस काल में भारत से, और खासकर काश्मीर से, बौद्ध धर्म का लदाख में प्रवेश हुआ। सम्भवत: सम्राट् अशोक के शासनकाल में भारत के विभिन्न प्रत्यन्त प्रदेशों में बौद्ध धर्म के प्रसार के साथ लदाख में भी इसका प्रसार हुआ। इस काल में लदाख क्षेत्र में बौद्ध विहारों के अस्तित्व के बारे में कोई निश्चित वृत्तान्त नहीं मिलता। (२) दसवीं सदी के आसपास से लेकर चौदहवीं सदी के प्रारम्भ तक—इस काल में समस्त पश्चिमी तिब्बत के विस्तृत क्षेत्र में अतिशा तथा लोचावा रिन्छेन जांग्पो ने बौद्ध धर्म को पुनर्जीवित किया। जहाँ तक लदाख का प्रश्न है इस युग को लोचावा रिन्छेन जांग्पो का युग कहना गलत न होगा। लोचावा द्वारा निर्मित एक सौ आठ विहारों में से लदाख में सुमदा, सानी (कनिक) तथा अलची की गोनपाओं का अस्तित्व आज भी विद्यमान है। इस युग में लदाख में बौद्ध धर्म को उसकी जीवनी शक्ति पहले काश्मीर से तथा बाद में प्रधानतया पश्चिमी तिब्बत के गूगे क्षेत्र से प्राप्त हुई। (३) चौदहवीं से लेकर सोलहवीं सदी के अंतिम चरण तक—लदाख में इसे महान् धर्मगुरु चोंखापा का युग कहा जा सकता है। इस काल में स्पितुक, और संकर गोनपाओं की तरह के अनेक गोनपाओं का नव--निर्माण हुआ और लिकिर, ठिक्से आदि अनेक गोनपाओं का रूपान्तरण हुआ। (४) सोलहवीं सदी के अन्तिम चरण से बीसवीं सदी के पांचवें दशक तक—धर्म की दृष्टि से इस काल का उत्कर्ष सेंगे नमग्यल के शासनकाल को माना जा सकता है। महान् लामा तगछङ् रेपा इस युग के सबसे चामत्कारिक धार्मिक पुरुष हैं। इस काल में हेमिस तथा चेमरे जैसी महागोनपाओं का निर्माण हुआ। तथा अनेकों पुरानी गोनपाओं में धार्मिक नवोन्मेष हुआ। (५) बीसवी सदी के पांचवें दशक के अन्त से लेकर अब तक—यह वर्तमान काल है। इसका प्रारम्भ १९५९ में तिब्बत पर चीन के आधिपत्य से हुआ। १९६२ में भारत पर चीनी आक्रमण इस काल की सबसे बड़ी ऐतिहासिक घटना थी, जिसने हिमालय के अंचलों को बुरी तरह झकझोर दिया। इसके साथ जहाँ एक ओर लदाख के बौद्ध धर्म और संस्कृति की स्वतन्त्र भारत में एक विशिष्ट पहचान उभरने लगी, वहीं दूसरी ओर करीब एक हजार वर्षों से लदाख का तिब्बत के साथ जो गहरा धार्मिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध था, वह एक भयंकर झटके के साथ टूट गया। इस काल में लदाख में बौद्ध धर्म के सामने जो समस्याएँ पैदा हुई हैं, उनके सन्दर्भ में ही बौद्ध विद्या के केन्द्रों के रूप में वहाँ की गोनपाओं की भूमिका का आकलन किया जा सकता है।

(IV)

जब हम लदाख में बौद्ध धर्म के उपर्युक्त विकासक्रम का अध्ययन करते हैं तो एक महत्त्वपूर्ण विशेषता दृष्टिगत होती है। वह विशेषता यह है कि धार्मिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से लदाख सर्वदा किसी न किसी पार्श्ववर्ती क्षेत्र से सीधी प्रेरणा लेता रहा है। विभिन्न युगों से यह प्रेरणा समय-समय पर काश्मीर, गूगे, पुरांग, मध्य तिब्बत आदि क्षेत्रों से प्राप्त होती रही है। यह स्थिति केवल लदाख क्षेत्र की ही नहीं, वरन् लाहुल-स्पीती, किन्नौर, सिक्किम, भूटान, उत्तरी नेपाल तथा अरुणाचल जैसे समस्त हिमालयी क्षेत्रों की भी रही है। इसका परिणाम यह हुआ कि बौद्ध विद्या के उच्चतम विकास की दृष्टि से यहाँ की गोनपाओं का वह स्वतन्त्र एवं पूर्ण विकास नहीं हो सका जो तिब्बत में देखने में आया। लदाख की वर्तमान सभी गोनपाओं से भिक्षुओं को उच्च विद्याध्ययन के लिये तिब्बत जाना पड़ता था। अपनी साम्प्रदायिक सम्बद्धता के अनुसार यहाँ की गोनपाओं के गेत्सुल तथा गेलोङ तिब्बत की महागोनपाओं में जाते थे और आचार्यत्व प्राप्त कर लौटते थे। प्रायः सभी बड़ी तिब्बती गोनपाओं में लदाख क्षेत्र से आने वाले भिक्षु-शिक्षार्थियों के लिए स्थान सुरक्षित रहते थे। वहाँ की गोनपाओं में लदाखी भिक्षुओं के लिए अलग खमछन होते थे। इसका यह तात्पर्य नहीं कि लदाखी गोनपाओं में विद्या अध्ययन की कोई परम्परा ही नहीं रहीं है। यहाँ की गोनपाओं में भी बड़े-बड़े प्रतिभावान् खेनपो, लोबन, गेशे, रबचम्पा, आदि थे और आज भी हैं। यह विद्वान् भिक्षु अपने-अपने विहारों के संवासियों की धर्मशिक्षा के लिये उत्तरदायी रहते आये हैं। लदाख की भूमि ने बौद्ध विद्या के क्षेत्र में नाम अर्जित करनेवाले अनेक महान् विद्वान्, प्रसिद्ध लोचावा और श्रेष्ठ लामा पैदा किये हैं। उदाहरण के लिये तन्त्रशास्त्रों के प्रसिद्ध विद्वान, श्रेष्ठ साधक तथा संस्कृत ग्रंथ 'वज्रशिखर तन्त्र' के अनुवादक लोचावा फागपा –शेरब का नाम लिया जा सकता है। यह जंस्कर के रहने वाले थे और सम्भवतः ग्यारहवीं सदी का उत्तरार्ध इनका प्रमुख कार्यकाल था। इसी तरह जंस्कर के प्रसिद्ध साधक तथा विद्वान् नवाङ् छेरिङ् अथवा रिजोङ् के प्रसिद्ध धर्मसुधारक तथा विद्वान् छुलठिम ञिमा जैसे अनेक लोगों का नाम लिया जा सकता है। अतः इसमें सन्देह नहीं हैं कि लदाख की भूमि ने अनेक साधकों तथा श्रेष्ठ भिक्षुओं को जन्म दिया है। किन्तु इसके बावजूद यह सही है कि लदाख क्षेत्र उच्च विद्या तथा शिक्षा के

मामले में कभी आत्मनिर्भर नहीं रहा। यहाँ के विद्याभ्यासी तथा जिज्ञासु लामाओं को उच्च शिक्षा के लिये तिब्बत जाना होता था। इसी प्रकार यहाँ बौद्ध धर्म तथा विद्या के विकास के लिये उत्तरदायी बड़े धर्माचार्य तथा लामा भी सर्वदा पश्चिमी तिब्बत या मध्य तिब्बत के इलाकों से आते रहे। लोचावा रिन्छेन जांग्पो तथा लामा तगछङ् रेपा जैसे लोग इन्हीं इलाकों से आये थे। लदाख के भिक्षुओं की विद्वत्ता और श्रेष्ठता पर जब तक तिब्बत की मुहर नहीं लगती थी तब तक उनको प्रतिष्ठा तथा मान्यता नहीं मिलती थी।

इस प्रकार तिब्बत की महागोनपाओं के साये में रहनेवाली लदाखी गोनपाओं की स्थिति विद्या के उच्च केन्द्रों के रूप में अपेक्षाकृत कम महत्त्वपूर्ण थी। सम्भवतः ग्यारहवीं तथा बारहवीं सदी के आसपास लदाख में ऐसी गोनपाएँ विद्यमान थीं, जो विद्या के बड़े केन्द्र बन चुकी थीं। ऐसी सूचनाएँ हैं कि ठिक्से के पास न्यर्मा में लोचावा रिन्छेन जांग्पो द्वारा स्थापित एक गोनपा में एक हजार से अधिक लामा रहते थे और काश्मीर आदि इलाकों से इस गोनपा में भिक्षु आते थे। किन्तु लगता है कि ऐसी गोनपाएँ भी अधिक समय तक टिक नहीं सकीं। सामान्यतया लदाख में गोनपाएँ तिब्बत की गोनपाओं के स्तर के विद्याकेन्द्र नहीं बन सकीं। संवासी लामाओं को विनयानुशासन में रखना, सूत्रपाठ आदि के सामान्य भिक्षुकर्म को व्यवस्थित रखना, पूजागृहों एवं मन्दिरों को जागृत रखना, धार्मिक उत्सवों तथा पर्व-त्यौहारों की परम्परा को कायम रखना, धर्मप्राण उपासक जनता के लिए धार्मिक कर्मकाण्डों को सम्पन्न करना, गोनपाओं तथा उनकी सांस्कृतिक निधि की रक्षा करना लदाख की गोनपाओं के प्रमुख कार्य थे। ऐसी बात नहीं है कि इन गोनपाओं में शिक्षा की कोई व्यवस्था ही नहीं थी। आखिर जहाँ भिक्षु-संघ होगा, जहाँ बड़े-बड़े खेनपो, लोचावा, गेशे आदि धर्मधर तथा विनयधर भिक्षु रहेंगे वहाँ परम्परागत शिक्षा की व्यवस्था तो होगी ही। लदाखी गोनपाओं में भिक्षु-शिक्षार्थियों को सम्पूर्ण प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती थी और उन्हें इस योग्य बनाया जाता था कि वे तिब्बत की महागोनपाओं में प्रवेश ले सकें। इसके साथ ही चिकित्साशास्त्र, मूर्तिकला, चित्रकला, तथा अन्य लौकिक विद्याओं की परम्परा को भी इन गोनपाओं ने कायम रखा। किन्तु उच्चतम शिक्षा की यहाँ वह व्यवस्था नहीं थी जो तिब्बत की गोनपाओं में विद्यमान थी। कम-से-कम विगत चार-पाँच सदियों से तो स्थिति

यही रही है। लेकिन १९५९ में तिब्बत पर चीन के आधिपत्य के बाद, विशेषकर १९६२ में भारत पर चीनी हमले के बाद, इस स्थिति में असाधारण बदलाव आया। इस ऐतिहासिक परिवर्तन ने लदाख की गोनपाओं को असाधारण महत्त्व प्रदान कर दिया है। परिवर्तन के इस नये दौर में इतिहास ने यहाँ की गोनपाओं को नये उत्तरदायित्व सौंप दिये हैं। इनमें से एक सबसे प्रमुख उत्तरदायित्व है लदाख की गोनपाओं को बौद्ध विद्याओं के उच्चतम केन्द्रों की भूमिका प्रदान करने का उत्तर-दायित्व। इन ऐतिहासिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह लदाख की गोनपाएँ कर पायेंगी या नहीं, इसका उत्तर अभी नहीं दिया जा सकता। अनागत की चर्चा कैसे की जा सकती है? लेकिन अनागत की सम्भावित दिशाओं की चर्चा तो हो ही सकती है। अपनी अपेक्षाओं का अपनी आकांक्षाओं का और आवश्यकताओं का प्रक्षेपण तो किया ही जा सकता है।

(V)

आज की दुनियां में बौद्ध विद्याओं के अध्ययन की स्थिति एक विशेष प्रकार की है। इन विद्याओं के अध्ययन के लिए आम तौर पर दो प्रकार की दृष्टियाँ हैं। एक दृष्टि उनकी है जो बौद्ध विद्याओं का आधुनिक दृष्टि से और आधुनिक पद्धति से अध्ययन करते हैं। ऐसे लोग प्रायः बौद्धिक जिज्ञासावश इन परम्परागत विद्याओं की ओर आकृष्ट होते हैं। बौद्ध विद्याएँ ऐसे अध्येताओं को अपनी परम्परा, संस्कृति अथवा धर्म का अंग नहीं होतीं। उनका बौद्ध संस्कृति से कोई भावनात्मक लगाव नहीं होता। दूसरी दृष्टि परम्परागत है। यह दृष्टि उन लोगों की है जो स्वयं बौद्ध हैं या जिनका बौद्ध संस्कृति से गहरा तादात्म्य है। ऐसे लोग इन विद्याओं का इस-लिए अध्ययन करते हैं कि वह उनके धर्म तथा संस्कृति अथवा जीवन पद्धति का मूल्यवान् आधार हैं, उसका श्रेष्ठ निकष हैं। वर्तमान युग में आधुनिक दृष्टि से बौद्ध विद्याओं का अध्ययन अधिक तेजी से बढ़ा है। इसका प्रमाण पश्चिम के विश्वविद्या-लयों, संस्थानों तथा शैक्षणिक संगठनों में बौद्ध विद्याओं के प्रति बढ़ती हुई रुचि हैं। यह उसी आधुनिक जिज्ञासा और ज्ञान की खोज की प्रवृत्ति का प्रतिफल है जो आज के मनुष्य द्वारा असीम अन्तरिक्ष की खोज से लेकर सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु के रहस्य को जानने के अनवरत प्रयासों की प्रेरक है। परम्परागत संस्कृतियों तथा विद्याओं के प्रति आधुनिक अध्येताओं की रुचि इसी जिज्ञासा का परिणाम है।

किन्तु बौद्ध विद्याओं के अध्ययन के लिए अपनाई जानेवाली आधुनिक दृष्टि उन लोगों के लिए विशेष महत्त्व नहीं रखती जो स्वयं बौद्ध सांस्कृतिक परम्परा से जुड़े हुए हैं। उनके लिए बौद्ध विद्याओं का महत्त्व बौद्धिक जिज्ञासा की शान्ति के के लिए अथवा तुलनात्मक अध्ययन के लिए नहीं है। यह विद्याएँ उनकी संस्कृति की सबसे बड़ी पूँजी हैं। उनकी जीवन दृष्टि को यह विद्याएँ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर पर प्रभावित करती हैं। वे उनसे लौकिक तथा आध्यात्मिक दोनों स्तरों पर जुड़े हैं। बिना अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान के कोई मानव समुदाय या समूह अपना अस्तित्व बनाये नहीं रख सकता। बौद्ध समुदायों की सांस्कृतिक पहचान जिन अनेक तत्त्वों से मिलकर बनती है उनमें बौद्ध विद्याओं का विशेष स्थान है।

बौद्ध विद्याओं के अध्ययन को उपरोक्त दोनों दृष्टियों—आधुनिक तथा परम्परागत—का प्रभाव आजकल भारत में भी देखने में आता है। आज हमारे देश में बौद्ध विद्याओं के अध्ययन के तीन प्रमुख संस्थागत आधार हैं : (१) विश्वविद्यालय, (२) बौद्ध विहार अथवा गोनपाएँ तथा (३) बौद्ध विद्या संस्थान। प्रथम प्रकार की की संस्थाओं में बौद्ध विद्याओं का अध्ययन आधुनिक जिज्ञासा से प्रेरित होता है। विश्वविद्यालयों में सभी प्रकार की विद्याओं तथा ज्ञान-विज्ञान की शाखाओं का अध्ययन तुलनात्मक, परीक्षणात्मक या विश्लेषणात्मक पद्धतियों से होता है। अध्येताओं के लिए आवश्यक नहीं है कि वे उनसे भावनात्मक या परम्परात्मक तरीके से सम्बद्ध हों। आधुनिक अध्ययन पद्धति इस प्रकार की सम्बद्धता को ज्ञान के मार्ग में बाधक समझती है! यह बात और है कि विश्वविद्यालयों के कुछ अध्येता व्यक्तिगत आधार पर अपने विषय से भावनात्मक रूप से जुड़ जाएँ।

विश्वविद्यालयों से एकदम अलग प्रकार के संगठन हैं, बौद्ध विहार या गोनपाएँ। इन परम्परागत संस्थाओं में बौद्ध विद्याओं का संरक्षण, हस्तान्तरण तथा अध्ययन वे लोग करते हैं जिनका सारा जीवन सद्धर्म को अर्पित है, जिन्होंने संसार की सुख-सुविधाओं को छोड़कर श्रमण जीवन का वरण किया है, जिनके विद्याध्ययन का उद्देश्य प्रज्ञा का विकास है, वह प्रज्ञा जो अन्ततः सब बन्धनों से, सब क्लेशों से मुक्त करती है। आधुनिक विद्वानों का उद्देश्य विशेषज्ञ बनना है किन्तु परम्परागत विद्वानों के ज्ञानार्जन का उद्देश्य सर्वज्ञ बनना है। इस भांति उक्त दो प्रकार की संस्थाएँ—विश्वविद्यालय तथा विहार—बौद्ध विद्याओं के प्रति एक दूसरे से बिलकुल भिन्न दृष्टि रखते हैं।

तीसरी प्रकार की संस्थाएँ हैं वे संस्थान जो स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में बौद्ध विद्याओं एवं शास्त्रों के अध्ययन के लिए विभिन्न स्थानों पर स्थापित किये गये हैं। सारनाथ, नालन्दा, गंगटोक तथा लेह में स्थित बौद्ध एवं भोट विद्या संस्थानों ने विगत दो दशकों के अन्दर बौद्ध विद्या जगत् में अपना विशिष्ट स्थान बनाने में कुछ अंशों तक सफलता भी प्राप्त की है। यह सम्भव है कि भविष्य में इस प्रकार के अन्य संस्थान भी देश में स्थापित हों। इन राज्य पोषित संस्थानों का घोषित उद्देश्य बौद्ध विद्याओं की परम्परा की रक्षा तथा संवर्धन करना है। किन्तु इनके ऊपर आधुनिक विश्वविद्यालयीय प्रणाली की छाप भी स्पष्ट है। इन संस्थानों में अध्ययन तथा शोध कार्य आदि प्रधान रूप से आधुनिक प्रणाली से किया जाता है, इनका संगठनात्मक ढाँचा आधुनिक प्रकार का होता है, इनमें भिक्षु छात्रों के साथ गैर-भिक्षु छात्र भी पढ़ते हैं— कुछ संस्थानों में तो छात्र-छात्रायें साथ पढ़ते हैं और उनका लक्ष्य अर्थकरी विद्या की प्राप्ति है। इसमें सन्देह नहीं है कि राज्य द्वारा स्थापित बौद्ध विद्याओं के अध्ययन के इन संस्थानों का अपना विशेष महत्व है और उनकी स्थापना से बौद्ध विद्याओं को देश में बहुत बल मिला है। किन्तु इन संस्थानों की भी अपनी सीमाएँ हैं, जिनकी थोड़ी चर्चा आगे की जाएगी।

परम्परागत विद्याओं के अध्ययन के लिए भिन्न दृष्टियों, उद्देश्यों या संस्थागत आधारों का होना कोई गलत बात नहीं है। प्रत्येक दृष्टि से किए जाने वाले अध्ययन का अपना विशेष महत्त्व है। यदि बौद्ध विद्याओं के प्रति आधुनिक जिज्ञासुओं की रुचि बढ़ रही है या गैर-बौद्ध एवं पश्चिमी अध्येता उनके प्रति आकर्षित हो रहे हैं तो यह शुभ है। इससे मनुष्य के ज्ञान में अभिवृद्धि हो रही है। बौद्ध विद्याओं का लाभ गैर-बौद्धों को भी मिल रहा है। यदि आधुनिक लोगों को अथवा पाश्चात्य विचारकों को बौद्ध विद्याओं से कोई जीवन दृष्टि तथा बौद्धिक प्रेरणा मिल रही है तो यह उत्तम ही है। यदि आधुनिक सैद्धान्तिक गणित, भौतिकशास्त्र अथवा दर्शनशास्त्र के विद्वानों को अपने सिद्धान्तों के निरूपण में बौद्ध दर्शन से कुछ मदद मिल रही है तो यह मनुष्यमात्र के लिए शुभ है। इसके साथ ही बौद्ध विद्याओं, विशेषतया अध्यात्मविद्या तथा साधनाविद्या में आधुनिक लोगों की बढ़ती हुई दिलचस्पी से प्राप्त होनेवाला लाभ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। आखिरकार बौद्ध विद्याओं का अस्तित्व किसी विशेष समाज, प्रजाति या समूह के कल्याण के लिए ही नहीं है। वह मानव मात्र के कल्याण के लिए है।

लेकिन आधुनिक अध्ययन दृष्टि एवं अध्ययन प्रणाली की अपनी सीमाएँ भी हैं। वह किसी हालत में परम्परागत प्रणाली का स्थान नहीं ले सकती। आज के विश्वविद्यालयों के बौद्ध विद्या विभाग या बौद्ध विद्या संस्थान परम्परागत विहारों के विकल्प नहीं बन सकते। यदि बौद्ध संस्कृति की पहचान कायम रहना है और यदि लदाख की तरह के इलाकों को अपने ठोस और मजबूत सांस्कृतिक धरातल पर खड़ा होना है तो गोनपाओं को परम्परागत विद्या के उच्च केन्द्रों के रूप में विकसित करने के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं दिखाई देता। वास्तव में यह केवल विद्या का प्रश्न नहीं है। यह एक समग्र संस्कृति, एक श्रेष्ठ संस्कृति, के बुनियादी आधारों को पुष्ट करने का प्रश्न है। विश्वविद्यालयों या संस्थानों की तरह गोनपाओं की शिक्षा अर्थकरी एवं औपचारिक नहीं होती। वहाँ पीरियड नहीं चलते, परीक्षोपयोगी अध्यापन नहीं होता, प्रोन्नति या ग्रेडों का प्रश्न नहीं होता, परम्परागत और नवीन विद्याओं को साथ-साथ नहीं चलाया जाता और भिक्षुओं और ग़ैर-भिक्षुओं को एक ही डंडे से नहीं हाँका जाता।

लदाख जैसे भारत के परम्परागत बौद्ध इलाकों में बौद्ध विद्याओं के संरक्षण तथा प्राचीन पद्धति से अध्ययन-अध्यापन की आवश्यकता को उक्त पृष्ठभूमि में समझा जा सकता है। जब तक तिब्बत स्वतन्त्र था और भारत तथा तिब्बत के बीच अभिन्न सम्बन्ध थे, तब तक इन इलाकों के लिए बौद्ध विद्याओं के अध्ययन की कोई समस्या नहीं थी। तिब्बत को महागोनपाओं के दरवाजे लदाख, लाहुलस्पीति, किन्नौर आदि इलाकों के भिक्षु-शिक्षार्थियों के हमेशा खुले हुए थे। किन्तु १९५९ के बाद के दुःखद राजनीतिक घटनाचक्र ने तिब्बत को पराधीन बना दिया और भारत के इन क्षेत्रों के धार्मिक, सांस्कृतिक और ज्ञानात्मक प्रेरणा के स्रोत बिल्कुल अवरुद्ध हो गए। ऐसी स्थिति में लदाख जैसे क्षेत्रों के सामने गम्भीर चुनौती उपस्थित हो गई। यह चुनौती सांस्कृतिक है। इन चुनौती ने इन इलाकों के सामने यह बड़ा प्रश्न उपस्थित कर दिया कि तिब्बत से सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाने के बाद किस प्रकार यह इलाके विद्या, ज्ञान तथा धार्मिक शिक्षा के मामले में आत्मनिर्भर बनें। इसी चुनौती के सन्दर्भ में लदाख में परम्परागत बौद्ध विद्याओं के बारे में चर्चा अधिक सार्थक हो सकती है।

(VI)

उपरोक्त चर्चा से अनेक व्यापक प्रश्न उठते हैं। सम्भवतः प्रधान प्रश्न यह है कि क्या बौद्ध धर्म तथा संस्कृति की रक्षा तथा संवृद्धि की दृष्टि से लदाख—तथा व्यापक दृष्टि से लदाख से लेकर अरुणाचल तक का सारा हिमालयी क्षेत्र—एक ऐतिहासिक भूमिका ग्रहण कर सकता है? फिर इससे जुड़े अनेक प्रश्न हैं। तिब्बत से सारे जीवन सम्पर्क टूट जाने के बाद क्या लदाख में धार्मिक-सांस्कृतिक पुनरुत्थान की आधारभूत शर्तें मौजूद हैं? क्या लदाख का भिक्षु संघ, यहाँ की गोनपाएँ तथा उपासक इस गुरुतर भूमिका को पूरा कर सकेंगे? इन तमाम प्रश्नों का उत्तर शायद लदाख के लोग ही बेहतर दे सकते हैं। और अन्त में इनका उत्तर तो आने वाला इतिहास ही देगा। फ़िलहाल इन प्रश्नों पर विचार करने वाले लोग अपनी सीमाओं के अन्दर उन सम्भावनाओं, उपलब्ध साधनों और क्षमताओं पर चर्चा कर सकते हैं जो उन्हें दिखाई देती हैं। यहाँ उपरोक्त प्रश्नों के सन्दर्भ में यह चर्चा की जा सकती है कि बौद्ध विद्याओं के अध्ययन, संरक्षण तथा विकास में लदाख की गोनपाओं की क्या भूमिका हो सकती है और तत्सम्बन्धी प्रमुख समस्याओं का स्वरूप क्या है।

इसमें तो सन्देह नहीं है कि लदाख में गोनपओं की कोई कमी नहीं है। लदाख के हर इलाके में बड़ी गोनपाएँ हैं। यद्यपि तिब्बत की महागोनपाओं की तुलना में लदाख को गोनपाएँ काफी छोटी हैं, किन्तु यहाँ की कुल जनसंख्या, आर्थिक संसाधन तथा जनता की आर्थिक स्थिति को देखते हुए यह गोनपाएं किसी माने में छोटी नहीं हैं। भारत में लदाख की तरह के ही किसी अन्य हिमालयी क्षेत्र में इतनी संख्या में जागृत और बड़ी गोनपाएँ नहीं पायी जातीं। सम्भवतः इसी कारण कभी-कभी लदाख को भारतीय तिब्बत या छोटा तिब्बत कहा जाता है! अतः गोनपाओं की कमी का कोई प्रश्न फ़िलहाल नहीं उठता। वास्तव में उनकी संख्या तथा आकार अपेक्षाकृत इतना बड़ा हैं कि समस्या उनके रख-रखाव की है। विगत बीस-पच्चीस वर्षों के अन्दर लदाख के कुशोकों, रिन्पोछे लोगों तथा धर्मनिष्ठ लामाओं एवं धर्मभीरु बौद्ध जनता ने यहाँ की गोनपाओं के रख-रखाव पर ध्यान दिया है। लदाख के गोनपाओं की सुरक्षा के लिये पहले की अपेक्षा अधिक जागृति देखने में आती है और इस दिशा में प्रयास भी हो रहे हैं।

किन्तु गोनपाएँ केवल पत्थर, मिट्टी तथा लकड़ी से बनी इमारतें नहीं है। गोनपाओं के भौतिक अस्तित्व से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है उनके

संवासियों का, भिक्षुओं का और उनके संघ का। बौद्ध धर्म मूलतः भिक्षुओं का धर्म है। बौद्ध विद्या भी भिक्षुओं पर निर्भर है। बौद्ध विद्या के वाहक, पोषक और संवर्द्धक भिक्षु हैं। किन्तु अब देखने में आ रहा है कि लदाख की गोनपाओं में भिक्षुओं की संख्या लगातार घट रहीं है। यद्यपि विगत दस-पन्द्रह वर्षों के अन्दर वरिष्ठ लामाओं के प्रयास से नये भिक्षुओं की संख्या में कुछ बढ़ोत्तरी हुई है किन्तु इसके साथ ही भिक्षुओं के पलायन की प्रवृत्ति में भी बढ़ोत्तरी हुई है। १९७९ में अखिल भारतीय बौद्ध महासभा के तत्त्वावधान में भारत सरकार के शिक्षा एवं संस्कृति मंत्रालय की सहायता से आयोजित सांस्कृतिक सर्वेक्षण के दौरान लदाख के प्रायः सभी गोनपाओं के अधिष्ठाताओं एवं वरिष्ठ लामाओं ने इस बात की पुष्टि की कि नये भिक्षुओं के प्रवेश से कहीं अधिक विकट समस्या भिक्षुओं के चीवर छोड़ने की समस्या है। भिक्षु जीवन से विमुख करने वाले उपादान प्रबल हो गये हैं। आधुनिक आकर्षण चारों ओर बढ़ रहे हैं। सुख-सुविधा का जीवन और राग-भोग का आकर्षण युवा भिक्षुओं को विचलित कर रहा है। रोजी के नये अवसर आराम की जिन्दगी के लिये आमंत्रण देते हैं। लदाख में फौज की उपस्थिति ने रोजी के अवसरों में बहुत वृद्धि की है। फौज तथा पुलिस में काफी युवक भर्ती होते हैं। दूसरी नौकरियों में भी युवकों की माँग है! अनेक पढ़े-लिखे युवा भिक्षु तापसी जीवन छोड़कर इन नौकरियों का वरण करते हैं। परिवार के लोग और माता-पिता भी नहीं चाहते कि उनकी युवक सन्तानें भिक्षु जीवन का वरण करें। पढ़े-लिखे और सम्पन्न परिवारों में तथा लेह जैसे कस्बों में रहने वाले लोगों में यह दृष्टिकोण अधिक व्यापक है।

सवाल यह नहीं है कि लदाख के युवकों को आधुनिक पेशों में, अच्छी नौकरियों में नहीं जाना चाहिये। लदाख का विकास नहीं होना चाहिये। लदाख के लोगों का आर्थिक विकास यहाँ की पहली आवश्यकता है। किन्तु प्रश्न है भिक्षु संघ से भिक्षुओं पलायन का। यह तात्पर्य नहीं है कि भिक्षु संघ से अलग होना हमेशा गलत है। भिक्षु जीवन को छोड़ना बिल्कुल वर्जित नहीं हो सकता। वास्तव में यदि कोई भिक्षु यह समझता हो कि श्रमण जीवन के अनुशासन का वह निर्वाह नहीं कर सकता तो अवश्य ईमानदारी से उसे संघ त्याग करना चाहिए। यह उसके और संघ दोनों के लिये हितकर है। किन्तु यदि भिक्षु संघ को छोड़ने की प्रवृत्ति अधिक व्यापक होने लगे तब समस्या पैदा होती है। अभी तो पलायन की समस्या

बहुत विकट नहीं है किन्तु भविष्य में यह विकट हो सकती है। यह असम्भव नहीं है कि कुछ समय बाद लदाख की गोनपाओं में मुश्किल से थोड़े से भिक्षु धूप-बत्ती और पूजा-पाठ करने के लिए देखने को मिलें। यदि इस तरह के आसार दिखाई देते हैं तो गोनपाओं का, बौद्ध विद्या का तथा सर्वोपरि बौद्ध धर्म का स्वरूप क्या होगा ? क्या आर्थिक विकास के बढ़ते अवसर, आधुनिक जीवन शैली का प्रसार लदाख के भिक्षु संघ का विलोप कर देगा ?

फिर दूसरा अहम प्रश्न है गोनपाओं में बौद्ध विद्या की शिक्षा का। इस पर लदाख के कुशोकों ने, वरिष्ठ और सम्मानित लामाओं ने, विद्वान् भिक्षुओं ने और विचारवान् और सार्वजनिक जीवन में क्रियाशील उपासकों एवं नागरिकों ने व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों ही प्रकार से विचार किया है तथा उसके लिए कुछ उपाय भी किए हैं। जिस संस्थान के आमंत्रण पर हम लोग लेह में इस समय विचार-विमर्श कर रहे हैं, उसकी स्थापना भी लदाख में बौद्ध विद्या के संरक्षण और विकास के लिए ही की गई थी। इसके साथ ही लदाख के युवा भिक्षुओं को उच्च विद्याध्ययन के लिए सारनाथ के तिब्बती उच्च विद्या संस्थान तथा कर्नाटक में प्रवासी तिब्बतियों द्वारा स्थापित गोनपाओं में भेजने का क्रम प्रारम्भ हुआ। यहाँ की गोनपाओं में प्राथमिक शिक्षा के लिए सरकारी सहायता से पाठशालाएँ भी चलाई जाने लगीं। यहाँ यह स्मरण रखना उचित होगा कि इन पाठशालाओं की भूमिका धार्मिक शिक्षा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं है, किन्तु सामान्य शिक्षा के लिए अवश्य यह उपयोगी है।

बौद्ध शिक्षा को जीवित रखने के लिए विगत दो-तीन दशाब्दियों में लदाख में जो प्रयास किये गये हैं, वे प्रशंसनीय अवश्य हैं, किन्तु वह अधिक सफल नहीं हुए हैं। यह ठीक है कि तिब्बत में विद्या, धर्म और संस्कृति के जिस अगाध भंडार से शताब्दियों तक लदाख आलोकित और समृद्ध होता रहा, उसकी पूर्ण पूर्ति होना असम्भव है। लेकिन यह तो संभव है कि लदाख की गोनपाओं में बौद्ध विद्याओं को प्रभावशाली ढंग से सुरक्षित रखा जाय और उन्हें उच्चस्तरीय बौद्ध ज्ञान तथा शिक्षा के मामले में आत्म-निर्भर बनाया जाय। बौद्ध धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए यह अपरिहार्य है। कब तक लदाख के गैलोङ बाहर भेजे जाते रहेंगे ? क्या कभी उन्हें उच्चतम विद्याओं को लदाख के अन्दर तथा अपनी-अपनी गोनपाओं के अन्दर प्राप्त करने का अवसर उपलब्ध होगा ?

(VII)

इस सिलसिले में राज्य द्वारा स्थापित तथा पोषित विद्या-संस्थानों की स्थिति पर भी विचार किया जाना जरूरी है। आज का राज्य पुराने जमाने के राज्य से बुनियादी तरीके से भिन्न है। एक ओर उसका घोषित उद्देश्य धर्मनिरपेक्षता और जनतन्त्र है और दूसरी ओर उसका सारा ढाँचा औपचारिक, अवैयक्तिक तथा भारी-भरकम होने के साथ कर्मचारी-तन्त्र और अफसरशाही पर आधारित है। उसका यह स्वरूप परम्परागत विद्याओं और धार्मिक शिक्षा के अनुकूल नहीं है। यहाँ इस सम्बन्ध में राज्य की सीमाओं तथा उसकी भूमिका पर विस्तार से विचार नहीं किया जा सकता। किन्तु इतना स्पष्ट है कि यदि बौद्ध विद्याओं के संरक्षण तथा अभिवर्धन के लिए मुख्यतया राज्य का आश्रय लिया जाएगा तो वह अन्ततः न केवल इस लक्ष्य की प्राप्ति में असफल रहेगा वरन् उससे निराशा भी उत्पन्न होगी। इस बात का खतरा है कि सरकारी नियमों, विधानों और कर्मचारीतन्त्र के बृहद् जाल में उलझ कर परम्परागत विद्या अपनी श्रेष्ठता ही नहीं, वरन् अपनी अस्मिता को भी खो दे। जो काम धर्म का है वह राज्य नहीं कर सकता। जो काम भिक्षुओं का है, लामाओं का है, वह सरकारी अफसर या अफसरशाही के साँचे में ढले हुए लोग नहीं कर सकते। इसलिए प्रयास यही होना चाहिए कि यथासम्भव बिना सरकारी सहायता के जनता की सहायता से, उपासकों की श्रद्धा के बल से परम्परागत विद्याओं के अध्ययनक्रम को पुष्ट किया जाय।

सरकारी सहायता से साथ सरकारी नियन्त्रण भी जुड़ा है। धर्म पर, विद्या पर और संस्कृति पर राज्य का नियन्त्रण कभी शुभ नहीं होता। यह सही है कि राज्य की पूर्ण उपेक्षा करना या राज्य के कोप को आमन्त्रित करना अनुचित एवं अव्यावहारिक है। राज्य का भी कर्तव्य है कि परम्परागत विद्याओं, कला तथा संस्कृति की रक्षा के लिए अपनी ओर से कदम उठाये। राज्य का काम है कि वह उन तमाम बाधाओं को दूर करे जो परम्परागत विद्या और संस्कृति के रास्ते में आती हैं और जो उसके अधिकार क्षेत्र के अन्दर हैं। यह उसका कर्तव्य है और इस कर्तव्य की ओर जनता द्वारा सरकार का ध्यान भी निरन्तर आकृष्ट किया जाना चाहिए। जनतान्त्रिक संस्कृति की यह एक मुख्य विशेषता है कि जनता अपनी आवाज उठाती है और उस पर ध्यान देना राज्य अपना कर्तव्य समझता है।

लेकिन जो काम भिक्षुसंघ को, गोनपाओं को तथा उपासकों को करना है वह राज्य द्वारा पूरा किये ज़ाने की अपेक्षा क्यों की जाय ? राज्य द्वारा संचालित विद्या-संस्थानों तथा शिक्षण संस्थाओं के चलने और विकसित होने में कोई भी हानि नहीं है। लेकिन उन संस्थाओं से यह अपेक्षा कैसे की जा सकती है कि वे गोनपाओं की विद्या परम्पराओं की रक्षा करेंगी अथवा उस परम्परा को पुनर्जागरित करेंगी। इसके लिए बौद्ध जनता को, उपासकों को और सबसे अधिक भिक्षुसंघ को दूरदर्शिता, धैर्य और साहस के साथ प्रयास करना होगा। इसके लिए कष्ट सहना होगा, एक बार फिर से गाँव-गाँव में श्रेष्ठ भिक्षुओं को चारिका के लिए निकलना होगा। राजनीति के लिए नहीं, धर्म के लिए। लेकिन क्या यह सब असम्भव है ? क्या ऐसी उम्मीद करना दिवास्वप्नमात्र है ? क्या ऐसी बात करना केवल वाग्विलास है ? यदि इन प्रश्नों का उत्तर हाँ में है तो बौद्ध विद्याओं की पुनःप्रतिष्ठा की चर्चा का कोई अर्थ नहीं रह जाता।

(VIII)

मूल समस्या यह है कि परम्परागत बौद्ध संस्कृति किस प्रकार अपनी पहचान बनाये रखे, कैसे अपनी शर्तों पर खड़ी रहे और कैसे बदलती दुनियाँ के साथ मेल बैठाये। आज सभी परम्परागत संस्कृतियों का संकट बहुत गहरा है। इस संकट के अनेक आयाम हैं। आस्था, संगठन, नेतृत्व और संस्थागत संरचना आदि सभी में यह संकट स्पष्ट परिलक्षित होता है। ऐतिहासिक परिस्थितियों ने लदाख की परम्परागत बौद्ध संस्कृति के संकट को विशिष्टता प्रदान कर दी है। यदि बौद्ध धर्म और संस्कृति की श्रेष्ठता को कायम रखना अभीष्ट है तो इस संकट की गहराई को पहचानना होगा। लेकिन परम्परागत संस्कृति को, विद्या को तथा जीवन दृष्टि को कायम रखने का यह तात्पर्य नहीं कि पुराने जमाने की स्थिति को वापस लाना है। न तो यह जरूरी है और न सम्भव है कि लदाख का पुराना सांस्कृतिक वैभव लौटे। बीती सदियाँ लौट नहीं सकतीं। सेनग्ये नमग्याल का राज लौट नहीं सकता और न लोचावा रिन्छेन जांग्पो अथवा लामा तगछङ-रेपा का जमाना फिर से आ सकता है। लेकिन लदाख अपनी सांस्कृतिक अस्मिता को, अपनी खास पहचान को आज की दुनियाँ में कायम अवश्य रख सकता है। इसी सन्दर्भ में बौद्ध विद्याओं के संरक्षण का विशेष महत्त्व है।

इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि बदली परिस्थितियों में अपनी सही

पहचान को कायम रखने के लिए अन्य अनेक बातों के साथ यहाँ की गोनपाओं को बौद्ध विद्या के केन्द्रों के रूप में विकसित करने की खास जरूरत है। ऐसा सम्भव भी हो सकता है, क्योंकि इसके लिए आवश्यक उपादान विद्यमान हैं, बुनियादी ढाँचा मौजूद है। अभी भी लदाख की गोनपाओं में ऐसे भिक्षु मौजूद हैं जिन्हें बौद्ध संस्कृति और विद्या के लिए दर्द है और जिन्हें संकट की गहराई का अन्दाजा है और जो गोनपाओं को विद्या और संस्कृति के उच्च केन्द्रों के रूप में विकसित करना चाहते है। उनके हृदयों में परम्परागत संस्कृति के लिए कितना दर्द है, इसका आसानी से अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इसी तरह लदाख में ऐसे गृहस्थ उपासक हैं जो परम्परा के श्रेष्ठ तत्त्वों के ह्रास के बारे में चिन्तित हैं और इसके लिए कष्ट उठाने के लिए भी तैयार हैं। फिर एक सबसे बड़ी बात यह है कि भारत में इस समय तिब्बत से आये हुए ऐसे सैकड़ों विद्वान् और धर्मधर लामा हैं जो भोट विद्या और संस्कृति की परम्परा के वाहक हैं। उनकी उपस्थिति का पर्याप्त लाभ लदाख को मिला भी है। उनका और भी अधिक लाभ उठाया जा सकता है।

ऐसी बात नहीं है कि लदाख की गोनपाओं के लिए परम्परागत विद्या का केन्द्र बनना असम्भव है। यदि भारत में आये हुए प्रवासी तिब्बती कर्नाटक के मंगोट जैसे स्थानों में ड्रेपुंड, सेरा, गल्देन या टशीलुन्हपो स्थापित कर सकते हैं और सारी विषम परिस्थितियों का मुकाबला करते हुए तिब्बत की विद्या-परम्परा को सजीव बना सकते हैं तो लदाख के बौद्ध क्या अपनी गोनपाओं को बौद्ध विद्या के केन्द्र नहीं बना सकते। यदि इटली, स्पेन, फ्रांस या जर्मनी जैसे आधुनिक योरोप के देशों में कैथलिक सेमिनरियों या मठों में धर्मशास्त्रों के अध्ययन की परम्परा को जीवित रखा जा सकता है अथवा मिस्र से लेकर इंडोनेशिया तक इस्लाम की धार्मिक शिक्षा देने के लिए बड़े-बड़े दारुल उलूम चलाये जा सकते हैं तो क्या भारत के हिमालय क्षेत्र के गोनपाएँ बौद्ध विद्या के रक्षण और अध्ययन की उच्च परम्परा को पुनःस्थापित नहीं कर सकती हैं ? लदाख की गोनपाओं के दुखंडनों और ल्हखंडनों में शाक्यमुनि, मंजुश्री, आर्य अवलोकितेश्वर, मैत्रेय आदि की विशाल मूर्तियों के सामने सदियों से दीप जलते आ रहे हैं, इन दीपों की ज्योति आध्यात्मिक प्रेरणा देती है। किन्तु बिना विद्या की ज्योति के इन दीपों की ज्योति भी सही प्रेरणा नहीं दे पाती। यदि ज्ञान की ज्योति बुझ जाय तो घृतदीपों की ज्योति अज्ञान के अन्धकार को नहीं हटा सकती। लेकिन ज्ञान की ज्योति जलाना काफी कठिन काम है इसके। बारे में लिखना या चर्चा करना आसान है। फिर भी चर्चा का अपना महत्त्व है। ●

बौद्धदर्शन : एक आध्यात्मिक विद्या

रामशंकर त्रिपाठी

भारतवर्ष में तीन सशक्त सांस्कृतिक धाराएँ हैं,—वैदिक, बौद्ध एवं जैन। संस्कृति से तात्पर्य परिपूर्ण वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन पद्धति से है। इन तीनों ने व्यक्ति एवं समाज के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का स्पर्श किया है। अतः ये तीनों ही परिपूर्ण संस्कृति हैं। भारतवर्ष में ये तीनों ही साथ विकसित हुई हैं। इनमें अन्तरावलम्बन की मात्रा भी कम नहीं रही है तथा तीनों ने एक दूसरे को प्रभावित भी किया है। अतः इन्हें एक भारतीय संस्कृति की धारा कहा जाता है। वैसे भारत से बाहर इन्होंने अपनी स्वतन्त्र अस्मिता सिद्ध की है।

समृद्ध संस्कृति की विशेषता है कि उसमें व्यक्ति और समाज के जीवन के किसी अंग की या आन्तरिक आवश्यकता की उपेक्षा न हो तथा वह दोनों को सुसंस्कृत, सुसम्पन्न, सुसमृद्ध एवं सन्तुलित बना सके। इसी सन्दर्भ में संगीत, कला, चित्र, शिल्प, काव्य, मूर्ति, चिकित्सा, ज्योतिष, शब्दशास्त्र, प्रमाण एवं अध्यात्म के बारे में प्रचुर मात्रा में साहित्य की सर्जना हुई है। इस प्रसंग में बौद्धों ने इन विषयों का पाँच महाविद्याओं में वर्गीकरण किया और उनका प्रचुर विकास किया, यथा—१. शब्दविद्या, अर्थात् काव्य, नाटक, छन्द, ज्योतिष, व्याकरण, कोश आदि, २. चिकित्सा, ३. कला, चित्र, मूर्ति, शिल्प, स्थापत्य आदि, ४. हेतुविद्या, प्रमाणशास्त्र एवं ५. अध्यात्मविद्या, दर्शन, योग तन्त्र साधना आदि। इतना ही नहीं, बौद्धों ने यहाँ तक कहा कि व्यक्ति का परम पुरुषार्थ बुद्धत्व, या सर्वज्ञत्व की प्राप्ति है, वह तब तक निष्पन्न नहीं हो सकता, जब तक व्यक्ति इन पाँचों विद्याओं का अभ्यास कर उनमें निष्णात नहीं हो जाता।

वैदिक संस्कृति की विशेषता उसका विशेषीकरण है। अर्थात् सामाजिक दृष्टि से विशिष्ट समुदाय (द्विज समुदाय) की ओर उसकी रुझान हैं। उसमें शिक्षा, चिकित्सा एवं धनोपार्जन में शूद्रों का अधिकार वर्जित है। दर्शन की दृष्टि से नित्यता की ओर वह अभिमुख है। ईश्वर, आत्मा, वेद आदि अनेक नित्य पदार्थों का अस्तित्व

उसे मान्य है। धर्म की दृष्टि से मोक्ष में स्त्री, शूद्र आदि का अधिकार मान्य नहीं है। इसके विपरीत बौद्ध संस्कृति सामान्याभिमुख है। उसमें शिक्षा, व्यवसाय, चिकित्सा आदि सभी में मनुष्यों का सामान अधिकार माना जाता है। धर्मोपासना एवं निर्वाण प्राप्ति के मार्ग में सभी प्रवेश ले सकते हैं। हिंसामय यज्ञविधानों के स्थान पर करुणामय शमथ, विपश्यना, पारमिताओं की पूर्ति आदि मोक्ष के उपाय माने गये हैं। दर्शन की दृष्टि से अनित्यता, क्षणिकता एवं निःस्वभावता बौद्धों के तात्त्विक सिद्धान्त हैं। फलतः बौद्ध संस्कृति परिवर्तन की आकांक्षिणी होती है, जबकि वैदिक संस्कृति का पर्यवसान यथास्थितिवाद में होता है। यही कारण है कि स्थिर-स्वार्थी तत्त्वों के विरोध में बहुजन के हित में परिवर्तनवादी बौद्ध धर्म अतीत में समादृत हुआ। दर्शन के क्षेत्र में बौद्धों ने कभी किसी विचारधारा से समझौता नहीं किया। जैन संस्कृति श्रमण संस्कृति होते हुए भी उसका रुख समन्वयवादी रहा है। फिर भी दर्शन, धर्म, साधना आदि के क्षेत्र में बौद्ध संस्कृति में जितना नव-नव विकास हुआ, उतना उनमें न हो सका। मानव कल्याण की प्रेरणा से बौद्ध धर्मदूतों ने इसके प्रसार में जितना अदम्य उत्साह प्रदर्शित किया, वह धर्मों के इतिहास में बेमिसाल है। यही कारण है कि बौद्ध धर्म एक अन्तर्राष्ट्रिय धर्म का गौरव प्राप्त कर सका और इससे भारत को जगद्गुरु होने का सम्मान प्राप्त हो सका। लेकिन वर्तमान में उसकी वह तेजस्विता किन कारणों से या किन दोषों से हो गई है, इस पर खुलकर विचार होना चाहिए।

चार्वाक को छोड़कर प्राय। सभी दर्शन अध्यात्मवादी हैं। 'आत्मनि अधीति अध्यात्मम्, तदधिकृत्य प्रवृत्तं दर्शनम् आध्यात्मिकम्' अर्थात् आत्मा का अधिकार करके प्रवृत्त दर्शन आध्यात्मिक हैं। इसका आशय है अपने को जानना। यह सही है कि जब तक व्यक्ति अपने को नहीं जानता, तब तक दूसरे को भी यथार्थरूप से नहीं जान सकता। उपनिषद् साहित्य भारत का सबसे प्राचीन अध्यात्म साहित्य है। 'आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः, आत्मानं विजानीहि' इत्यादि उपनिषद् के उद्घोष हैं। यहाँ 'आत्म' शब्द 'स्वयम्' के अर्थ में है, न कि आत्म नामक किसी नित्य पदार्थ के अर्थ में। किन्तु वैदिक परम्परा में आत्मा का अर्थ एक नित्य कूटस्थ चैतन्य के अर्थ में स्वीकृत हो गया। बौद्ध वाङ्मय में भी आत्म शब्द अनेक स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है, किन्तु सर्वत्र उसका अर्थ 'स्वयम्' ही है।

स्वयम् के ज्ञान से पर (जगत्) का यथार्थ ज्ञान होता है। स्व-पर के यथार्थ

ज्ञान से उस अज्ञान की निवृत्ति होती है, जो इनके यथार्थ ज्ञान में आवरण करता है। नहीं जानना (अप्रतिपत्ति) और गलत जानना (विप्रतिपत्ति) ये ही दो अज्ञान के कार्य हैं। इसके ही कारण अनेक प्रकार के मिथ्या आरोप एवं राग, द्वेष आदि क्लेश उत्पन्न होते हैं। क्लेशों से कर्म और कर्मों से दुःख और संसारप्रबन्ध की प्रवृत्ति होती है। सम्यग् ज्ञान से ही इस दुःखपरम्परा की निवृत्ति सम्भव है और इसे ही मोक्ष या निर्वाण कहा जाता है। मोक्ष या निर्वाण ही समस्त भारतीय दर्शनों का एकमात्र अन्तिम लक्ष्य है। इस विषय में उनमें आपस में कोई विरोध नहीं है। मतभेद केवल सम्यग् ज्ञान के स्वरूप और उसकी प्राप्ति के उपायों में हैं। अतः अब यहाँ बौद्ध दृष्टि से सम्यक् ज्ञान का स्वरूप, उसकी प्राप्ति के उपाय, अज्ञान की निवृत्ति का क्रम एवं मोक्ष या सर्वज्ञत्व की सिद्धि आदि विषय क्रमशः प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

[१]

जीव और जगत् की यथार्थ स्थिति को जानने वाला ज्ञान ही सम्यग् ज्ञान है। व्यक्तित्व नाम और रूप धर्मों का, जड और चेतन धर्मों का या रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान नामक पंच स्कन्धों का संपुंजनमात्र है। उसके उपादानों में नित्य, कूटस्थ आत्मा का कहीं स्थान नहीं है, इस विषय में सभी बौद्धदर्शन प्रस्थान प्रायः एकमत हैं। इस तरह के किसी आत्मा का न होना ही नैरात्म्य है। नैरात्म्य ही बौद्धों का परम तत्त्व है और यही बौद्धों की अन्य दर्शनों से विशेषता है। इस तरह समस्त बौद्ध दर्शनों में नैरात्म्य ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है। आत्मा का सर्वथा वन्ध्यापुत्र की तरह अभाव होने पर भी 'आत्मा है'—इस प्रकार समझने वाली दृष्टि 'आत्मदृष्टि' कही जाती है। यह एक प्रकार का अज्ञान है। इस आत्म-दृष्टि की वजह से स्व-पर का भेद, आत्मा-आत्मीय के प्रति स्नेह, परकीय आदि के प्रति द्वेष आदि क्लेशों की उत्पत्ति होती है। इसके विद्यमान रहते व्यक्ति की दुःख परम्परा या जन्म-मरण परम्परा का नाश सम्भव नहीं है।

आत्मदृष्टि भी द्विविध है, पुद्गलात्मदृष्टि एवं धर्मात्मदृष्टि। पुद्गलात्म-दृष्टि का वर्णन ऊपर किया गया है और यही क्लेशावरण है। अपने से भिन्न जागतिक पदार्थों को सत्ता के प्रति अभिनिवेश अर्थात् उनके अस्तित्व को ग्रहण करने वाली दृष्टि धर्मात्मदृष्टि है। यह भी एक प्रकार का अज्ञान है, किन्तु यह

क्लिष्ट अज्ञान नहीं है, अपितु अक्लिष्ट अज्ञान है। अक्लिष्ट अज्ञान का तात्पर्य यह है कि यह मोक्ष का बाधक नहीं है। इस अज्ञान के रहते हुए भी मोक्ष हो सकता है। इस लिए स्थविरवादी, वैभाषिक एवं सौत्रान्तिक, जिनका उद्देश्य केवल मोक्ष या निर्वाण प्राप्त करना है, इसके प्रहाण के लिए सचेष्ट नहीं होते। केवल महायानी दर्शन योगाचार एवं माध्यमिक इसे ज्ञेयावरण मानते हैं, क्योंकि सर्वज्ञत्व या बुद्धत्व प्राप्त करना जो महायान का उद्देश्य है, उसकी यह धर्मात्मदृष्टि बाधिका है। अतः इसके प्रहाण के लिए वे प्रयास करते हैं। यद्यपि योगाचार एवं माध्यमिकों में इसके स्वरूप के बारे में मतभेद है, किन्तु दोनों इसका प्रहाण करते हैं।

स्थविरवादी, वैभाषिक और सौत्रान्तिक बाह्य वस्तुवादी बौद्ध दार्शनिक प्रस्थान हैं। यद्यपि इनके मत में वस्तु की क्षणिक सत्ता मान्य हैं, फिर भी क्षण के स्वरूप के बारे से इनमें पर्याप्त मतभेद हैं।

स्थविरवादी और वैभाषिकों के मतानुसार वस्तु कीं तीन अवस्थाएँ मानी जाती हैं– उत्पद्यमान अवस्था, स्थिति की अवस्था एवं भंगावस्था। इन तीनों अवगत स्थाओं का सम्मिलित नाम उनके मत में 'क्षण' है। उत्पद्यमानावस्था में वस्तु अभी पूरी तरह उत्पन्न नहीं है। स्थिति अवस्था में वह उत्पन्न होकर स्थित है तथा भंगावस्था उसके विनाश की अवस्था है। इस प्रकार उत्पद्यमानावस्था वस्तु के अनाअस्तित्व की, स्थिति- अवस्था उसके वर्तमान अस्तित्व की तथा भँगावस्था अतीत अस्तित्व की द्योतिका है। इस तरह इन मतों में एक क्षण में तीनों काल अन्तर्भुक्त हो जाते हैं। फलतः ये त्रैकाल्य अस्तित्ववादी हैं।

सौत्रान्तिकों की क्षण की व्याख्या उपर्युक्त व्याख्या से सर्वथा भिन्न है। ये केवल वर्तमान का अस्तित्व ही स्वीकार करते हैं। इनके मत में अतीत और अनागत की सत्ता नहीं है। इनके अनुसार स्थिति और विनाश ये दो परस्पर विरोधी स्वभाव हैं और दो परस्पर विरोधी स्वभाव एक वस्तु में नहीं हो सकते, अतः वे उत्पाद के समनन्तर वस्तु का विनाश मानते हैं। उत्पाद और विनाश के बीच स्थिति-अवस्था इनके मत में मान्य नहीं है।

योगाचार मत में ज्ञानबाह्य वस्तु की सत्ता यद्यपि मान्य नहीं है, किन्तु ज्ञान की वस्तुसत्ता मानी जाती है। वह ज्ञान क्षणिक है और क्षण का स्वरूप वही है, जो सौत्रान्तिकों को मान्य है।

उपर्युक्त सभी दर्शनप्रस्थान वस्तुवादी हैं। इनके मत में वस्तु की सत्ता मान्य है। माध्यमिक दर्शन के अनुसार परमार्थतः वस्तु की निरपेक्ष सत्ता नहीं है। सत्ता का अभिनिवेश नितान्त काल्पनिक है। वस्तु का अस्तित्व केवल सापेक्ष है। सापेक्षता के आधार पर माध्यमिक सभी व्यवस्थाएँ सम्पन्न करते हैं।

[२]

ऊपर द्विविध आत्मदृष्टि की चर्चा की गई है। उसमें पुद्गलात्मदृष्टि क्लेशावरण एवं धर्मात्मदृष्टि ज्ञेयावरण है। हानयानी दार्शनिक प्रस्थान केवल क्लेशावरण का प्रहाण कर निर्वाण प्राप्त करते हैं तथा महायानी उभयविध आवरणों का प्रहाण कर सर्वज्ञत्व की प्राप्ति के लिए सचेष्ट होते हैं।

सामान्यत· पाँच मार्ग या क्लेशप्रहाण के पाँच उपाय होते हैं—सम्भारमार्ग, प्रयोगमार्ग, दर्शनमार्ग, भावनामार्ग, एवं अशैक्षमार्ग। आवरणों का समूल प्रहाण दर्शनमार्ग से प्रारम्भ होता है तथा भावनामार्ग के अन्त तक प्रहाण प्रक्रिया चलती रहती है।

महायान दर्शनमार्ग प्रथम भूमि से प्रारम्भ होता है। महायान की दश भूमियाँ दर्शन और भावना मार्ग में विभक्त हैं। प्रथम भूमि दर्शन मार्ग तथा शेष नौ भूमियाँ भावना मार्ग हैं। प्रथम से सप्तम भूमि तक क्लेशावरण का प्रहाण होता है तथा अष्टम भूमि से ज्ञेयावरण का प्रहाण प्रारम्भ होता है। दशम भूमि के अन्तिम भाग वज्रोपम समाधि द्वारा अन्तिम ज्ञेयावरण का प्रहाण होता है और उसके तत्काल बाद बुद्धत्व की प्राप्ति होती है।

हीनयानी दार्शनिक प्रस्थानों के अनुसार अनित्य, अनात्म, दुःख का शमथ-विपश्यनायुगल समाधि के द्वारा अभ्यास करने से दर्शनमार्ग प्राप्त कर व्यक्ति आर्यत्व का लाभ करता है। संसार में बाँधनेवाले दस संयोजनों का क्रमशः प्रहाण करके पुद्गल स्रोत-आपन्न, सकृदागामी, अनागामी होता हुआ अन्त में क्षयज्ञान और अनुत्पादज्ञान का लाभ कर अर्हत् होता है।

[३]

नैरात्म्यज्ञान के विभिन्न स्तर होते हैं। अज्ञान यद्यपि अनादि है, तथापि वह सान्त है। सर्वप्रथम गुरूपदेश एवं शास्त्रश्रवण द्वारा श्रुतमय ज्ञान उत्पन्न होता है।

तदनन्तर सम्यक् लिङ्ग एवं प्रसंग वाक्यों द्वारा सस्वभावता का निषेध किया जाता है और निःस्वभावता-विषयक ज्ञान उत्पन्न होता है। तर्क एवं युक्ति द्वारा उत्पन्न यह ज्ञान यद्यपि सविकल्प होता है, अतः भ्रान्त होता है, क्योंकि उसमें सस्वभावता का प्रतिभास होता है। फिर भी अपने प्रवृत्तिविषय में वह सही होता है। अतः वह मिथ्याज्ञान नहीं है। यह चिन्तामय ज्ञान है।

अन्त में इस ज्ञान को शमथ के रथ पर चढ़ाकर भावना की जाती हैं, फलतः इसमें क्रमशः उत्कर्ष होता जाता है। कल्पना का अंश क्रमशः क्षीण होता जाता है और अन्त में सविकल्प ज्ञान की परम्परा में तत्त्व का साक्षात्कारी निर्विकल्प प्रत्यक्ष उदित होता है। यह भावनामय ज्ञान है। इस निर्विकल्प प्रत्यक्ष की उत्पत्ति से पूर्व की अवस्था पृथग्जन अवस्था कहलाती है। इस ज्ञान के उदित होने पर आर्यत्व का लाभ होता है। आर्य की अवस्था के भी अनेक स्तर हैं, जिनमें ज्ञान की क्षमता में अन्तर होता है।

बुद्धत्व की अवस्था के पूर्व व्यक्ति की दो अवस्थाएँ होती हैं— पृथग्जन अवस्था एवं आर्य अवस्था। यद्यपि बुद्ध भी आर्य होता है, तथापि आर्य पुद्गल और बुद्ध में गुणगत अनेक वैशिष्ट्य होते हैं। निःस्वभावता को साक्षात् जानने वाला व्यक्ति आर्य तथा साक्षात् न जाननेवाला पृथग्जन कहलाता है।

निःस्वभावता को साक्षात् जाननेवाला ज्ञान 'यथार्थज्ञान' तथा घट, पट आदि जागतिक पदार्थों को प्रत्यक्षतः जाननेवाला ज्ञान 'यावत् ज्ञान' कहलाता है। इन्हें क्रमशः समाहित ज्ञान एवं पृष्ठलब्ध ज्ञान भी कहते हैं। ये दोनों ज्ञान क्रमशः ही उत्पन्न होते हैं, युगपद् नहीं।

समाहित ज्ञान में निःस्वभावता के अतिरिक्त किसी भी अन्य धर्म का, यहाँ तक कि स्वयं अपना प्रतिभास भी नहीं होता। इसीलिए शान्तिदेव ने कहा—

यदा न भावो नाभावो मतेः सन्तिष्ठते पुरः।
तदाऽन्यगत्यभावेन निरालम्बा प्रशाम्यति॥

सांवृतिक धर्मों का प्रतिभास समाहित ज्ञान में नहीं होता, फिर भी वह उनका प्रतिषेध नहीं करता, न तो उनका नास्तित्व ही जानता है। जिस प्रकार चक्षु-विज्ञान में शब्द का प्रतिभास नहीं होता, फिर भी वह शब्द के अस्तित्व का निषेध नहीं करता।

[४]

बुद्धत्व-अवस्था के ज्ञानों की स्थिति पूर्वोक्त ज्ञानों से भिन्न है। बुद्धत्वावस्था में समाहित और पृष्ठलब्ध दोनों ज्ञान यद्यपि होते हैं, किन्तु उनकी क्रमशः नहीं, अपितु युगपत् प्रवृत्ति होती है। एक ही ज्ञान समाहित और पृष्ठलब्ध दोनों होता है। क्योंकि बुद्ध का एक ही ज्ञान घट आदि धर्मों और उनकी निःस्वभावता दोनों को प्रत्यक्षतः जानता है। एक ही ज्ञान निःस्वभावता के साक्षात्कार की दृष्टि से समाहित ज्ञान तथा घट आदि धर्मों के साक्षात्कार की दृष्टि से पृष्ठलब्ध कहलाता है। दोनों ज्ञानों का एक ही होना बुद्धज्ञान की विशेषता है। परमार्थ सत्य और संवृति सत्य दोनों को एक समय में ही साक्षात् जाननेवाला ज्ञान सर्वज्ञ ज्ञान है। इसी को ही महाबोधि और ज्ञानधर्मकाय भी कहते हैं। विनेय जनों को धर्मोपदेश करते समय भी उनकी समाहित अवस्था अटूट रहती है। अर्थात् वे नित्य समाहित रहते हैं।

●

अनल्पकल्पासंख्येयभावनापरिवर्धिताः।
तिष्ठन्त्येव पराधीना येषां तु महती कृपा ॥

(अभिसमयालङ्कारालोक, उद्धृत, पृ० ३३८)

पाँच महाविद्याओं की आवश्यकता

टशी पलजोर

भगवान् शाक्यमुनि ने कहा है कि अन्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य का जीवन अति दुर्लभ है, क्योंकि मनुष्य का जीवन प्राप्त करने के लिए कुशल कर्मों का अर्जन करना पड़ता है। कुशल कर्मों के बिना मनुष्य योनि में उत्पन्न होना सम्भव नहीं है। पूर्व जन्मों में शील का पालन कर कुशल कर्मों के अर्जन तथा अकुशल कर्मों के परित्याग से ही मनुष्यों में जन्म होता है। इस प्रकार मनुष्य योनि में जन्म लेना बहुत कठिन है।

आचार्य शान्तिदेव ने कहा भी है :—

क्षणसंपदियं सुदुर्लभा प्रतिलब्धा पुरुषार्थसाधनी।
यदि नात्र विचिन्त्यते हितं पुनरप्येष समागमः कुतः॥

इस क्षण रूपी सम्पत्ति को प्राप्त करके इस के आधार पर पुरुषों की अभिलाषा रूपी अर्थ को सिद्ध करना चाहिए, क्योंकि अम्युदय एवं निःश्रेयस पुरुषार्श को सिद्ध करने के लिए मनुष्य शरीर का आधार प्राप्त है। इसे बहुत प्रयास करके भी सिद्ध करना चाहिए। यदि मनुष्य शरीर का आधार प्राप्त कर भी परलोक का हित सिद्ध न किया जाए तो बाद में इस प्रकार का सम्यक् आधार पुनः पुनः प्राप्त करना सम्भव नहीं है। अधिकतर लोग अक्षण की स्थिति में रहते हैं। इसमें सुगति सिद्ध करना भी अति दुर्लभ है।

सुगति में जन्म के प्रमुख कारण कुशल कर्म ही हैं। शीलों के अभ्यास के बिना सुगति में जन्मना सम्भव नहीं हैं। प्रासंगिक माध्यमिक के प्रसिद्ध आचार्य चन्द्रकीर्ति ने "मध्यमकावतार" नामक ग्रन्थ के द्वितीय परिच्छेद में कहा है कि सुगति में जन्म लेने का कारण शील ही है।

मनुष्य के मन में उद्वेग शीघ्र उत्पन्न हो सकता हैं, जिसके कारण वह संसार से मुक्त होने की अभिलाषा कर सकता है! देवताओं के जीवन भर भोगविलास में मग्न रहने के कारण उनके मन में निःसरण का विचार उत्पन्न ही नहीं होता! अतएव मनुष्य के जीवन को देवताओं के जीवन से भी श्रेष्ठ माना गया हैं, क्योंकि मनुष्य के जीवन

के आधार पर बुद्धत्व पद उपलब्ध किया जा सकता है। अनेक विनेय जनों ने बुद्ध के उपदेशों का श्रवण, चिन्तन एवं भावना करके अर्हत् पद प्राप्त किया है।

मनुष्यों का अन्तिम लक्ष्य या प्रयोजन निःश्रेयस की प्राप्ति है। इस के विना दो अन्तों में पतन हो जाता है। इन दो अन्तों में पतन हो जाने पर स्वार्थ भी सम्पन्न नहीं होता। निःश्रेयस की प्राप्ति सम्यक् विद्याओं के यथार्थ ज्ञान से ही सम्भव है। मनुष्यों को सीखने के लिये संसार में विद्याएँ आकाश में तारों की भाँति अनन्त हैं। इन सभी विद्याओं को मनुष्य अल्प आयु में सीख भी नहीं सकता। इसलिये प्राणी मात्र के हितैषी शाक्यमुनि ने सर्वज्ञता पद की प्राप्ति के लिये पाँच महाविद्याओं को सर्वश्रेष्ठ मार्ग बतलाया है। इसी के द्वारा मनुष्य अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। आर्य मैत्रेयनाथ ने भी महायानसूत्रालंकार में कहा है कि पांच महाविद्याओं में निपुणता प्राप्त न करने पर उत्तम आर्यों को भी सर्वज्ञता की प्राप्ति नहीं हो सकती। अतः अन्य विनेय जनों का निग्रह करने, उन पर अनुग्रह करने तथा स्वयं यथार्थ ज्ञान एवं यावत् ज्ञान की प्राप्ति के लिये इन महाविद्याओं का अभ्यास करना चाहिये।

हिमालय क्षेत्रों में महाविद्याएँ

लदाख, जंस्कर, लाहुल-स्पिति, किन्नौर आदि हिमालय क्षेत्रों में बौद्ध विद्याओं का प्रादुर्भाव कब हुआ, इसका प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध नहीं है। इन क्षेत्रों में पाँच महाविद्याओं के कुछ ज्ञाता आज के युग में भी विराजमान हैं। इन पाँचों विद्याओं में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना बहुत कठिन है। इन विद्याओं में से एक या दो विद्याओं को जान लेना भी महत्त्वपूर्ण है। इन क्षेत्रों के लोग भी परिश्रम कर इन विद्याओं में विद्वान् होते हैं। भारत तथा भोट देश के विद्वानों को इन विद्याओं का अध्ययन करने के लिये जितनी सुविधाएँ हैं, उतनी यहाँ के लोगों को नहीं है। यहाँ के लोग चित्रकला मूर्तिकला, ज्योतिष, चिकित्सादि विद्याओं का विशेष रूप से अध्ययन करते हैं। संस्कृत भाषा की शब्द विद्या को जानने वाले बहुत कम लोग होते हैं। शब्द विद्या के ज्ञाता इन क्षेत्रों में बहुत कम लोग हुए हैं। किन्नौर घाटी में ज्योतिष विद्या के विद्वान् हुए हैं। जिन में लामा सोदनम डुगग्ये का नाम बहुत प्रसिद्ध है। उनके पंचांग भोट देश, भूटान, लदाख, लाहुल, स्पिति आदि क्षेत्रों में जाते थे। उनका स्वर्गवास होने पर उनके पुत्र इस कार्य को आजकल करते हैं। इन क्षेत्रों में पाँचों विद्याओं को सम्यक् रूप से जानने वाले किन्नौर घाटी के सुप्रसिद्ध श्रद्धेय नेगी लामा जी थे।

उनकी विद्वत्ता से बौद्ध जिज्ञासुओं ने पर्याप्त लाभ लिया है। नेगी लामा जी तो इन पाँचों विद्याओं की साक्षात् मूर्ति थे। उनकी कीर्ति देश-विदेश में फैली हुई है। वे संस्कृत एवं भोट दोनों भाषाओं के व्याकरण को अच्छी तरह से जानते थे। जब तक वे जीवित थे भोट एवं सीमावर्ती विद्वान् अपनी शंकाओं को दूर करने के लिये उनके पास जाते थे। लदाख में कुछ वर्ष पूर्व तक इन विद्याओं के सुप्रसिद्ध विद्वान् तोगपा कछेन थे। इनके ज्ञान से यहाँ के कई लोगों ने ज्ञान अर्जन किया। इस समय ठिगसे कछेन लोजङ् जोदपा भी इन विद्याओं के विद्वान् हैं। उन्होंने कई ग्रन्थों की रचना की है। इन विद्वानों से भोट देश एवं हिमालय क्षेत्र के बौद्ध जिज्ञासुओं ने पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया है। इन विद्याओं के अध्ययनार्थ यहाँ की जनता इन विद्वानों के पास जाकर अध्ययन करती हैं। दलाई लामा जी ने तो नेगी जी को बोधिसत्त्व की संज्ञा दी है। वास्तव में नेगी लामा जी बोधिसत्त्व थे। इन विद्याओं को जानने वाले विद्वानों को इन क्षेत्रों की जनता बड़ा आदर एवं सम्मान प्रदान करती है।

प्राचीन काल में यहाँ के लोग इन विद्याओं के अध्ययनार्थ भोट देश के बौद्ध महाविहारों में जाते थे। उन्हीं विहारों से अध्ययन करके यहाँ वापस आते थे। इन विद्याओं के अध्ययनार्थ हिमालय क्षेत्रों में अभी तक कहीं भी शिक्षा का केन्द्र नहीं हैं। जिस के कारण इन विद्याओं का यहाँ पूर्ण रूप से विकास नहीं हो सका। यहाँ के अनेक जिज्ञासुओं को इन विद्याओं को सीखने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ है। प्राचीन काल में तो इन विद्याओं के अध्ययनार्थ संस्थाएँ नहीं ही थीं। आधुनिक युग में भी इन बहुमूल्य विद्याओं के लिये इन क्षेत्रों में शिक्षा संस्थाएँ नहीं के बराबर हैं।

प्राचीन समय में भारतवर्ष में जब नालन्दा. तक्षशिला, विक्रमशिलादि बौद्ध शिक्षा केन्द्रों में इन पाँच महाविद्याओं के अध्ययन एवं अध्यापन की व्यवस्था थी, उस समय भी सीमान्त प्रदेशों के लोगों को अध्ययन करने का सुअवसर नहीं मिला, क्योंकि इन सीमाओं से उन महाविहारों तक पैदल चलना सम्भव नहीं था। सातवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म का प्रवेश भोट देश में हुआ।

भोट देश में समस्त बौद्ध विद्याओं का अभूतपूर्व विकास हुआ। वहाँ के राजाओं ने बौद्ध धर्म के विकास के लिये अपना तन, मन और धन लगाकर प्रचार-प्रसार किया। जिसके फलस्वरूप समस्त बौद्ध विद्याओं की रक्षा एवं विकास भोट देश

में हो सका। आज विश्व के लोग भोट देश के विद्वानों से बौद्ध विद्याओं को सीखते हैं। सीमान्त क्षेत्रों के बौद्ध जिज्ञासुओं ने तो अति प्राचीन काल से ही बौद्ध विद्याओं की शिक्षा भोट देश के विद्वानों से प्राप्त की है। भोट देश के कारण सीमावर्ती क्षेत्र में आज भी हम बौद्ध विद्याओं को किसी न किसी रूप में विद्यमान देख रहे है। इन क्षेत्रों के अनेक विद्वान् भोट देश से अध्ययन करके आये हैं। वे वर्तमान समय में बौद्ध विद्याओं के प्रचार-प्रसार के कार्य में लगे हुए हैं। इन विद्याओं की आवश्यकता आधुनिक युग में बहुत ही उपयोगी दीख पड़ती है। इनके ज्ञान के बिना मनुष्य का जीवन व्यर्थ हैं।

पांच महाविद्याओं के ज्ञान से सर्वज्ञता की प्राप्ति

सामान्यतः विद्याओं के ज्ञेय विषय अधिक हैं। परन्तु बौद्ध धर्म की दृष्टि से सर्वज्ञता उत्तम प्राप्य वस्तु है। उसके द्वारा स्वार्थ और परार्थ सम्पन्न होते हैं। सर्वज्ञता मोक्षार्थियों का अन्तिम प्राप्य है। इसे प्राप्त करने के लिए उत्तम मार्ग का अन्वेषण करना अत्यन्त आवश्यक है। समस्त प्राणी अपने-अपने पूर्व कर्मों के कारण भवसागर में अनेक प्रकार के दुःखों का भोग करते हैं। दुःखों का प्रधान कारण अविद्या है। अविद्या का प्रतिपक्ष प्रज्ञा है। प्रज्ञा के बिना अविद्या का विनाश सम्भव नहीं। प्रज्ञा की सम्यक् उपलब्धि के लिए पाँच महाविद्याएँ हैं। भगवान् बुद्ध ने अपरिचित सूत्र में कहा है कि अनुत्तर बोधि की प्राप्ति के लिए विद्याओं की पाँच वस्तुओं (विषयों) का अध्ययन करना चाहिए।

बुद्ध के उपदेश से हमें यह शिक्षा मिलती है कि कारण की अवस्था में पाँच महाविद्याओं का सम्यक् रूप से अध्ययन करना चाहिए। बिना इनके ज्ञान के कार्यरूपी सर्वज्ञता पद की प्राप्ति कदापि सम्भव नहीं है। यह बात स्पष्ट है कि महायानी बोधिसत्त्वों को संसार के समस्त प्राणियों का कल्याण या हित सम्पादन करना होता है। इतना ही नहीं, विनेय जनों की अभिलाषाओं के अनुसार विशिष्ट प्रकार की शिक्षा प्रदान कर उन्हें मोक्ष एवं सर्वज्ञता के पद की ओर प्रवृत्त भी करना होता है। यह कार्य तभी सम्भव है, जब सत्त्वों की इच्छा पूर्ति करने के ज्ञान की क्षमता स्वयं में हो। जब व्यक्ति स्वयं नाना प्रकार की विद्याओं का ज्ञाता हो, तभी वह अन्य सत्त्वों की रक्षा कर पाएगा। आचार्य चन्द्रकीर्ति ने मध्यमकावतार ग्रन्थ के छठें परिच्छेद में कहा है कि जैसे चक्षुष्मान् पुरुष अन्धों के समूह को सरलता से इच्छित देश में ले जा सकता

है, उसी प्रकार पाँच महाविद्याओं के ज्ञान से समस्त सत्त्वों के लिए यथार्थ कल्याण सम्पादन करना सम्भव है। क्योंकि इन महाविद्याओं के माध्यम से स्वार्थ एवं परार्थ दोनों सिद्ध किए जा सकते हैं। आचार्य मैत्रेयनाथ ने महायानसूत्रालंकार में कहा भी है—पाँच महाविद्याओं में विद्वत्ता प्राप्त न करने पर उत्तम आर्य भी सर्वज्ञता को प्राप्त नहीं कर सकते। अतः अन्य मिथ्यावादियों के भ्रम का विनाश करने के लिए शब्द और प्रमाण विद्याएँ, विनेय जनों पर अनुग्रह करने के लिए कला एवं चिकित्सा विद्याएँ तथा स्वयं सर्वज्ञता पद प्राप्त करने के लिए प्रधान आध्यात्मिक विद्या है।

तथागत के वचन त्रिपिटक आदि को सम्यक् जानने के लिए इन विद्याओं का भरसक प्रयत्न करना चाहिए।

परोपकार करने वाले बोधिसत्त्वों को सभी विद्याओं को सीखना पड़ता है। आचार्य शान्तिदेव ने बोधिचर्यावतार नामक ग्रन्थ के पंचम परिच्छेद में कहा है—

न हि तद् विद्यते किंचिद् यन्न शिक्ष्यं जिनात्मजैः।
न तदस्ति यत् पुण्यमेवं विहरतः सतः॥

(बोधिचर्यावतार, ५ : १००)

अर्थात् बोधिसत्त्वों द्वारा न सीखे जानेवाला कोई भी ज्ञेय नहीं है। समस्त विद्याओं को सीखने वाले विद्वानों को पुण्य न होनेवाला कोई भी कार्य नहीं है।

शब्द विद्या

लौकिक तथा पारलौकिक दोनों दृष्टियों से शब्द विद्या या व्याकरण विद्या का ज्ञान सभी लोगों के लिए महत्त्वपूर्ण और उपयोगी है। इसके ज्ञान के विना मोक्ष एवं सर्वज्ञता प्राप्त करने वाले व्यक्तियों को आगम तथा शास्त्रों में निपुणता कैसे प्राप्त होगी? लौकिक जीवन में भी इसके बिना सफलता नहीं मिलेगी। ऐसा व्यक्ति उपयोगी या साधारण विद्याओं को भी सही रूप से नहीं समझ सकता। व्याकरण विद्या का ज्ञान योगी से लेकर कार्यालय के लिपिक तक के लिए उपयोगी तथा आवश्यक है। निर्वाण की अभिलाषा रखनेवाले योगी या साधक को तो व्याकरण के ज्ञान की आवश्यकता है ही। इसके ज्ञान के बिना बुद्ध के आगम तथा आचार्यों के शास्त्र सम्यक् रूप से ज्ञात नहीं हो सकते। व्याकरण के द्वारा उक्त शास्त्रों को सरलता से समझा जा सकता है। अतः साधक को भी सर्वप्रथम व्याकरण विद्या का उचित ढंग से अध्ययन करना चाहिए। व्याकरण का ज्ञान होने पर शास्त्रों के मूल मात्र को देखने से ही उसका

अर्थ लग सकता है। यदि उस मूल से पूरा ज्ञान नहीं होता है तो उसकी टीका और व्याख्याओं से ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। कुछ कठिन अंशों को गुरु के उपदेश से समझा जा सकता है। इस प्रकार व्याकरण का सही ज्ञान प्राप्त करने पर शुद्ध पढ़ना, लिखना, सही रूप से समझना, ठीक से पढ़ाना आदि का लाभ है।

विशेषकर शास्त्रों की रचना करनेवाले तो व्याकरण के ज्ञान के बिना एक वाक्य भी शुद्ध नहीं लिख सकते। बिना शब्दविद्या के ज्ञान के शास्त्रों की रचना कदापि सम्भव नहीं है। इस प्रकार साधक, योगी, कर्मकाण्डी, ज्योतिषी, प्राध्यापक, व्यापारी, लिपिक आदि सभी को व्याकरण का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक हैं। इस विद्या का ज्ञान न होने पर गलत अर्थ लिखने पर अनेक त्रुटियाँ हो सकती हैं।

विद्यमान शास्त्रों को समझने के लिये तो संस्कृत एवं पालि भाषाओं के व्याकरण को जानना बहुत आवश्यक हैं ही, भोट भाषा में उपलब्ध आगम एवं शास्त्रों को समझने के लिये भोट भाषा में प्राप्त व्याकरण के शास्त्रों को सीखना भी अनिवार्य है। जैसे-वादप्रदीप, त्रिशिका, लिंगावतार, लिपिगुरखङ् आदि भोट व्याकरण के ग्रन्थ हैं। शब्दविद्या के प्रमुख पाँच अंग भी हैं, जो निम्न प्रकार के हैं—काव्य, छन्द, अभिधान, नाटक तथा ज्योतिष।

भारतीय विद्वानों की परम्परा के अनुसार भोट विद्वानों में भी निम्नलिखित बातें सुप्रसिद्ध हैं। शब्द जानने से अर्थ में अज्ञान नहीं रहेगा। शब्द-अलंकार जानने पर काव्य में अज्ञान नहीं होगा। कोश जानने से संज्ञा विषयक अज्ञान नहीं होगा। छन्द जानने से पद विषयक अज्ञान नहीं रहेगा। नाटक जानने से भाषाओं में अज्ञान नहीं रहेगा।

शिल्प या कला विद्या का महत्त्व

विश्व में प्राचीन काल से आज तक कला का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। भारतीय कलाओं में बौद्ध कला का स्थान सर्वोपरि है। विशेषकर बौद्ध कलाओं के कारण ही भारतीय कलाओं में प्राण आया है। बोधिसत्त्व कला द्वारा सामान्य सत्त्वों का कल्याण या उन पर अनुग्रह कर सकता है। क्योंकि सत्त्वों की अनेक प्रकार की इच्छाएँ होती है कि वे बोधिसत्त्व उनके विचार के अनुसार सत्त्वों का कल्याण करें। मूर्ति बनाना, मण्डल का निर्माण करना, थङ्काओं का चित्र बनाना, लेख लिखना,

विभिन्न प्रकार के स्तूप बनाना, विहारों का निर्माण करना आदि। कम से कम साधकों को स्वयं के लिये भोजन, चीवर, वस्त्रादि के निर्माणार्थ भी कला विद्या की अत्यन्त आवश्यकता होती है। नाना प्रकार की मूर्तियाँ एवं चित्रों के कारण ही हमें किसी मूर्ति को देख कर बुद्ध या किसी अन्य देवता का ज्ञान हो पाता है। तन्त्र शास्त्रों में जब गुरु अभिषेक प्रदान करते हैं, उस समय गुरु जिस देवता का अभिषेक देते हैं, उसी की शिष्यों को अपने मन में भावना करनी पड़ती है। इन कलाओं एवं मण्डलों का सम्यक् ज्ञान हो तो जिस प्रकार वज्राचार्य उपदेश देंगे, उसी तरह सरलता से भावना कर पायेंगे। तब सही मन्त्रयान का वास्तविक अभिषेक प्राप्त हो सकता है। मुख्यतया बौद्ध कलाओं में कायिक, वाचिक तथा मानसिक कलाएँ संगृहीत हैं। इन तीनों कलाओं को जानने से साधक महान् कार्य कर सकता है। शरीर के हाव-भाव तथा विभिन्न मुद्राओं से देवता और महापुरुष प्रसन्न होते हैं। वाचिक कला अर्थात् वाणी से बातों को ठीक ढंग से कहने से स्वयं एवं अन्य दोनों को कष्ट नहीं होता है। संगीत भी इसी के अन्तर्गत है।

मानसिक कला— जो विचार अपने मन में आता है, उन्हें मन में ही सम्यक् बनाना है। मन के उचित एवं अच्छे होने पर वचन तथा शरीर भी भद्र हो सकता है। समस्त सत्त्वों का भार अपने कन्धों पर लेने वाले बोधिसत्त्वों के लिये तो यह विद्या बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक है। लौकिक एक अलौकिक दोनों दृष्टियों से कला की आवश्यकता है। कला के कारण ही भारतवर्ष आधुनिक युग में भी विश्व के दर्शकों के लिये प्रमुख केन्द्र बना हुआ है। जब भारत में बौद्ध राजाओं का शासन था, उस समय तो अचिन्तनीय कलाओं का विकास किया गया। इनका उदाहरण अजन्ता, एलोरा, नासिक, बोधगया, वाराणसी आदि है। भविष्य में भी कला के माध्यम से ही बौद्ध संस्कृति की रक्षा एवं विकास हो सकता है।

हेतु विद्या

बौद्ध दर्शन में प्रमाणशास्त्र का विशेष स्थान है। तर्कशास्त्र, प्रमाणशास्त्र, हेतुविद्या पर्यायवाची हैं। जिस प्रकार शब्दों की भ्रान्ति को दूर करने के लिये शब्द-विद्या की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार अर्थ की भ्रान्तियों को दूर करने के लिए प्रमाणविद्या की आवश्यकता है। जैसे विश्व में अनेक मिथ्या दृष्टियाँ है, हम सब

उन मिथ्या दृष्टियों को सही समझ बैठे हैं। जिसके कारण संसार से मुक्त नहीं हो पाते हैं। बौद्ध आचार्यों के मतानुसार प्रमाणशास्त्र के अनेक ग्रन्थ हैं, जिनमें मुख्य आचार्य दिङ्नाग द्वारा रचित प्रमाणसमुच्चय, आचार्य धर्मकीर्ति द्वारा रचित प्रमाण-वार्तिक, न्यायबिन्दु, प्रमाण-विनिश्चय, सन्तानान्तरसिद्धि आदि हेतुविद्या के मौलिक एवं प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। इन दो आचार्यों के ग्रन्थों के आधार पर बाद में प्रमाणशास्त्रों के कई ग्रन्थ रचे गये हैं। बौद्ध साधक हेतु विद्या के माध्यम से विनेय जनों की मिथ्या दृष्टियों को हटा सकते हैं। अतः बौद्ध विद्याओं में प्रमाण-शास्त्रों का स्थान सर्वोपरि है।

चिकित्सा विद्या

मनुष्य एवं पशु इन दो सत्त्वों के साक्षात् कल्याणार्थ बोधिसत्त्व चिकित्सा विद्या का ज्ञान अर्जन करते हैं। क्योंकि वे सत्त्वों को दुःखी नहीं देख सकते। चिकित्सा विद्या के बौद्ध परम्परा में प्रधान चार ग्रन्थ हैं, जिनके अध्ययन से इस विद्या को समझा जा सकता है, जो निम्न हैं—मूलतन्त्र, अपरतन्त्र, व्याख्यातन्त्र तथा उपदेशतन्त्र। इनके अतिरिक्त आचार्य नागार्जुन आदि भारतीय बौद्ध आचार्यों ने कई चिकित्सा ग्रन्थों की रचना की है। भोट देश में इस विद्या का पर्याप्त विकास हुआ। इस विद्या के ऊपर भोट विद्वानों ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। इस समय सैंकड़ों पोथियों से अधिक चिकित्सा विद्या के ग्रन्थ उपलब्ध हैं। हिमालय क्षेत्रों में इस विद्या के अध्ययन के लिए कोई संस्था नहीं थी। जिसके कारण इन क्षेत्रों में इसका अधिक विकास नहीं हो सका। फिर भी कुछ लोग थोड़ा बहुत जानते हैं। उनकी परम्पराएँ अभी चली आ रही हैं। स्वयं साधकों को जीवित रहने के लिए भी चिकित्सा विद्या की आवश्यकता है।

अध्यात्म विद्या

पंच महाविद्याओं में प्रमुख आध्यात्मिक विद्या है। सक्या पण्डित ने आध्यात्मिक विद्या के निम्नलिखित ग्रन्थों को माना है। वे इस प्रकार हैं—विनय पिटक, सूत्र पिटक, अभिधर्म पिटक, क्रिया तन्त्र, चर्या तन्त्र, योगतन्त्र, अनुत्तर योग तन्त्र, इनकी टीकाएँ एवं व्याख्यादि। भगवान् बुद्ध ने उपर्युक्त विद्याओं का विभिन्न विनेय जनों की इच्छा, धातु, अधिमुक्ति आदि के अनुसार उपदेश प्रदान किया। भगवान् बुद्ध के वचन काग्युर, भारतीय बौद्ध आचार्यों द्वारा रचित शास्त्र तनग्युर,

तथा भोट एवं सीमान्त विद्वानों द्वारा रचित ग्रन्थ सुमबुम में हैं। इन सबों में प्रधान रूप से आध्यात्मिक विद्याओं का ही वर्णन हैं। इनमें गौण रूप से अन्य विद्याओं का भी वर्णन है।

तथागत ने स्वयं कहा है कि पाँच विद्याओं का अध्ययन करना चाहिये। उनके उपदेशों में आध्यात्मिक विद्याओं पर ही जोर है। अन्य सभी विद्याएँ तो आध्यात्मिक विद्या को समझने में सहायक हैं। बुद्ध के आध्यात्मिक उपदेशों का प्रारम्भ गुरुसेवन से है। गुरुसेवन, शरणगमन, कर्मों में कार्य-कारण, मोक्ष, बोधि-चित्तोत्पाद, परमिताएँ, प्रतीत्यसमुत्पाद, उत्पन्न क्रम, सम्पन्न क्रमादि क्रमशः ज्ञातव्य हैं। इन आध्यात्मिक विद्याओं को समझने के लिये नागार्जुन द्वारा रचित श्रामणेर-कारिका से लेकर गुह्य समाज तन्त्र तक प्रामाणिक ग्रन्थ गुरु से निष्ठापूर्वक अध्ययन करना होगा। उपर्युक्त समस्त शास्त्रों का श्रवण, चिन्तन, भावना करने पर ही मोक्ष और सर्वज्ञता की प्राप्ति हो सकती है। इन विद्याओं को सर्वप्रथम समझना चाहिये। धर्म की भावना या अभ्यास नहीं करने पर स्वयं और अन्य सत्त्वों को लाभ नहीं मिलता है। अतः अन्य जितनी विद्याएँ हैं, वे सब आध्यात्मिक विद्या को सरलता से जानने के लिये हैं। आध्यात्मिक विद्या मानव जीवन को सार्थक बनाने के लिये अति आवश्यक है।

●

आकाशस्य स्थितिर्यावद् यावच्च जगतः स्थितिः।
तावन्मम स्थितिर्भूयाज्जगद्दुःखानि निघ्नतः॥

(बोधिचर्यावतार, १० : ५५)

लदाख और लाहुल का ऐतिहासिक सम्बन्ध

के० अंगरूप लाहुली

किसी भी देश के इतिहास को उसके चारों ओर की परिस्थितियां प्रभावित करती हैं। लदाख का पड़ोसी प्रदेश लाहुल जिस का क्षेत्रफल 1,943·2 वर्ग किलो मीटर है,[1] गिरिराज हिमालय के उस अंचल में स्थित हैं, जहाँ से चन्द्रा और भागा नदियाँ निकलती हैं। इस की सीमा उत्तर में लदाख, पश्चिम में चम्बा, दक्षिण में कुल्लू और पूर्व में स्पिति से लगती है। अतः स्वभाविक रूप से अतीत में इसके पड़ोसी राज्य इस पर सदा हावी रहे हैं। यही कारण था कि लाहुल की कभी भी अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं बन पाई। न्यायप्रिय अंग्रेजों के प्रशासन काल में भी वह कुल्लू सब–डिवीजन के अन्तर्गत कांगड़ा जिले में सम्मिलित किया गया था। स्वतंत्रता के पश्चात् तो इसे एक और गहरा आघात पहुँचा, जबकि 195७ में पहाड़ी जिलों के पुनर्गठन के समय लाहुल और स्पिति दो भिन्न क्षेत्रों को मिला कर हिमालय प्रदेश का एक जिला बना दिया गया। यद्यपि बौद्ध धर्म को छोड़ कर इन दोनों क्षेत्रों की संस्कृति सर्वथा भिन्न है। इस प्रकार आज लाहुल अपने अतीत के गौरवमय इतिहास के लिए ही नहीं, अपितु वर्तमान परिस्थिति की रक्षा के लिए भी अधिक चिन्तित है।

ईस्वी सन् 1840–41 में सिखों ने इस क्षेत्र पर आक्रमण कर इसे अपने नियंत्रण में ले लिया था, परन्तु 4–5 वर्ष के बाद ही दो-आब पर अंग्रेजों की जीत के साथ-साथ यह प्रदेश सीधे ब्रिटिश प्रशासन के अधीन कुल्लू के साथ पंजाब प्रान्त में मिला लिया गया था और यह स्थिति स्वतंत्रता से पूर्व तक ज्यों की त्यों बनी रही। यह विदित है कि सिखों के आक्रमण से पूर्व इस क्षेत्र पर दीर्घकाल से कुल्लू नरेशों का आधिपत्य रहा है। विद्वानों का विचार है कि ई० स० 1080–81 के आस पास लदाख के राजा ल्ह–छेन उत्पल ने संभवतः लाहुल के रास्ते ही कुल्लू पर चढ़ाई की थी और उस समय लाहुल लदाख के अधिकार में चला गया था। परन्तु इस सम्बन्ध में आज तक

१. हिमाचल प्रदेश की सांख्यिकी रूपरेखा; 1981, क्षेत्रफल तथा जनसंख्या पृ० 18

न तो कोई अभिलेख उपलब्ध हुआ है और न कोई प्रामाणिक दस्तावेज। तो भी कहा जाता है कि उस समय की एक सन्धि के अनुसार पराजित कुल्लू नरेश वार्षिक नजराने के रूप में पहाड़ी 'जो' यानी बैंल और लोहा भेजते थे। यह स्पष्ट है कि पहाड़ी बैल जो याक और गाय के संपर्क से उत्पन्न संतान होती है, कुल्लू में नहीं होता। अतः यह संभव है कि कुल्लू के राजा इसे लाहुल से ही प्राप्त कर लदाख को अदा करते रहे हों। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उस समय भी लाहुल कुल्लू के अधिकार में ही था। इसी प्रकार की एक और सन्धि ई० स० 1670 के पश्चात् भी लदाख और कुल्लू के मध्य सम्पन्न हुई थी। यह युद्ध के बाद का इकरारनामा नहीं, अपितु दो राज्यों की पारस्परिक व्यापारिक सन्धि थी। राजा सेङ्-गे-नम-ग्यल का पौत्र राजा दे-लेग्स्-नम-ग्याल (1645-1680) जब लदाख पर राज्य कर रहा था तो उस समय मंगोल वंशज गदन-छेवांग के तत्त्वावधान में तिब्बत की ओर से लदाख पर आक्रमण हुआ और लदाख की मुट्ठी भर शक्ति, विशाल तिब्बत की सेना से टक्कर ले न सकी। फलस्वरूप दे-लेग्स को विवश होकर काश्मीर से मुगलों को सहायतार्थ बुलाना पड़ा। इस युद्ध में लदाख ने बहुत कुछ खोया। दे-लेग्स की वृद्धावस्था भी इस के लिए एक कारण थी। ऐसा लगता है कि युद्ध के पश्चात् उनके उत्तराधिकारी राजा ञिङ्म-नमग्यल (1680-1720) ने जब लदाख की बागडोर संभाली तो उस समय लदाख काफी शक्तिहीन हो चुका था। इस विपत्ति का लाभ उठाकर कुल्लू के नरेश राजा मान सिंह ने बारा-लचा दर्रे के उस पार लिंग्स-ती तक के मैदान को अपने अधिकार में ले लिया और लिंग्स-ती के पास छ्-रब्स नामक स्थान को लदाख और लाहुल की सीमा निर्धारित की, जो आज भी इन दो प्रदेशों की सीमा है। उपर्युक्त सन्धि कौन और किन राजाओं के मध्य सम्पन्न हुई, और इनमें क्या-क्या शर्तें निहित थीं, इस-का स्पष्ट उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता, परन्तु लाहुल के वृद्धजनों की दंतकथा से ऐसा प्रतीत होता है कि लदाख की ओर से दिये गए गन्धक के बदले कुल्लू सौ से भी अधिक कुलियों का बोझ लोहा लदाख को भेजता था। यह लोहा कुल्लू नरेश प्रशासन लाहुल वालों से कर के रूप में वसूल करता था और उन्हीं के द्वारा बेगारी में छ्-रब्स तक पहुँचवाता था। लाहुल में लोहे का उत्पादन नहीं होता, अतः यह स्वभाविक है कि उन्हें इसे खरीदने के लिए कुल्लू जाना पड़ता था। यह आदान-प्रदान सिखों के कुल्लू और लाहुल पर अधिकार जमाने तक विद्यमान रहा। यों लदाख और

लाहुल के सम्बन्ध में चिग-तन सन्धि के नाम का भी यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है, परन्तु उक्त दस्तावेज आज तक किसो विद्वान् के हाथ लगा हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता। एक ब्रिटिश यात्री मिस्टर मूरक्राफ्ट, जिन्होंने 1820 में लदाख से लाहुल के रास्ते पंजाब के मैदानी भाग की यात्रा की थी, उनके विवरण के अनुसार उस समय लाहुल की चन्द्रावादी में चार गाँव ऐसे थे, जो अपना राजस्व लदाख को अदा करते थे। वे आगे लिखते हैं यह संभवतः सीमा और व्यापार सम्बन्ध को शान्त रखने के लिए दिया जाता होगा। मेरे विचार से मिस्टर मूरक्राफ्ट ने ऊपर जो चन्द्रावादी की चर्चा की है, उनका तात्पर्य भागावादी से रहा होगा, क्योंकि लदाख के साथ चन्द्रा की नहीं, अपितु भागावादी की सीमा लगती है। यह भी कहा जाता है कि राजा ल्ह-छेन-उत्तपल के समय से लेकर 17वीं शती के पूर्वार्द्ध तक लाहुल के उत्तरी भाग पर लदाख का कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य ही रहा है। तत्पश्चात् यह प्रभाव धीरे-धीरे घटने लगा। सिखों के लाहुल पर आक्रमण के पश्चात् लदाख और लाहुल के सम्बन्धों की बातों को दृष्टि में रखकर कुछ लेखक "लाहुल" नाम को भी ल्हो-युल शब्द का विकसित रूप मानते हैं। ल्हो-युल अर्थात् दक्षिण प्रान्त का देश, तात्पर्य लदाख के दक्षिणी प्रान्त से हैं। इस सम्बन्ध में विद्वानों का ध्यान मैं इस ओर आकर्षित करना चाहूंगा कि भोट भाषा में लाहुल के लिए गर-ज शब्द का प्रयोग होता है, न कि ल्हो-युल या लाहुल। "लाहुल" नाम हिन्दी-उर्दू भाषा-भाषियों की उपज है। वास्तव में लाहुल और गर-ज दोनों शब्दों की व्युत्पत्ति अज्ञात हैं।

यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि लाहुल के उत्तरी भाग पर यदि लदाखी राजाओं का कभी कुछ प्रभुत्व रहा भी हो तो वह बड़ा अस्थिर सा रहा है। क्योंकि इस सम्बन्ध में अभिलेखों और प्रमाणों का अभाव ही नहीं, अपितु लाहुली जन जीवन पर भी लदाखी संस्कृति का अल्पतम प्रभाव है। जबकि ऐसी स्थिति में लदाख की बोली और संस्कृति की छाप पड़े बिना नहीं रहती। यह भी हो सकता है कि अतीत में लाहुल का ऊपरी भाग एक छोटा सा क्षेत्र था, इसलिए लदाखी राजा इसके प्रति अधिक मोहित नहीं रहे होंगे। ई० स० 680 में चम्बा के राजा पेरुवर्मन ने कुल्लू के नरेश दत्तेश्वर पाल को युद्ध में परास्त कर लाहुल के पश्चिमी क्षेत्र का एक बड़ा भाग, जिसकी सीमा थिरोट नाले से रोली तक की मानी गई थी, अपने नियन्त्रण में ले लिया था और बाद में उस क्षेत्र का नाम चम्बा-लाहुल रखा था, तभी से लाहुल

का दायरा सिकुड़ कर एक छोटा सा प्रदेश बन गया था। संभवतः यही कारण था कि लदाख के सम्राट् कहे जाने वाले राजा सेङ्-गे-नम-ग्यल (1590–1635) ने भी लाहुल को कभी हथियाने की कोशिश नहीं की। जबकि इसके पड़ोसी प्रदेश स्पिति और जंस्कर को उन्होंने अपने अधिकार में ले कर अपने कनिष्ठ राजकुमार दे-छोग-नम-ग्यल को सौंप दिया था। इस प्रकार बाद में ब्रिटिश शासन काल में भी प्राशासनिक सुविधा के लिए उपर्युक्त सीमा यथावत् रहने दी गई और इसके शेष भाग को ब्रिटिश-लाहुल कहा गया। इस प्रकार अतीत में यह प्रदेश दो भागों में विभक्त रहा है। मैंने अपने इस निबन्ध में लाहुल के ऊपरी भाग की जो चर्चा की है, उसका तात्पर्य ब्रिटिश लाहुल की भागा घाटी से हैं। लदाख और लाहुल का सम्बन्ध राजनीतिक की अपेक्षा धार्मिक अधिक रहा है।

17वीं शताब्दी में लदाख के जंस्कर क्षेत्र के पदुम नामक गाँव के राजपरिवार में एक मेधावी बालक उत्पन्न हुआ। बड़ा होकर इसने संन्यास ग्रहण किया और सतत परिश्रम और साधनारत रहने के पश्चात् सिद्धत्व प्राप्त किया। इस प्रकार बाद में वे डुब-छेन अर्थात् महासिद्ध के नाम से विख्यात हुए। उनका उपसम्पदा नाम दे-व-ग्य-छो था। डुब-छेन-दे-व-ग्य-छो और लदाख के हेमिस गोन्पा के संस्थापक लामा तग-छङ्-रस्-प प्रथम समकालीन थे। यह विदित है कि ई० स० 1564 (जल-वृष-वर्ष) में लामा तग-छङ्-रस्-प एक तीर्थयात्री के रूप में तिब्बत से जंस्कर आये थे और तत्पश्चात् लाहुल होते हुए तांत्रिक महातीर्थ स्थान जालंधर और उड्डियान आदि की यात्रा कर 1570 में लदाख पहुँचे थे और उन्होंने प्रसिद्ध हेमिस गोन्पा की स्थापना की थी। उस समय तिब्बत में तिलो, नरो, मर-प तथा मिला-रस्-प आदि सिद्धों की परम्परा वाले क-ग्युद-प निकाय का प्रचार सर्वाधिक था। ये दोनों सन्त भी इसी निकाय के अनुयायी थे। इस प्रकार वे इसके प्रचार में संलग्न रहे। धीरे-धीरे इनका प्रचार क्षेत्र बढ़ने लगा और डुब-छेन-दे-व-ग्य-छो लाहुल पहुँच कर ल्हो-डुग-क-ग्युद-प निकाय का प्रचार करने लगे। कहते हैं कि उनका शरीरान्त भी वहीं पर हुआ था। उन्होंने मध्य लाहुल के केलंग नामक कस्बे की उत्तर की ओर शशुर नामक एक विहार की स्थापना की, जो आज भी इसी निकाय का प्रमुख केन्द्र है। इस विहार की प्रमुख प्रतिमाओं में दे-व-ग्य-छो की भी एक मृण्मूर्ति विद्यमान है। कहते हैं कि दाहसंस्कार के समय उनका हृदय-पिण्ड बिना जले ही रह गया था और बाद में उसका

इस मूर्ति में निधान किया गया था। विद्वानों का विचार है कि लाहुल में ल्हो-डुग् क-ग्युद्-प का प्रचार सर्वप्रथम इन्हीं सन्त के द्वारा हुआ था। यह ज्ञात है कि ल्हो-डुग् क-ग्युद्-प के संस्थापक जब् स्टुंग नवांग नम-ग्यल यद्यपि तिब्बत के र-लुङ् विहार से सम्बन्धित भिक्षु थे, परन्तु 1616 ई० में वे भूटान चले गए थे और वहाँ पर उन्होंने अपने निकाय का प्रचार किया था। इस प्रकार आज भूटान का राष्ट्र धर्म भी इसी परम्परा-वादी ल्हो-डुग् क-ग्युद्-प निकाय ही माना जाता है। क-ग्युद्-प निकाय की चार बड़ी और छः छोटी उप शाखाओं में से लाहुल में ल्हो-डुग् और जुङ्-डुग् प्रशाखाओं का प्रचार है। ये दोनों प्रशाखाएँ लदाखी प्रचारकों के माध्यम से ही लाहुल पहुँची हैं। जब कि ल्हो-डुग् क-ग्युद्-प के प्रचारक दे-व-ग्य-छो और जुङ्-डुग् क-ग्युद्-प का प्रमुख केन्द्र गे-मुर गोन्पा है। आज से कुछ वर्ष पूर्व तक इस गोन्पा के लामा लोग शिक्षा-दीक्षा के लिए हेमिस जाया करते थे और ल्हो-डुग्-प वाले जंस्कर के बर-दन और जोङ्-खुल् गोन्पाओं में दीक्षा पाते थे।

17वीं शताब्दी के ही आस-पास जंस्कर क्षेत्र के अतिङ् नामक गांव के रहने वाले एक अन्य क-ग्युद्-प विद्वान् लामा नवांग छेरिंग बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ लाहुल पहुंचे। उनका प्रचार-क्षेत्र मुख्य रूप से लाहुल की चन्द्र-भागा घाटी था। उन्होंने अपनी आत्मकथा में जो विवरण दिए हैं, उनसे ज्ञात होता है कि उस समय लाहुल का प्रमुख बरबोग का ठाकुर कुल्लू प्रशासन के अधीन राज्याधिकार प्राप्त एक शक्तिशाली व्यक्ति था और उसकी आज्ञा की अवहेलना करने वालों को दण्डनीय समझा जाता था। वे आगे लिखते हैं कि गुम-रङ्-ठाकुर श्री रोङ्-गे की मृत्यु होने पर जब उन्हें बुलाया गया तो उस समय वहाँ पर लगभग दो सौ लामा अन्त्येष्टि क्रिया में संलग्न थे। निःसन्देह वे क-ग्युद्-प निकाय की दोनों प्रशाखाओं के लामा रहे होंगे। क्योंकि ऐसे अवसरों पर गुम-रङ् आदि ठाकुर परिवारों में भागा घाटी के सभी गोन्पाओं के लामाओं को निमंत्रित करने की परिपाटी थी। उनके विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि क-ग्युद्-प के साधनाप्रधान निकाय होने के नाते उनमें कोई भी लामा ऐसा नहीं था, जो उपसम्पदा प्राप्त भिक्षु हो। यद्यपि लाहुल में बहुत प्राचीन काल से श्रमण धर्म का प्रचार हो चुका था।

10वीं शती के मध्य, तिब्बत में बौद्ध धर्म के प्रमुख सुधारक आचार्य चोङ्-ख-प के छः दिग्गज विद्वान् शिष्यों में तोद्-शेस-रब-जङ्-पो स्वयं तथा उनके द्वारा प्रेषित प्रचा-

रकों द्वारा लाहुल में विनय प्रधान गे-लुग्स-प निकाय का प्रचार हुआ था तथा उनके लोकप्रिय उपदेशों से प्रसन्न होकर तत्कालीन कुल्लू के राजा ने तोद-शेस-रब-जङ्-पो को लाहुल की भागावादी के उत्तरी क्षेत्र में स्थित छोस्-कु-ची गोन्पा से लेकर जिस-प नामक गाँव के आस-पास का सारा क्षेत्र धर्मार्थ अर्पित कर दिया था। इसके अतिरिक्त मार्ग में पड़ने वाले गे-मुर तथा जो-लिङ् आदि धर्मस्थानों को भी उन्हें सौंप कर लाहुल में गे-लुग्स-प निकाय का सर्व-व्यापक प्रचार करने की प्रार्थना की थी। तोद-शेस-रब-जङ्-पो 15वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लदाख के ठिग-से नामक एक गाँव में पैदा हुए थे। शिक्षा-दीक्षा के लिए वे तिब्बत गए और वहाँ पर आचार्य चोङ्-ख-प (जन्म 1357) के सन्निधान में विद्या अध्ययन करते रहे। उनकी बुद्धि विलक्षण थी। अतः उन्होंने आचार्य के शिष्यों में प्रमुखता प्राप्त की तथा स्वदेश लौट कर गे-लुग्स-प निकाय का प्रचार करने लगे। उस समय लदाख के सिंहासन पर राजा डग-प-बुम-दे (1400–1440 ई०) विराजमान थे। उनके सहयोग से तोद-शेस-रब-जङ्-पो ने लदाख में अनेक धार्मिक कार्य सम्पन्न किए। उन्होंने सर्वप्रथम ठिग-से के उत्तर में स्थित तग-मो गाँव के निकट ल्ह-चङ्-सेर-पो (पीत देवालय) नामक एक विहार की स्थापना की। तत्पश्चात् सम्पूर्ण लदाख तथा जंस्कर की यात्रा कर स्थान-स्थान पर आचारप्रधान गे-लुग्स-प निकाय का प्रचार करने लगे। इसी यात्रा में वे स्वयं अथवा उनके प्रचारक लाहुल पहुँचे और वहाँ पर भी उन्होंने लोगों को प्राति-मोक्ष की महत्ता को समझाया। उनके उपदेशों का तत्काल प्रभाव तो अवश्य ही पड़ा है, यह बात लाहुल के तत्कालीन प्रशासक कुल्लू के राजा द्वारा वहाँ के कुछ क्षेत्र उन्हें धर्मार्थ अर्पित करने से सिद्ध होती है। परन्तु यह कितना चिरस्थायी रहा, इसका आज कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता। वर्तमान में लाहुल के किसी भी क्षेत्र में गे-लुग्स प निकाय का न तो कोई गोन्पा है और न कोई अनुयायी। यहाँ तक कि स्वयं छोस-कु-ची गोन्पा में भी ऐसा कोई प्रतीक दृष्टिगोचर नहीं होता, जिससे हम उक्त गोन्पा को विनयवादी गे-लुग्स-प का विहार कह सकें।

लाहुल के इतिहास में वह एक महत्त्वपूर्ण क्षण था, जब कि 1881 ई० में वहाँ के कारदंग नामक ग्राम में एक प्रभावशाली बालक ने जन्म लिया। बड़े होकर वे शिक्षा के लिए तिब्बत के सुदूर खम्स प्रदेश गए और शिक्षा के उपरान्त वहाँ से प्रव्रज्या ग्रहण कर स्वदेश लौटे। बाद में वे लामा नोरबू के नाम से विख्यात हुए।

उनके साथ लाहुल के कुछ अन्य लामा भी शिक्षार्थ खम्स प्रदेश गए थे और उन सबों ने भी प्रव्रज्या ग्रहण की थी। लामा नोरबू ने अपने गाँव के ऊपर वाले टीले पर एक विहार का नवनिर्माण किया और उसमें भिक्षु संघ की स्थापना की। प्रथम चरण में उनको भिक्षु संघ की स्थापना में कोई कठिनाई नहीं हुई, क्योंकि उनके साथ खम्स प्रदेश गए पाँचों लामा भिक्षु बन कर उन्हीं के साथ लाहुल वापस आ गए थे। क्योंकि बुद्ध शासन भिक्षु संघ पर निर्भर करता है तथा शील बौद्ध धर्म की भित्ति स्वरूप होता है। इसके बिना बुद्ध शासन का दुर्ग अडिग नहीं रह सकता। लामा नोरबू को विहार और भिक्षु संघ के संचालन के लिए जब अधिक भिक्षुओं की आवश्यकता पड़ी तो उन्होंने कुछ वीतरागी लामाओं को उपसम्पदा प्राप्त करने के लिए जंस्कर के जोङ्‌खुल गोनपा भेजा। कुछ समय के बाद वे सभी वहाँ से विनयधर भिक्षु होकर स्वदेश लौट आये और उनकी देखा-देखी लाहुल के अन्य लामाओं में भी प्रव्रज्या ग्रहण करने की एक नई प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। तदुपरान्त वहाँ के लामा जोङ्‌खुल जा जा कर भिक्षु बनने लगे। हम ऊपर कह चुके हैं कि प्राचीन काल में भी लाहुल के लामा शिक्षा-दीक्षा के लिए हेमिस्, बरदन और जोङ्‌खुल आदि विहारों में जाया करते थे, परन्तु उस समय तक उनमें से किसी ने भी भिक्षुत्व ग्रहण नहीं किया था। जबकि उन लोगों को भिक्षु जीवन का आदर्श प्राप्त करने के लिए उपर्युक्त विहारों में नियमित रूप से प्रव्रजित लामा निवास करते थे।

यह सर्व विदित है कि इतिहास के निर्माण में मौखिक साहित्य, जैसे—लोक-गीतों और लोक-गाथाओं का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। लाहुल की एक स्थानीय लोक-गाथा से ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में वहाँ पर बौद्ध धर्म के संवर्धन में लद्दाख के तगन गोन्पा के मठाधीश लामा टशी तमफेल का बड़ा सहयोग रहा है। लामा टशी तमफेल विद्वान् ही नहीं, अपितु बौद्ध वास्तु कला के एक विशेषज्ञ भी थे। उस लोक-गाथा के अनुसार 8 वीं शताब्दी में आचार्य पद्मसंभव द्वारा सुसंस्थापित वहाँ का प्राचीनतम बौद्ध विहार, जिसे गुरू-घण्टार (गुरू घण्टापाद का विहार) कहते हैं, वह 19 वीं शती के उत्तरार्द्ध में जीर्ण होकर अथवा किसी भूकम्प के कारण गिर गया था, तथा कुछ कारण वश उसकी तत्काल मरम्मत नहीं हो पाई थी। संयोग से उस समय विहार के आंचल में स्थित तन्दी और गौशाल दो गांव के खेतों की फसल सूखने लगी तो गांव वालों के मन में यह हुआ कि उनकी फसल सूखने का कारण ध्वस्त विहार का पुनरुद्धार नहीं होना है, अतः वे दौड़े-दौड़े सदर मुकाम केलंग में पहुँचे,

जहाँ ब्रिटिश शासन के अधीन लाहुल के कोलोङ्-ठाकुर श्री हरिचन्द (1830-1902) अवैतनिक दण्डाधिकारी द्वितीय श्रेणी नियुक्त (नियुक्ति 1871) थे। उन लोगों ने उनसे प्रार्थना की कि घण्टार विहार के ध्वस्त पड़े रहने से हमारे आराध्य देव हमसे रुष्ट हो गए हैं, जिससे हमारे खेतों की फसल सूख रही है। आप कृपया उपर्युक्त विहार की तत्काल मरम्मत करवाने की व्यवस्था करें। ठाकुर श्री हरिचन्द ने लदाख से बौद्ध वास्तुकला के पण्डित लामा टशी तमफेल को पत्र लिख कर बुलवाया और उनके तत्त्वावधान में विहार की सर्वाङ्गपूर्ण मरम्मत करवा दी। तत्पश्चात् उस विहार का स्वामित्व भी उन्हें सौंप दिया। तभी से लाहुल के घण्टार गोन्पा और उसके शाखा विहारों की देख-रेख तग-न के लामा टशी तमफेल का वारिस टुल्कू (अवतार) करता है। इसके लिए पुजारी और धर्माचार्य तगन महाविहार के जंस्कर स्थित शाखा विहारों से आते हैं। इस प्रकार आज भी लदाख और लाहुल का गुरु-शिष्य सम्बन्ध अबाध गति से चल रहा है।

इतिहास के पन्ने दो सम्बन्धों के बनने-बिगड़ने की घटनाओं से भर पूर रहते हैं। यह बात लदाख और कुल्लू के सन्दर्भ में भी कही जा सकती है। राजा मानसिंह एक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति थे। उन्होंने युद्ध से जर्जर लदाख की कमजोरी से लाभ उठा कर जब बरा-ल-च के उस पार लिङ्स-ती के मैदान तक को अपने नियंत्रण में ले लिया तो इससे लाहुल के सर्वोच्च परिवार बरबोग ठाकुर बिलचुग बौखला उठे। उनका कहना था कि एक क्षत्रीय राजा के लिए यह कदापि उचित नहीं है कि वह किसी की कमजोरी का लाभ उठाए और संधियों में निहित शर्तों को तोड़े। राजपूतों में "प्राण जाए, पर वचन न जाए" पर विश्वास होना चाहिए। यद्यपि बिलचुग स्वयं कुल्लू राज दरबार के अधीन एक जागीरदार था, परन्तु उन्होंने लदाख के पक्ष में राजा मानसिंह की आज्ञा मानने से साफ इनकार कर दिया था। इस राजद्रोह के कारण यद्यपि उन्हें राज्याधिकार और जागीर से हाथ धोना पड़ा, परन्तु स्वाभिमानी बिलचुग ने इसकी तनिक भी चिन्ता न की और सहज भाव से राजसत्ता और जागीरी छोड़ दी। शनैः शनैः काल की गति आगे बढ़ने लगी और एक समय ऐसा आया कि लदाख के राजा संभवतः सोनम नम-ग्यल (जन्म 1960) ने बरबोग परिवार की एक कन्या से विवाह किया तो लाहुल के सम्बन्धों का एक नया अध्याय पुनः आरम्भ हुआ।

●

शब्द विद्या

श्री जमयङ् ग्यलछन

शब्द विद्या के अन्तर्गत व्याकरण, काव्य, छन्द, नाटक, लेख तथा निबन्ध आदि आते हैं। विशेष रूप से शब्द विद्या से तात्पर्य व्याकरण से ही है। जो भाषा हो, उसके लिए एक नियामक व्याकरण का होना, एक जीवित व्यक्ति के लिए प्राण के समान है। जिस भाषा का व्याकरण नहीं, वह भाषा जीवित होने पर भी मृतकतुल्य है। इस लेख में भोट शास्त्रों के आधार पर शब्द विद्या के उद्भव तथा विकास के विषय में संक्षिप्त वर्णन तीन भागों में विभाजित करके किया गया है।

1. आर्यावर्त में शब्द विद्या का उद्भव तथा विकास,
2. भोट देश में शब्द विद्या का उद्भव तथा विकास,
3. लदाख में शब्द विद्या का उद्भव तथा विकास।

1. **आर्यावर्त में शब्द विद्या का उद्भव तथा विकास**—प्राचीन भारतीय आचार्यों ने एक पुद्गल द्वारा बुद्धत्व प्राप्त करने के लिए संसार की महत्त्वपूर्ण पाँच विद्याओं का ज्ञान करना अत्यन्त आवश्यक बताया है। वे हैं—शब्द विद्या, प्रमाण विद्या, शिल्प विद्या, चिकित्सा विद्या एवं आध्यात्मिक विद्या।

इन में से शब्द विद्या शब्दसम्बन्धी त्रुटियों के समाधान के लिए आवश्यक है। अर्थ सम्बन्धी त्रुटियों के समाधान के लिए प्रमाण विद्या की आवश्यकता होती है। महायानी सदा परहित के प्रति विचारते है तथा परहित में लगे रहते है। अतः परहित के लिए जो भी उपाय हो, उसे अपनाते हैं। शिल्प तथा चिकित्सा विद्या परहित करने के महत्त्वपूर्ण अंग है। इसलिए बोधिसत्त्व शिल्प तथा चिकित्सा विद्या का भलीभाँति अध्ययन करते हैं। जिस मार्ग तथा भूमि का अनुष्ठान कर के मोक्ष या बुद्धत्व प्राप्त किया जा सकता हैं, उन सब का विश्लेषणात्मक वर्णन आध्यात्मिक विद्या के अन्तर्गत है। अतः मोक्ष या बुद्धत्व प्राप्त करने के लिए आध्यात्मिक विद्या का अध्ययन करना आवश्यक होता है।

यदि इन पाँच विद्यास्थानों का भलीभाँति अध्ययन न करे तो उच्च भूमि-प्राप्त बोधिसत्त्व भी बुद्धत्व उपलब्ध नहीं कर सकता। तथागत ने अपरिचित सूत्र में

स्पष्ट कहा है कि "द्वादश सद्धर्मसूत्र, हेतुविद्या, शब्द विद्या, चिकित्सा विद्या, तथा लौकिक शिल्प विद्या का अध्ययन करना चाहिए। प्रत्येक के विषय में पृथक् पृथक् रूप से बताकर उन्होंने आगे कहा—यदि बोधिसत्त्व इन विद्या स्थानों का भली भाँति अध्ययन चिन्तन तथा मनन नहीं करेगा तो कदापि अनुत्तर सम्यक् संबुद्धत्व या सर्वज्ञता प्राप्त नहीं कर सकता। इस लिए पाँचों विद्यास्थानों का अध्ययन करना चाहिए।

उपर्युक्त विद्याओं में से इस लेख का प्रतिपाद्य शब्द विद्या है। इस के उद्भव के विषय में एक कथा है। उसके अनुसार प्राचीन काल में स्वर्ग में एक देवता था, जिसका नाम सर्वज्ञ था। उसने शब्द विद्या के एक शास्त्र की रचना की। जिसका नाम सर्वज्ञ व्याकरण पड़ा। परन्तु वह व्याकरण देवलोक एवं संसार में फैल नहीं सका। बाद में देव सर्वज्ञ के शिष्य इन्द्र ने भी एक व्याकरण की रचना की। उस व्याकरण का नाम इन्द्रव्याकरण रखा। देवराज इन्द्र ने बृहस्पति को उस व्याकरण की शिक्षा दी। बृहस्पति ने बहुत से देवताओं को इन्द्र व्याकरण सिखाया। अतः उसका नाम देवगुप्त व्याकरण पड़ा।

मानव लोक में शब्द विद्या का उद्भव—कहा जाता है कि सर्व प्रथम इन्द्र व्याकरण 8500 वि० पूर्व संसार में फैला। तब से महर्षि पाणिनि तक अनेक वैयाकरण हुए, परन्तु उन में से आज किसी का भी व्याकरण पूर्णरूपेण उपलब्ध नहीं होता, उनका केवल उल्लेखमात्र ही संस्कृत व्याकरण शास्त्र के इतिहास के ग्रन्थों में प्राप्त है।

वास्तव में पाणिनि ही एक ऐसे महान् वैयाकरण हुए, जिनकी कृति आज तक विद्यमान है तथा लोगों का मार्गदर्शन कर रही है। परन्तु महर्षि पाणिनि का काल निर्धारित कर पाना अत्यन्त कठिन है, तो भी श्री युधिष्ठिर मीमांसक ने उन का काल लगभग 2800 वि० पू० माना है। पर डा० वासुदेवशरण अग्रवाल उन का समय 500 ई० पू० मानते है।

भोट विद्वानों ने भी लगभग वही काल माना है। वे मानते हैं कि तथागत भगवान् बुद्ध ने लंकावतार सूत्र में पाणिनि के लिए भविष्यवाणी की है : "व्याकरण-कर्त्ता पाणिनि आयेगा" इस प्रकार मञ्जुश्रीमूलतन्त्र में भी व्याकृत है कि—

तस्याप्यन्यतमः सख्यः पाणिनिर्नाम माणवः।
नियतं श्रावकत्वेन व्याकृतो मे भविष्यति ॥

इत्यादि भविष्यवाणी के द्वारा तथागत ने पाणिनि का व्याकरण किया। भोट विद्वान् उक्त आगमों के आधार पर पाणिनि का काल तथागत के परिनिर्वाण के पश्चात् निर्धारित करते हैं। उनका प्रथम व्याकरण ग्रन्थ अष्टाध्यायी है। इसमें लगभग 4000 सूत्र हैं तथा जो लगभग दो सहस्र श्लोक के बराबर हैं। बौद्ध मत के अनुसार वे आर्य अवलोकेश्वर के एक साधक थे, परन्तु बौद्धेतरों का मत है कि वे विष्णु के साधक थे। जो भी हो वह वास्तव में एक अतुल्य वैयाकरण थे।

आचार्य नागार्जुन के समय दक्षिण भारत के राजा शंकरभद्र थे। वे एक दिन अपनी पत्नी के साथ उपवन में क्रीडा कर रहे थे। राजा ने उस पर पानी छिड़का तो रानी ने कहा कि "मोदकं देहि" अर्थात मुझ पर पानी मत छिड़को। राजा संस्कृत अच्छी तरह नहीं जानता था। अतः उसने समझा कि रानी लड्डू माँग रही है। उसने रानी को एक स्वादिष्ट लड्डू दिया। रानी ने राजा की मूर्खता की हँसी उड़ाई। जिससे राजा के मन में एक गहरी चोट लगी तथा यह प्रतिज्ञा की कि अब मैं संस्कृत व्याकरण का भली-भाँति अध्ययन करूँगा। उसी प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए राजा ऋषि वररुचि कात्यायन के पास गया और पूर्व घटित घटना सुनाई। तब ऋषि वररुचि ने नाग वासुकि के पुत्र को मन्त्र द्वारा आमन्त्रित किया। नाग स्वभाव से ही अति लज्जा वाले होते हैं। अतः ऋषि तथा नाग के बीच एक पर्दा लगाया गया। वररुचि ने वासुकि के पुत्र को पाणिनि व्याकरण की वृत्ति पढ़ाने के लिए कहा। वासुकि के पुत्र ने वररुचि के कथन के अनुसार उसे पाणिनि व्याकरण पढ़ाया। वररुचि उसे लिखता गया। इसी बीच वररुचि पर्दा हटाकर उसे देखने लगा तो नाग लज्जा से लज्जित होकर भाग गया। अतः पाणिनि व्याकरण की वृत्ति पच्चीस सहस्र श्लोक ही लिखा सकी। कहा जाता है कि उस अधूरे कार्य को वररुचि ने स्वयं पूरा किया।

एक बार राजा शंकरभद्र ने अपने मन्त्री ईश्वर वर्मा को कुमार षडानन की साधना करने का आदेश दिया। उसने भी राजा के आदेश अनुसार उनकी साधना की। इस साधना से प्रसन्न होकर षडानन ने उसके सामने प्रकट होकर वरदान के रूप में इन्द्र व्याकरण के पिण्डार्थ की देशना की। तब ईश्वर वर्मा तथा आचार्य वररुचि दोनों ने इन्द्र व्याकरण के पिण्डार्थ की विस्तृत व्याख्या की। साथ ही

पाणिनि तथा इन्द्रव्याकरण में जो खामियाँ थीं, इन सब की पूर्ति करके एक नये व्याकरण की रचना की, जिसका नाम कलाप रखा गया। ईश्वर वर्मा ने उसे राजा को अर्पित किया। साथ ही कठिन विषयों के विषय में स्पष्टीकरण भी किया।

राजा शंकरभद्र ने इन व्याकरणों का भली भाँति अध्ययन किया। अतः वह आगे जाकर संस्कृत व्याकरण का पारंगत विद्वान् बन गया।

बाद में आचार्य चन्द्रगोमि ने भी संस्कृत व्याकरण के एक ग्रन्थ की रचना की। वह बाद में चन्द्रव्याकरण के नाम से विख्यात हुआ। 10वीं. शताब्दी में आचार्य रत्न तथा लोच वा ग्यतोन डुप् सिंह इन दोनों ने उसका भोट भाषा में अनुवाद किया।

चन्द्र व्याकरण के पश्चात् आचार्य चन्द्रकीर्ति द्वारा समन्तभद्र नाम का एक व्याकरण लिखा गया, उसका भारत भर में खूब प्रचार हुआ। चन्द्रकीर्ति के व्याकरण के गुरु आचार्य चन्द्रगोमि थे। प्रारम्भ में बुद्धिजीवियों ने जितना चन्द्रकीर्ति के व्याकरण समन्तभद्र को पसन्द किया, उतना चन्द्रगोमि के चन्द्रव्याकरण को नहीं। तब आचार्य चन्द्रगोमि ने अवलोकेश्वर की साधना की तथा उस की अध्येषणा की। कहा जाता है तब से चन्द्र व्याकरण को भी लोगों ने पसन्द किया तथा उसका प्रसार तथा प्रचार अच्छी तरह हुआ।

चन्द्र व्याकरण के प्रसार एवं प्रचार में उनके पिता धर्मदास का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। उन्होंने चन्द्रव्याकरण की एक विशाल टीका लिखी थी, जिसमें छः सहस्र श्लोक थे। धर्मदास की टीका के आधार पर आचार्य रत्नमति ने बारह सहस्र श्लोक वाले बृहत् व्याकरण की रचना की। उसकी भी टीका के रूप में महापण्डित पूर्णमासी ने छत्तीस सहस्र श्लोक वाले एक शब्द विद्या के ग्रन्थ की रचना की।

इतना ही नहीं, आचार्य सिंहभद्र सूर्यगर्भ, धर्मपाल तथा वादिसिंह आदि ने अनेक व्याकरण के ग्रन्थों की रचना कर आर्यावर्त में शब्द विद्या का भली-भाँति विकास किया। जिस प्रकार पाणिनि तथा कलाप व्याकरण प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार सारस्वत व्याकरण भी एक विख्यात शब्द शास्त्र है। इसके विषय में कहा जाता है कि दक्षिण भारत में अनुयोग सुस्वभाव नामक एक ब्राह्मण विद्वान् थे। एक बार वे मध्य देश जा रहे थे। उस समय मध्य देश में शब्द विद्या के विषय में विचार विमर्श करने के लिए अनेक विद्वान् एकत्रित हुए थे। उस सभा में आचार्य अनुयोग

ने भी शब्दविद्या के बारे में भाषण दिया तो गलती से पुंसु कहने के स्थान पर पुंक्षु कह दिया, जिसका परिहास समस्त विद्वानों ने किया। इतना ही नहीं, भरी सभा में उनकी दिल्लगी की, जिससे उसके मन में चोट लगी। उन्होंने शीघ्रातिशीघ्र कहा कि मैं कल ही उक्त शब्द के उद्‌भव के बारे में बताऊँगा। यह कह कर सभा भवन से चले गये तथा अपने निवास स्थान पर जाकर रातभर जी-जान से सरस्वती की पूजा की। पर्याप्त रात्रि तक व्याकरण के ग्रन्थों में उस शब्द के उद्‌भव स्रोत की खोज करते रहे पर कहीं से भी वह नहीं मिला। तब और भी जी-जान से सरस्वती की आराधना की। पर सरस्वती का कुछ भी वरदान नहीं प्राप्त हो सका तो वे निराश होकर अपना गला काटकर मरने के लिए तैयार हो गये तो सरस्वती ने उनके समक्ष प्रकट होकर उस शब्द का उद्‌भव स्थान बताया तथा शब्दविद्या के मर्मों तथा सूक्ष्म विषयों का निर्देश करते हुए व्याकरण के नवीन सूत्र बताये। आचार्य अनुभूति उन्हें लिखते गये। दूसरे दिन उन्होंने विद्वानों की सभा में जाकर पुंक्षु शब्द का उद्‌भव स्थान बताया तथा सरस्वती ने जिस व्याकरण की शिक्षा दी, उसको भी उस सभा में बताया तो समस्त विद्वान् आश्चर्य-चकित हो गये। तब से सारस्वत व्याकरण का विकास हुआ। अनेक व्याकरण के आचार्यों ने उस व्याकरण की टीकाएँ लिखीं। भारतवर्ष में व्याकरण के सैकड़ों ग्रन्थों की रचना हुई, परन्तु प्रसिद्ध तथा अत्यन्त उपयोगी निम्न व्याकरण हैं।

1. इन्द्र व्याकरण 2. पाणिनि व्याकरण 3. कलाप व्याकरण 4. सारस्वत व्याकरण।

2. **भोट देश में शब्द विद्या का उद्‌भव तथा विकास**—बोन धर्मावलम्बियों का मत है कि राजा स्रोङ् चन गम्पो यानी सातवीं शताब्दी से पूर्व भी भोट लिपि विद्यमान थी। परन्तु अधिकांश भोट विद्वानों का मत है कि राजा स्रोङ् चन गम्पो ने अपने मन्त्री थुमि के साथ 16 व्यक्तियों को भारत में अध्ययनार्थ भेजा था। उनमें से थुमि अच्छी तरह शिक्षा प्राप्त करके अपने देश में लौटे और कश्मीरी शारदा लिपि को आधार बना कर उन्होंने भोट लिपि की रचना की। उससे पूर्व भोट देश की अपनी लिपि नहीं थी। थुमि ने न केवल भोट लिपि की रचना की, अपितु उसके आठ अध्यायमय व्याकरण की रचना भी की, इतना ही नहीं, संस्कृत से कई ग्रन्थों का अनुवाद भी किया। थुमि द्वारा जो अनुवाद किया गया, वह संस्कृत से भोट

भाषा में प्रथम अनुवाद था। उनके द्वारा अनूदित ग्रन्थों में केतुधारणी, आर्य अवलोकेश्वर के इक्कीस सूत्र, तन्त्र तथा शतसाहस्त्रिका प्रज्ञापारमिता प्रमुख हैं। थुमि भोट देश के प्रथम अनुवादक भी थे। उन्हीं की कृपा से सैकड़ों विद्वानों ने संस्कृत, पालि, अपभ्रंश, चीनी आदि भाषाओं से भोट भाषा में बौद्ध धर्म दर्शन ही नहीं, अपितु नीतिशास्त्र, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि जो मानव जीवन के लिए आवश्यक विषय थे, उन सबका अनुवाद करके भोट देश में धर्म, दर्शन, साहित्य आदि का एक अतुल्य भण्डार बना दिया, जो आज भी पूर्ववत् सुरक्षित रहते हुए संसार को ज्ञान का अमृत पिला रहा है। तथागत और उनके अनुयायी भारतीय आचार्यों ने जिन ग्रन्थों की रचना संस्कृत में की थी, वे आज उस देवभाषा में उपलब्ध नहीं हैं। वे सभी भोट भाषा में सुरक्षित हैं। केवल ग्रन्थों के रूप में ही नहीं, अपितु वे पठन-पाठन द्वारा अनुष्ठित होते हुए समस्त प्राणियों का कल्याण कर रहे हैं।

3. **लदाख में शब्द विद्या का उद्भव तथा विकास**—मेरे विचार से लदाख में भी शब्द विद्या का उद्भव 7वीं शताब्दी में ही हुआ। क्योंकि थुमि सम्भोट ने जिस व्याकरण की रचना की, उसे देखते हुए यह ज्ञात होता है कि उन्होंने लदाखी भाषा को ही ध्यान में रख कर व्याकरण की रचना को है। व्याकरण में जिन पूर्वाक्षर तथा पराक्षर आदि की व्यवस्था की गई है, उनका सही उच्चारण आज भी लदाखी लोगों की जुबान पर जीवित है, जब कि तिब्बतियों की जुवान से या तो वे लुप्त हो गये हैं या प्राचीन काल जितना शुद्ध नहीं बोलते।

काव्य शब्दविद्या का एक महत्त्वपूर्ण अंग हैं। भोट देश में 13वीं शताब्दी में छो ग्याल फगस प 1235–1280 के शासन काल में भारतीय आचार्य लक्ष्मींकर तथा भोट लोच वा शोङ स्तोन दोर्जे ग्यालदन दोनों ने आर्य दण्डी द्वारा विरचित काव्यादर्श का संस्कृत से भोट भाषा में अनुवाद किया। उन्होंने न केवल काव्यशास्त्र का ही अनुवाद किया, अपितु नागानन्द तथा लोकानन्द नामक दो नाटक ग्रन्थों का भी अनुवाद किया। उस समय भोट देश में काव्य तथा नाटक का उद्भव हुआ, साथ ही तभी भली भाँति भारतीय साहित्य का भोट भाषा के माध्यम से विकास हुआ। भोट देश में इस साहित्य के विकास के साथ-साथ इधर लदाख में भी इस साहित्य का विकास होना स्वाभाविक ही था। क्योंकि भोट देश तथा लदाख का इतना घनिष्ट सम्बन्ध रहा है

कि भोट देश को लदाखी लोग अपना गुरु मानते रहे हैं। यहाँ से लोग अध्ययनार्थ वहाँ जाया करते थे, जब कि लदाख एक स्वतन्त्र देश था।

प्रतीत होता है कि 14वीं शताब्दी में लदाख में काव्य का प्रभाव अच्छी तरह पड़ चुका था। क्योंकि उस समय यहाँ के लोगों ने दण्डी के काव्यादर्श के अलंकारों के अनुसार ही कविता लिखी है, जो आज भी यहाँ लोग बड़ी खुशी के साथ गाते हैं। जैसे—

རྒྱབ་ཀྱི་གངས་ར་དཀར་པོ་དེ།།
མ་བཞེངས་པ་ཡི་ཛལ་སྤྱད།།
དགུང་གི་ཉི་ཟླ་གཉིས་ཀ།།
མ་སློངས་པ་ཡི་དཀར་རྒྱན།།
མདུན་གྱི་མཚོ་མོ་མ་ཕམ་དེ།།
མ་གཏེམས་པ་ཡི་ཡོན་ཆབ།།
མ་མ་འགྱུར་བརྟན་པོ་ཙ།།
བཞུགས་སོང་བྱེར་ན····ཡོན་ཆབ་པོ་གཏེམས་པ་ལས།།

अर्थात् पीछे का हिम पर्वत अप्रज्ञप्त नैवेद्य है।
नभ के भानु-चन्द्र अकृत श्वेतालंकार हैं।
सामने की मानसरोवर झील अपूरित अर्घ्य है।
अटल स्थिर रहें, तो अर्घ्य पूरित से भी श्रेष्ठ है।

15वीं शताब्दी के राजा डग्स प बुम स्दे ने पे-थुब के विहार का निर्माण कराया तथा लेह में आर्य मैत्रेय की एक विशाल मूर्ति भी बनवाई। उस समय भी कविता लिखी गई। 16वीं शताब्दी में राजा टशी नामग्याल ने भी मन्दिर बनवाया। उसके बगल के फर्श पर भी काव्यमय लेख लिखा हुआ है। 16वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में राजा सिंगे नामग्याल, जो लदाख के इतिहास में सबसे महत्त्वपूर्ण तथा प्रभावशाली राजा हुए, उनके समय अनेक मठों का निर्माण किया गया। उनका नम् रबे पल गोन नाम का एक प्रसिद्ध लेख था। उन्होंने अनेक बुद्ध वचनों को स्वर्ण, रजत,

ताम्र आदि से लिखवाया। उन्होंने न केवल बुद्ध वचनों को लिपिबद्ध किया, अपितु वे स्वयं कवि भी थे। उन्होंने अनेक कविताएँ भी लिखी हैं।

17वीं शताब्दी में जंस्कर में कई विद्वान लामा हुए। उनमें से नवंग छेरिंग का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने कई ग्रन्थों की रचना की। उन ग्रन्थों में कहीं-कहीं कविता भी लिखी गयी हैं।

18वीं शताब्दी में रि-जोङ स्रस रिन पो छे लोब्जंग छुलठिम छोस्फेल वास्तव में एक महान् विद्वान हुए। उन्होंने अनेक कविताओं की रचना की। इतना ही नहीं, उन्होंने लोक गीत, धार्मिक गीत, उपदेशात्मक कविता, काव्यमय लेख आदि लिखकर यहाँ के साहित्य की प्रशंसनीय सेवा की है।

19वां शताब्दी में स्वर्गीय क छेन ये शेस दोन डुब, रवनपो कोनछोग स्तान-जिन, श्री छेतान फुन्छोग, श्री यो सेब गे गान के नाम उल्लेखनीय हैं। उनके अतिरिक्त श्री टशी रबग्याल, लोब्जंग जमस्पल, छेवंग रिगज़िन साबू, श्रीमती यङजिन डोलमा आदि आज भी उमंग तथा उल्लास के साथ कविता, नाटक, लेख आदि की रचना करते हुए अपने साहित्य की सेवा जी-जान से कर रहे हैं।

●

दुःखान्तं कर्तुंकामेन सुखान्तं गन्तुमिच्छता।
श्रद्धामूलं दृढीकृत्य बोधौ कार्या मतिर्दृढा ॥

—शिक्षासमुच्चय-२

चिकित्सा पद्धति का इतिहास

श्री छेवंग रिगजिन

मैत्रेयनाथ ने 'महायानसूत्रालंकार' में कहा है कि पाँच महाविद्याओं की पूर्ण शिक्षा के बिना बोधिसत्त्व भी सर्वज्ञता प्राप्त नहीं कर सकते। अतः अविद्या का शमन, दूसरों को वश में करने एवं स्वयं सर्वज्ञ होने के लिए इन पाँच महाविद्याओं का पथ ग्रहण करें, ऐसा कहा गया है।

पाँच महाविद्याएँ इस प्रकार हैं :

1. शिल्प विद्या, 2. चिकित्सा विद्या, 3. शब्द विद्या, 4. प्रमाण विद्या, 5. आध्यात्मिक विद्या।

आयुर्वेद की परिभाषा—भोटभाषा में आयुर्वेद को छेयि-रिगवेद कहते हैं। इसके आयु, जीव तथा जीवन तीन अर्थ हैं। शरीर के हित-अहित का ज्ञान, रोग की उत्पत्ति के कारण, रोग का निदान, शमनकारी उपचार का ज्ञान तथा आयु को दीर्घ बनाने वाले ज्ञान-विज्ञान को आयुर्वेद कहते हैं।

चिकित्सा—शरीर की अस्वस्थता का उपचार कर धातुसाम्य कराने वाले ज्ञान को चिकित्सा विद्या कहते हैं।

शास्ता बुद्ध भैषज्यतन्त्र में कहते हैं कि आरोग्य, जीवित रहने, रोगी की चिकित्सा, रोग रूपी दुःखों से मुक्ति के लिए एवं आर्यों के शिरोभूषण बनने की इच्छा से मनुष्य को इस विद्या की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। अतः हम यहाँ चिकित्सा विद्या की उत्पत्ति का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत करते हैं।

इसका उत्पत्तिक्रम निम्न प्रकार से है

1. देव लोक में चिकित्सा विद्या की उत्पत्ति
2. आर्य देश भारतवर्ष में इसका प्रचार
3. भोट देश तिब्बत में इसकी उत्पत्ति

शास्त्रों में ऐसा वर्णन मिलता है कि सर्वप्रथम इस विद्या की उत्पत्ति देवलोक में ब्रह्मा जी द्वारा चतुर्वेद की रचना से हुई। चार वेदों की उत्पत्ति ब्रह्माजी के

चार मुखों से हुई। इस प्रकार आयुर्वेद का सर्वप्रथम उद्‌भव ब्रह्मा के मध्य मुखमंडल से हुआ। ऋक्, यजुष्, साम का अन्य मुखों से। इस प्रकार सर्गप्रथम देवलोक में चिकित्सा विद्या का प्रारम्भ अथर्ववेद से होता है।

ऐसा भी कहा जाता है कि प्राचीन काल में सुरों तथा असुरों को यह विश्वास था कि समुद्र में एक अमृतपूर्ण कलश है। उसी विश्वास के कारण सुर तथा असुर दोनों कलश को प्राप्त करने की अभिलाषा से समुद्र का मंथन करने लगे। ऐसा करने पर एक दिन समुद्र से अमृतपूर्ण एक कलश निकला। इसे लेकर सुर तथा असुर देवलोक के विजयभवन में बैठकर अमृत बाँटने को सोच ही रहे थे कि इतने में दैत्य-राज राहु अमृत पीकर भागने लगा। विष्णु जी ने अपने सुदर्शन चक्र से राहु का सिर काट दिया। परन्तु अमृत के प्रभाव से उसकी मृत्यु नहीं हुई। जहाँ-जहाँ राहु के कण्ठ से अमृत का बूंद गिरा, वहाँ भैषज्य जड़ी-बूटियाँ पैदा हो गईं। जहाँ लहू की बूंद गिरी, वहाँ लहसुन एवं प्याज उग गये। राहु द्वारा पुनः चक्र चलाने से ब्रह्मा जी के मस्तक पर आघात पहुँचा। तत्पश्चात् ब्रह्मा ने इस आघात का उपचार सोचा तो स्मरण हुआ कि उन्होंने किसी समय किसी बुद्ध से चिकित्सा तन्त्र सुना था, जिसके प्रभाव से आयुर्वेद के सर्वप्रथम शब्द "ओम आथ" की उत्पत्ति हुई। साथ ही साथ पूणं आयुर्वेद का उदय हुआ।

ग्रन्थों में ऐसा भी वर्णन मिलता है कि प्रथम चिकित्सक ब्रह्मा, प्रथम भैषज्य उष्ण जल, प्रथम रोगी मनुज तथा प्रथम रोग बदहजमी हुआ। ब्रह्मा ने अपना सर्वप्रथम उपदेश अपने पुत्र को दिया। उन्होंने अपनी विद्या देव वैद्य अश्विनी कुमार को पढ़ाकर देवलोक में आयुर्वेद का प्रकाश फैलाया।

(ख) भूलोक (भारतवर्ष) में इसका प्रचार—लगभग 2517 वर्ष पूर्व सर्वज्ञ बुद्ध ने प्रथम धर्मचक्रप्रवर्तन के समय विनय-चिकित्सासूत्र में कहा कि जो भिक्षु रोगग्रस्त हो जाता है, उसे वैद्य जनों के सलाह के अनुसार आचरण करना चाहिए। इस प्रकार विनय चिकित्सा सूत्र के तृतीय भाग में भैषज्य एवं रोगोपचार का संक्षिप्त संग्रह बताया गया है। एक बार भगवान श्रावस्ती में अनाथपिण्डक के जेतवन में विहार कर रहे थे। उस समय भिक्षु शारद बीमारी से ग्रस्त हो गए। भगवान् ने उन्हें चार प्रकार के भैषज्य के सेवन का उपाय बताया। औषधि की मात्रा, सात दिन तक उसका सेवन तथा आजन्म औषधि के सेवन की विधि बतायी। एक बार

मगधराज बिम्बिसार का एक वणिक्-स्त्री के साथ सम्बन्ध हो जाने से एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका पोषण मगधराज के राजकुमार अभय द्वारा किया गया, अतः उसका नाम जो-नु-सोस-छेद (जीवक) पड़ा। कुछ वर्ष बाद इस बालक ने शहर से पाण्डरवसन लोगों को गुजरते देखा, तब राजा से पूछा कि ये लोग कौन हैं ? और कहाँ जा रहे हैं ? राजा ने कहा—ये लोग कष्टकर रोगों के शमनकारी चिकित्सक हैं और चिकित्सालय जा रहे हैं। जिसे सुनकर बालक को अति हर्ष हुआ और निश्चय किया कि मैं भी इनका अनुगमन कर इस शिक्षा को ग्रहण करूँगा। ऐसा निश्चय कर उसने राजा से अनुमति की याचना की। उनकी दृढ़ जिज्ञासा को समझकर राजा ने उन्हें तक्षशिला के वैद्य ग्युनशेस के पास भेज दिया। परन्तु उन्हें वहाँ विस्तारपूर्वक सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त नहीं हुई। फिर भी अपने दृढ़ संकल्प एवं आध्यात्मिक क्षमता के कारण अत्यन्त अल्प समय में पूर्ण चिकित्सा विद्या का ज्ञान बालक को हो गया। साथ ही बालक ने शल्य चिकित्सा का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया।

एक बार उसने अपने उपाध्याय से गुप्त रूप से मस्तक की शल्य चिकित्सा करने का अनुष्ठान कराया। कुमार जीवक ने गुह्य रूप से देखा कि उपाध्याय चिमटे द्वारा मस्तक में पड़े कीडों को पकड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं। कुमार जीवक ने उपाध्याय जी से निवेदन किया कि इस प्रकार मत कीजिए। चिमटे को गरम कर कीड़ों की पीठ पर लगा दें ताकि वे आसानी से निकल जाएँ। इस प्रकार शल्य चिकित्सा सफल होने से उपाध्याय जी अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्हें सम्पूर्ण शल्य चिकित्सा का उपदेश एवं प्रयोग करने की अनुमति प्रदान की।

किसी समय भगवान् बुद्ध जेतवन में टहल रहे थे, तभी सहसा रोगग्रस्त हो गये। कुमार जीवक ने सोचा, बुद्धजी तो वज्रकाय को धारण किए हुए हैं, अतः अन्य लोगों की तरह अल्प भैषज्य के प्रयोग से उनके रोग का उपचार नहीं हो सकता। ऐसा सोच कर 32 (एक सांग, एक तोला के बराबर होता है) सांग का भैषज्य निर्माणकर बुद्ध को दिया। इसे देखकर देवदत्त ने भी इस भैषज्य के सेवन का आग्रह किया। कुमार जीवक ने कहा—देवदत्त, बुद्ध को तो वज्रकाय प्राप्त है, तुम्हें इस तरह के भैषज्य हानिकारक हैं। देवदत्त ने कहा मैं भी वज्रकाय प्राप्त हूँ। मैं भी इस भैषज्य का पात्र हूँ। ऐसा कहते हुए उसने हठपूर्वक औषधि का सेवन किया। तत्पश्चात् कुमार जीवक ने बुद्ध को खिचड़ी पिलाई तो देवदत्त ने भी पी। जिससे देवदत्त अतिसार के भयंकर रोग से पीड़ित हुए। अपनी चिकित्सा के लिए उन्होंने सर्वप्रथम कुमार जीवक से कहा, किन्तु

उसके द्वारा अस्वीकार कर देने पर वे पुनः भगवान के पास गये। उसके असह्य कष्ट को देखकर बुद्ध ने कहा कि यदि मेरे मन में पुत्र राहुल एवं देवदत्त के प्रति समानता है; तो देवदत्त तुरन्त रोग से मुक्त हो। बुद्ध के इस सत्य अधिष्ठान से देवदत्त रोग से मुक्त हो गये। इस प्रकार कुमार जीवक का यश सम्पूर्ण भारत में फैलने लगा। उनके महान् कृत्यों के कारण उस समय वे वैद्यराज के रूप में अभिषिक्त किये गये। अन्ततः कुमार जीवक के मन में अहंकार की भावना उत्पन्न हुई। उसने कहा कि सम्पूर्ण संसार में केवल तथागत ही मनारोगों के सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक हैं और कायिक चिकित्सा का प्रधान मैं ही हूँ। एक दिन कुमार जीवक बुद्ध के समक्ष गये, तो उनके मनोभावों को जानते हुए तथागत ने कहा, कुमार जीवक, कैलाश गिरि पर जाकर वहाँ से अपनो इच्छानुसार भैषज्यों को ले आओ। वहाँ पर कुमार जीवक ने अकेले जाने से इनकार किया और भय का संकेत दिया तो तथागत ने कहा कि वज्रपाणि के साथ जाओ। जीवक वज्रपाणि के साथ नगाधीश कैलाश पर जाकर नाना प्रकार के भैषज्य ले आये। बुद्ध के पूछने पर अधिकांश औषधियों का नाममात्र भी नहीं बता सके। अतः बुद्ध ने औषधियों के गुणों व नामों का विस्तार से वर्णन किया, जिससे जीवक का अहंकार शान्त हो गया और उसने विनयपूर्वक भगवान् से कहा कि तथागत क्या आप भी चिकित्सा विद्या को जानते हैं ? बुद्ध ने उस समय चतुर्तन्त्र का उपदेश दिया और कहा—जीवक तथागत तो क्लेशों के निवारण का उपाय जानते हैं। अतः तथागत को अर्हत्, सम्यक्-सम्बुद्ध, भिषक्, चिकित्सक, निश्चल, अनुत्तर कहा गया है।

एक बार पुनः बुद्ध नगाधीश हिमवत् कैलाश में विचरते समय सहसा प्रमेह रोग से पीड़ित हुए तो जीवक ने ३२ द्वात्रिंशक अतिसारक औषधि के द्रव्यों को मिलाकर भैषज्य बनाई, जिससे बुद्ध पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गये। यही कारण है कि कुमार जीवक आज भी अमर सिद्धि प्राप्त कर संसार में अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान हैं, ऐसा लोगों का विश्वास है।

आचार्य नागार्जुन

इनका जन्म मञ्जुश्रीतन्त्र की भविष्यवाणी के अनुसार दक्षिण के वेदल्य नामक स्थान पर एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। गणक ऋषि के अनुसार उनकी हस्तरेखाओं में अच्छे लक्षण विद्यमान् थे, परन्तु इनकी आयु मात्र सात दिन अवशिष्ट थी। ऋषि ने कहा—यदि सौ ऋषियों को भोजन कराओ तो सात महीने का जीवन हो सकता है

और सौ विरागी भिक्षुओं को भोजन कराओ तो सात वर्षों की आयु हो सकती है। ऋषियों के कथनानुसार नागार्जुन के पिता ने सौ भिक्षुओं को भोजन कराया तो नागार्जुन को सात वर्ष का जीवन-दान मिल गया। सात वर्ष की आयु समाप्त होते समय ही पिता ने पुत्र को नौकर के साथ सम्पत्ति के समेत अन्य स्थान पर भेज दिया, ताकि अपने बेटे की मृत्यु न देख सके। नौकर और नागार्जुन साथ-साथ घूमते-घूमते एक दिन नालन्दा विहार के पास पहुँचे। वहाँ वे सरह नामक योगी से मिले। नौकर से पूर्ण वृत्तान्त सुनकर सरह योगी उन्हें विहार में ले गये और उन्हें दीर्घ जीवन का उपाय बतलाया। साथ ही उन्हें भिक्षु की दीक्षा भी दी। आठ वर्षीय बालक अपनी तेज बुद्धि के कारण थोड़े ही समय में पूर्ण ज्ञानी हो गये और बाद में वे भिक्षु श्रीमान् के नाम से प्रसिद्ध हुए।

तत्पश्चात् आर्य तारादेवी की भविष्यवाणी के अनुसार वे नागलोक में गए। उसी कारण इनका नाम नागार्जुन पड़ा। वहाँ उन्हें मायूरी आदि अनेक विद्याएँ एवं प्रज्ञापारमितासूत्र उपलब्ध हुए। माध्यमिक गुप्त संग्रहसूत्र एवं अन्य सम्पूर्ण विद्याओं पर उनका अधिकार था। चिकित्सा विद्या में नागार्जुन की महान् कृतियाँ इस प्रकार हैं—

योगशतक, जीवसूत्रकारिका, प्राणावतार तथा योगरत्नमाला।

आचार्य अश्वघोष

इनके विषय में भी बुद्ध ने मञ्जुश्रीमूलतन्त्र में भविष्यवाणी की है। इनके सम्पूर्ण कृत्यों का वर्णन करना सम्भव नहीं। आचार्य अश्वघोष पहले अबौद्ध पण्डित थे। परन्तु बाद में वे बौद्ध मतावलम्बी बने। चिकित्सा विद्या में इनकी उत्कृष्ट रचनाएँ इस प्रकार हैं–महाष्टांगिकः (यान्लग् ग्यात्पा छेनपो), अष्टांगप्रवेशिका (यान्लग-ग्यात् पा ला जुग्पा), अष्टांग हृदय संहिता (यानलग ग्यातपइ स्निगपो-दुसपा) आदि। अष्टांगहृदय संहिता की रचना के समय तीनों लोकों में अष्टादश अवतारों के माध्यम से एक साथ रचना हुई।

चन्द्रानन्द

आचार्य अश्वघोष के पौत्र चन्द्रानन्द थे। उन्होंने संक्षिप्त अष्टांगप्रवेशिका (यानलग-ग्यात् पा ला जुग पा डुस्पा), चरक टीका (चाराका बुम्दे), चन्द्रांशु (दा जेर) एवं शाब्दयोग आदि ग्रन्थों की रचना की। इन रचनाओं से चिकित्सा विद्या का प्रचार सम्पूर्ण भारत में हुआ। अतः यह देश वैद्यों का देश कहा गया।

भोट देश में चिकित्सा विद्या की उत्पत्ति

प्राचीन काल में म्लेच्छों के अतिरिक्त हर मानव जाति में कोई न कोई भाषा व लिपि अवश्य होती थी। परन्तु भोट देश में चौबीसवें राजा नमरी स्रोंगचन के शासन काल से पूर्व कोई लिपि नहीं थी। इसी कारण उस काल में वहाँ रोग का लक्षण व निदान शास्त्रों के नियमानुसार अध्ययन नहीं होते थे। तथापि अधिकतम व न्यूनतम आहार के प्रभाव से होनेवाले रोग एवं नवाघात की चिकित्सा उष्ण तैल से की जाती थी, ऐसा वर्णन हमें शास्त्रों में मिलता है। बाद में राजा नमरी स्रोंगचन द्वारा चीन देश से गणित व चिकित्सा विद्या के कई ग्रन्थ लाये गये, ऐसा वर्णन है। परन्तु वे कौन से ग्रन्थ हैं, इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है।

तत्पश्चात् पचीसवें धर्मराज स्रोंगचन गमपो के समय तिब्बत में लिपि-निर्माण एवं ग्रन्थों की छपाई प्रारम्भ हुई और उनकी धर्मपत्नी कोंग-जो चीन से महा-चिकित्सा शास्त्र के ग्रन्थ ले आई। महाराज ने भारत तथा चीन के वैद्य भारद्वाज, हेङ-चेन हुङ, तात्कालिक इरान देश के गलेनोंस आदि को निमन्त्रित कर इस विद्या का प्रसार व प्रचार करवाया। बाद में भारत तथा चीन के वैद्य अपने-अपने देश लौट गए। परन्तु गलेनोस नामक वैद्य तिब्बत में राजवैद्य के रूप में रहे। वहाँ उसका एक तिब्बती महिला से सम्बन्ध हो जाने से दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनको तिब्बत के पूर्व व दक्षिणी क्षेत्र में भेजकर उन्होंने चिकित्सा का प्रचार कर-वाया। बड़े भाई पोंग-पो ने मंगोलिया में प्रचार किया। इसके बाद राजपुत्र स्रो-सोंग-चन के समय भी चिकित्सा विद्या का प्रचार जोर-शोर से हुआ। साथ-ही-साथ राजा ने देश के सभी विद्वानों को निमन्त्रित किया और चिकित्सा विद्या के विषय में जो थोड़ा-बहुत अनुवाद करना शेष था, विद्वानों से उसे पूरा कराया। भिन्न-भिन्न देश के वैद्यों के परीक्षार्थ राजा ने स्वयं राजमहल में रोगी के रूप में बैठकर मार्जारी, एक पक्षी एवं पनचक्की में रस्सी बाँधकर नाडी चिकित्सा करवाई। इस तरह वास्तविकता बताने पर राजा ने अत्यन्त हर्षित होकर वैद्यजनों को शिरोधार्य बनाया। इन्हीं विद्वानों ने भोट देश में चिकित्सा विद्या पर महान् कार्य एवं रचनाएँ करके भोट देश की चारों दिशाओं में इस विद्या का प्रकाश फैलाया।

ऐसा भी कहा जाता है कि भारतवर्ष में देवपुत्र श्वेतकेतु अपने जन्म के बाद कामधेनु गाय का दूध सेवन करने से मनु नाम से प्रसिद्ध हुए। धर्ममति नामक

एक ब्राह्मणी स्त्री के साथ सम्बन्ध हो जाने से इनके दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनका अशनिवाहन एवं प्रज्ञाखड्ग नाम था। इन दोनों को एक एक सोने का कलश देकर उन्होंने पुनः देवलोक में प्रस्थान किया।

प्रज्ञा-खड्ग का एक सुरावणिक् स्त्री मनोहारिणी के साथ सम्बन्ध होने से उसे आनन्दमति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। मनोहारिणी ने एक हस्तिनी भिक्षु संघ को अर्पित की, जो 18 किलो सोना प्रति दिन देती थी। इसके अतिरिक्त उसने एक सर्वनियन्त्रक चक्र दिया, जिससे राजकुमार उत्पलमुख परास्त हुए। अतः आनन्दमति राजा एवं प्रज्ञा-खड्ग मन्त्री बने। मनोहरिणी ने पुनः देवलोक से चन्दनकोणिर्ष्य नामक वृक्ष लाकर भूपराज महात आदि को हराया और अमृत के प्रभाव से मृतों को पुनः जीवित किया, ऐसा वर्णन शास्त्रों में मिलता है। स्वर्ण उत्पादक हाथी की वाणी के अनुसार ऋषि गुह्य स्वा-मो-स्वा, ब्रह्माणांक टमले-यल-लक, दरिंग आचार्य कृष्णमन्ड, स्वदिंग नाग पो, पण्डित पद्मसम्भव, राजा उप्पलमुख, उप्पललोक रानी पिनाकी, मन्त्री महामति, राजकुमार आनन्द मति ने बुद्ध गया में एकत्रित होकर वैद्य देवी मनोहारिणी यित्-ठोक-मा को स्वर्ण-पुष्प चढ़ाकर प्रार्थना की कि भविष्य में सम्पूर्ण संसार के जीवों के त्रिदोष रोग के शमन के लिए तीन देश कांस्यदेश लो युल नेपाल, भोट देश तथा भारतवर्ष के चारों ओर सम्पूर्ण औषधियों की जड़ी-बूटियाँ पैदा हों। इसी कारण इन देशों में हर प्रकार की औषधियों की जड़ी-बूटियाँ पैदा होती हैं, ऐसा भी वर्णन मिलता है।

महाराज आनन्दमति एवं गृहविदुषी विमि जेस् मा के सम्बन्ध से श्रीपाद नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इनकी पत्नी वेदघोषा यांग की लामो का पुत्र दोयङ् डुप केस। इनकी पत्नी सीता को दो पुत्र हुए कशी मेरी डष-छन-मा एवं सुमति लेक पे लोप्स। थशो मेरी नामक पुत्र का गंगा देवी नामक वाक्शिल्पी स्त्री के साथ सम्बन्ध होने से विलि राम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। विलि राम का एक धण्टी-शिल्पी स्त्री से सम्बन्ध होने से बिल-आनन्द नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इन दोनों बच्चों को बचपन में ही चिकित्सा विद्या की शिक्षा दी गई। ग्युन शेस एवं कुमार जीवक से चिकित्सा विद्या का सम्पूर्ण उपदेश सुनकर उन्होंने अमृत भैषज्य की साधना की और बाद में उन्हें अमर सिद्धि प्राप्त हुई। तारा देवी की भविष्यवाणी "तुम्हारे पूर्वजन्म के सत्कर्मों के कारण भोट देश में चिकित्सा विद्या का बहुत प्रचार होगा।

अतः हर्षपूर्वक उस देश को प्रस्थान करो" के अनुसार वे भोट देश में गये। उस समय ल्हा-थो-थो रि-स्न-वन तिब्बत के राजा थे। वहाँ इनके पहुँचने पर राजा ने भव्य स्वागत किया। वे 'थुम-बूं-ल्हा-रवंग' नामक राजमहल में उन महावैद्यों को ले गए। देवी मनोलीला (मित को रोल छो) के साथ उनका विवाह करवाया। उनसे शेरव मुकुट (तुं-गी-थोर रोक वन) नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इनके पुत्र महामति (लोटस छेन पो), महामति का पुत्र अतुलमति (लोटस छुगमेद), इनका पुत्र ल्हो टोम ग्याल जोत आदि ने क्रमशः राजा स्त्रि-स्नाने गुगस्तान से लेकर स्रोंग चन गम्पो तक राजचिकित्सक के रूप में रह कर चिकित्सा विद्या का प्रकाश भोट देश में सूर्य की किरणों की भाँति फैलाया। तिब्बत के महाराज वेद के शासन काल में उड्डियान देश के मेलाह छकदूर नामक वैद्य ने तिब्बत में पहुँचकर इस विद्या का प्रचार किया।

किसी समय भारत में अमृतसर राज्य के राजा इन्द्रबोधि जो अपनी प्रजाओं को धार्मिक उपदेश कर रहे थे, उस समय अचानक इस राज्य के आस-पास बाढ़ का पानी भर गया। अतः राजा ने सुरक्षार्थ बहुत-से चिकित्सा ग्रन्थों को एक स्तूप में सुरक्षित रख दिया।

कुछ समय पश्चात् महापण्डित चन्द्रानन्द ने चतुर्थतन्त्र ग्रन्थ को उस स्तूप से लाकर आचार्य वैरोचन को पढ़ाया। उन्होंने इसे भोट देश में ले जाकर आचार्य पद्मसम्भव को दिया, जिन्होंने इसे तिब्बत के समयस् नामक मुद्रणालय भवन में गुप्त रखा। कुछ वर्ष बाद यहाँ वग्छकबार नामक भिक्षु हुए, जिन्होंने इसे निकाल कर पुथोक गोनपा नामक महाचिकित्सक को पढ़ाया और उन्होंने इस विद्या की ज्योति तिब्बत में चारों दिशाओं में फैलाई।

तत्पश्चात् पुथोक सारमा ने भारतवर्ष में तीन बार आकर सम्पूर्ण चिकित्सासूत्र एवं तन्त्रों की शिक्षा ग्रहण की और पुनः भोट देश में लौटकर चतुर्थतन्त्र का सर्ग, व्याकरण एवं शब्दार्थ की त्रुटियों का संशोधन कर इसका प्रचार किया। इसके बाद तिब्बत में इस विषय के जो महान् पण्डित हुए, उनके नाम इस प्रकार हैं :—केयबू मेलाह, रिनछेन जंग पो, डकले ग्याल नेस, जुंग रवर वा, नम त्रिस दोर्जे, देसित संग्यास्-ग्याछो, सितु छोस की जुग नस्, कोग टूल योन तान ग्याछो, चम्पा थुवांग छेवंग नोरबु तथा महापण्डित प्रज्ञामणि तक हजारो चिकित्सक विद्वानों के महान् कृत्यों का उल्लेख

यहाँ करना सम्भव नहीं है। तो भी इनकी रचनाएँ एवं चिकित्सा पद्धति हम कह सकते हैं कि अत्यन्त रहस्यात्मक एवं हानिरहित है।

लदाख में चिकित्सा विद्या का प्रचार

पूर्व विद्वानों की रचनाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि महायोगी (1012) मार पा छोस् को लोटस एवं कालचक्रतंत्र को तिब्बत से लाये तथा ग्यारहवीं बारहवीं शताब्दी के मध्य में लदाख के दस वर्षीय बालक रत्नभद्र रिनछेन जंग पो भारत आये और महायोगी नरो पा आदि 75 से भी अधिक महागुरुओं से पूर्ण शिक्षा लेकर उन्होंने महायान के कई ग्रन्थों का अनुवाद किया। तत्पश्चात् तिब्बत में इनका यश एवं इस क्षेत्र में अधिक लाभ होने के लक्षण को जान कर पण्डित जनदघल ने उन्हें तिब्बत भेजा। वहाँ उन्होंने चिकित्सा विद्या पर अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये तथा प्रभूत स्वर्ण के साथ पुनः भारत में आकर हृदयसंग्रह एवं छिक्तोन दाजेर चन्द्रांशु नामक महाग्रन्थ का अनुवाद किया।

भारत में पूर्ण शिक्षा प्राप्त करने के बाद बत्तीस अन्य वैद्यों के साथ वे लदाख आये, जहाँ उन्होंने जगह-जगह पर स्तूप का निर्माण किया। लदाख के चार वैद्य जो त्रङ् दस सिंग गे, देशोगस त्रिपा, ईशेस जुंग नस, योंग स्मन आमे, मंग पो स्मान चुन ने भी इनकी शरण में आकर उपदेश एवं इस विद्या की सम्पूर्ण शिक्षा ली। तब से लेकर आज तक के वैद्य उनकी परम्परा को मानते हैं। महाराज नोस् डुप् के समय तो यहाँ से कई सुमति बालक तिब्बत में इस विद्या की शिक्षा हेतु भेजे गये।

जब लदाख डोगरा के नियन्त्रण में आया तो यहाँ के वैद्यों का आदर बना रहा और वे भी इनसे चिकित्सा की सुविधा लेते रहे। यहाँ के वैद्य भी उनसे शत्रुता की भावना को छोड़ कर मित्रता व करुणा की भावना से उनकी चिकित्सा-सेवा करते रहे। यही कारण है कि डोगरा राज में भी इन्हें पूर्ववत् सम्मान व सत्कार मिलता रहा। तब से लेकर अब तक यहाँ के लोग इस पद्धति की चिकित्सा से लाभ उठाते आ रहे हैं। इतना ही नहीं, आज भी लोग इस पद्धति को चिकित्सा को पहले से ज्यादा पसन्द करने लगे हैं। क्योंकि आधुनिक दवाओं की अपेक्षा यह चिकित्सा-पद्धति रोग को समूल नष्ट करने में अधिक उपयुक्त है।

भगवान् बुद्ध के विचार आज के सन्दर्भ में

सोनम वांगचुग

भगवान् बुद्ध परम प्रज्ञा एवं करुणा की प्रतिमूर्ति थे। इन दोनों गुणों की आज बीसवीं शताब्दी के युग में भी सार्वभौमिक मान्यता है। भगवान् बुद्ध ने प्रज्ञा को सम्यक् दृष्टि तथा करुणा को श्रेष्ठ और परोपकारी भावनाओं की चरम सीमा भी कहा है। सभी देशों के पुरुषों और स्त्रियों को सभी युगों में प्रज्ञा और करुणा का विकास करना होगा। भगवान् बुद्ध की शिक्षा का सार प्रज्ञा और करुणा में है।

भगवान् बुद्ध के विचारों की विलक्षण आधुनिकता इनकी दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता है, यद्यपि अब यह दो हजार पाँच सौ वर्ष से अधिक पुरानी है।

भगवान् बुद्ध के दृष्टिकोण को आश्चर्यजनक एवं बौद्धिक कहा जा सकता है। उन्होंने अपने अनुयायियों को अपने उपदेशों को अनिवार्य रूप से मानने को कभी नहीं कहा। ऐसा कहा जाता है कि वे अपने शिष्यों से कहते थे—किसी भी बात को इसलिए स्वीकार मत करो, क्योंकि ऐसा कहा जाता है, क्योंकि ऐसा पारम्परिक विश्वास है, क्योंकि ऐसा बहुसंख्यक मानते हैं, क्योंकि ऐसा ग्रन्थों में लिखा हुआ है और क्योंकि ऐसा तुम्हारा गुरु कहता हैं।

बौद्धिकता को यह भावना ही भगवान् बुद्ध के विचारों को आज के युग के लिए विशिष्ट रूप से प्रासंगिक बनाती है, जिसमें विचार और विश्वास की स्वतन्त्रता की भावना और वैज्ञानिक दृष्टिकोण है।

बुद्ध के धर्म में जाति, वर्ग, अंग और लिंग के आधार पर कोई भेद नहीं माना जाता। सभी देशों, रंगों, जातियों और वर्गों के लोगों को इस धर्म के अध्ययन, इस पर आचरण और इसके उत्कृष्ट विचारों से लाभान्वित होने के लिए पूर्ण रूप से स्वतन्त्रता एवं अधिकार प्राप्त है।

अब हम आज के संसार पर एक दृष्टि डालें। आज इस संसार में हर कहीं निर्धनता, भुखमरी, अन्याय, शोषण, असमानता, भय, पारस्परिक अविश्वास, सन्देह दिखाई देता है। दूसरे शब्दों में हमारी इस धरती पर राग, द्वेष और अज्ञान का

राज्य है। जब तक संसार में ये तीनों भयंकर शत्रु रहेंगे, तब तक यहाँ सुख और शान्ति स्थापित नहीं हो सकती।

परन्तु यदि हम बुद्ध की प्रज्ञा और करुणा का अभ्यास करें और दुःखी जनों के कल्याण के लिए इसका व्यवहार करें तो हम विश्वास कर सकते हैं कि इस दुःख-पूर्ण संसार में दुःख से राहत मिल सकती है और समाज में सुख और शान्ति स्थापित हो सकती है। आज विश्व विभिन्न सिद्धान्तों में विभाजित है और उनके अपने गुट भी हैं, जो अपनी अधिकांश शक्ति युद्ध जैसे बुरे काम के लिए व्यय करते हैं। जब तक मानव राष्ट्र अपनी स्वार्थपूर्ण वासनाओं का परित्याग नहीं करते, तब तक विश्व में शान्ति नहीं हो सकती। भगवान् बुद्ध ने कहा है—

न हि वेदेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो॥

—धम्मपद

अर्थात् वैर वैर से कभी भी शान्त नहीं होता, अपितु मैत्री से ही वैर शान्त होता है, यही सनातन धर्म है।

भगवान् बुद्ध के विचार हमें यह भी बताते हैं कि शान्ति प्राप्ति का एकमात्र उपाय यह है कि युद्ध के मूल को ही समाप्त किया जाए। युद्ध का मूल कारण है–राग, द्वेष और अज्ञान। आज विश्व युद्ध, भय और धमकियों से आतंकित है। आज अधिकतर देश दूसरे देशों के साथ किसी न किसी प्रकार के युद्ध में ग्रस्त हैं। विभिन्न देशों में भयंकर हथियारों के बड़े-बड़े भण्डार हैं और न केवल सैनिकों का, अपितु असंख्य निर्दोष स्त्री, पुरुष और बच्चों का नरसंहार हो रहा है। इसके अतिरिक्त भूमि और सम्पत्ति का भी नाश हो रहा है। आज का वातावरण मन, वचन और कर्म तीनों ही में हिंसा से पूर्ण है।

अब तक जो दो विश्वयुद्ध और अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध हुए हैं, उनसे न केवल भौतिक साधनों एवं असंख्य मानव जीवन का विनाश हुआ है, बल्कि उन उत्कृष्ट मूल्यों की भी क्षति हुई है, जो जीवन को सार्थकता प्रदान करते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर आज हम देखते और सुनते हैं कि संयुक्त राष्ट्रसंघ एवं अन्यत्र निरस्त्रीकरण पर बहुत लम्बी-चौड़ी बहस एवं व्याख्यान हो रहे हैं। विभिन्न

सम्मेलनों में विभिन्न देशों के प्रतिनिधि विश्व में निरस्त्रीकरण पर अपने-अपने देश के दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। परन्तु वास्तव में जब तक हम अपने मन का निरस्त्रीकरण नहीं करते, तब तक भौतिक निरस्त्रीकरण की बात निरर्थक है। मन का निरस्त्रीकरण ही वास्तविक निरस्त्रीकरण है।

भगवान् बुद्ध ने कहा है—

मनोपुब्बंगमा धम्मा, मनोसेट्ठा मनोमया।

—धम्मपद

अर्थात् मन ही सभी गतिविधियों का अगुवा है, मन ही सभी गतिविधियों में श्रेष्ठ है। सभी धर्म मनोमय हैं। इस प्रकार जब मन प्रज्ञा और करुणा को ग्रहण करके राग, द्वेष और मोह का परित्याग करता है, तभी सुख और शान्ति का राज्य स्थापित हो सकता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भगवान् बुद्ध के विचार पहले की अपेक्षा आज के युग में अधिक प्रासंगिक हैं।

●

अहो संसारमण्डस्य बुद्धस्योत्पाददीप्तता।
मानुष्यं यत्र देवानां स्पृहणीयत्वमागतम्॥

(मातृचेट, अध्यर्धशतक)

लदाख का इतिहास : एक विहंगम दृष्टि

कालीचरण

भारत माँ के धवल किरीट सा युग-युगों से शोभायमान है लदाख। लदाख में प्रकृति देवी अपना नृत्य स्वच्छन्द रूप से करती है। इसलिए यह रमणीक स्थान अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए भारत में नहीं, वरन् विश्व में अपना अनूठा स्थान रखता है। युग-युगों से लदाख अपने कई नामों से परिचित रहा है। इसके लाताग (La-Tags) मर-यूल (Mar-Yul) तथा खा-चन-पा (Kha-chan-Pa) आदि नाम प्रमुख हैं। मर-यूल का अर्थ लाल भूमि तथा खा-चन-पा का अर्थ दिव्य भूमि होता है। ईशा की चौथी शताब्दी में चीनी यात्री फा-ई-ह्यान भारत की यात्रा पर आया था। उसने अपने संस्मरण में लदाख का उल्लेख किए-चाह (Kie-Chaha) के रूप में किया है। 640 ई० में एक और चीनी यात्री हुआन-सांग (Hwan-Thsang भारत दर्शन के लिए आया था। उसने लदाख का उल्लेख मा-लो-फो के नाम से किया है। आधुनिक युग में इसे कुछ लोग लदाख (Ladakh) और कुछ लादाग (Ladag) कहते हैं। यह प्रदेश काश्मीर राज्य का एक मण्डल है और सिन्धु नदी की ऊपरी-घाटी पर स्थित है, जहाँ हिमालय पर्वत की उत्तर-पश्चिमी पहाड़ियाँ समाप्त होती हैं। लदाख के निवासी बोत्-पा (Bot-Pa) कहे जाते हैं। इनका धर्म बौद्ध धर्म है। बोत् शब्द स्वयं बुद्ध का अपभ्रंश है। बुद्ध-यान से बौधयान, उससे बोदतान तथा बोदतान से बोत् शब्द की उत्पत्ति हुई।

ईसा से लगभग 50 वर्ष पूव तिब्बत का एक शक्तिशाली शासक हुआ, उसका नाम न-ठि-चन पो (Nathri Tsan Gpo) था। मंगोल लेखक सवांग सेतजेन (Savang Setzen) के अनुसार न-ठि-चन-पो भारत के प्रसिद्ध लिच्छिवि राजवंश का राजकुमार था। महान् अशोक के द्वारा इस राजवंश को हराये जाने के उपरान्त वह राजकुमार तिब्बत चला गया और तिब्बत में इस भारतीय राजकुमार का भारी स्वागत हुआ तथा उसे तिब्बत का राजा स्वीकार कर लिया गया। प्रसिद्ध इतिहासकार कसोमा दे कोटोस ने भी इसी कथा को दुहराया है। वैशाली का लिच्छिवि वंश इतिहास प्रसिद्ध है। वे स्वस्ति धर्म के उपासक थे। स्वस्ति, स्वस्तिक का ही अपभ्रंश है। इस राजकुमार

ने स्वस्ति धर्म का जबरदस्त प्रचार एवं प्रसार किया। लदाख का मठ लामा यूरू (Lama-Yuru), जिसे युंग-द्रुनी गोनपा (Yung-Druny) कहते हैं, उसी का अवशेष हैं। महावंश के अनुसार ईशा से लगभग 241 वर्ष पूर्व महान अशोक ने बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए काश्मीर और गांधार की ओर बौद्ध-भिक्षु भेजे थे। इन्हीं बोद्ध भिक्षुओं ने लदाख के हिमाच्छादित सुरम्य पर्वतों को "बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, संघं सरणं गच्छामि" से प्रतिध्वनित कर दिया तथा वहाँ भगवान तथागत के महामन्त्र "चरथ भिक्खवे, चारिकं बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं—" का उद्घोष किया। तब से आज तक लदाख भगवान् तथागत के करुणा, मैत्री तथा शान्ति–संदेश को सहेजे चला आ रहा है।

भारतीय पुरातत्त्व शास्त्र के कीर्तिस्तंभ कनिंघम माने जाते हैं। कनिंघम ने 19वीं शताब्दी के प्रथम चरण में लदाख की खोजपूर्ण यात्रा की। 30 अगस्त को उनके ग्रन्थ "लदाख" का प्रकाशन हुआ। लदाख पर सम्भवतः यह उनकी प्रथम पुस्तक थी। लदाख के इतिहास पर अभी शोध-कर्त्ताओं का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ है। प्राचीन इतिहास की कड़ियाँ कहीं-कहीं से टूटी हुई हैं। इतिहास का बहुत बड़ा अंश अज्ञात है। लदाख का क्रमबद्ध इतिहास 1580 ई० से स्पष्ट रूप में सामने आता है। तिब्बत के भारतीय मूल के राजाओं का वंशज छेवांग नमग्याल (Chewang Namgyal) को ल्हासा से निष्कासित कर दिया गया था। 1580 ई० में उसने लदाख में अपने राज्य की स्थापना की और उसने चंगमरंगी (Chan gma rangi), लोदांग (Lodang), पुरांग (Purang), गूगे (Cuge), ल्होजुम लोंग (Lhcjumlong), लुंगती (Lungati), शिगर (Shigar) तथा खटकर (Khtkar) प्रदेशों को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। उसने नूबरा (Nubra) मार्ग के द्वारा यारकंद (Yarkand) पर आक्रमण करने की तैयारी कर ली थी, पर इस समाचार को सुनते ही नूबरा (Nubra) के प्रधान ने छेवांग का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। इसके बाद छेवांग ने कुकीवाला (Kukiwala) के भूस्वामियों पर एक सौ सुवर्ण तिलाओं का वार्षिक कर लगा दिया और रूदोग (Rudok) के भूस्वामियों पर 207 सुवर्ण तिलाओं का वार्षिक कर लगा दिया। इस प्रकार उसने एक विशाल सम्पत्ति एकत्रित कर ली। अपने अन्तिम समय में उसने संक्य-बिदुंग (Sankya Bibung) नाम से भगवान बुद्ध की एक विशाल प्रतिमा का निर्माण कराया। प्रतिमा के तैयार

हो जाने पर एक उत्सव मनाया गया। 1600 ई० में छेवांग निःसन्तान मृत्यु को प्राप्त हुआ।

छेवांग के बाद लदाख के राजसिंहासन पर उसका भाई जमयङ् नामग्यल आसीन हुआ। जमयङ् के राज्याभिषेक के समय एक साधारण सामंत के सिवाय सभी ने जमयङ् के आधिपत्य को स्वीकार कर लेने के प्रतीकस्वरूप भेंट दी। पुरीक के मुख्य सामंत ने नये राजा से अनुरोध किया कि यदि उसे थोड़ी सैनिक सहायता दे दी जाए तो वह इस विद्रोही को दबा देगा। जमयङ् इतने क्रोध में था कि विद्रोही सामन्त को दण्डित करने के लिए वह स्वयं चल दिया। समय और प्रकृति ने उसका साथ नहीं दिया। मार्ग में वह एक बर्फीले तूफान में घिर गया। सारी सेना तितर-बितर हो गई। राजा को बंदी बना लिया गया और उसे स्करदो (Skardo) के शासक अलीमीर के पास भेज दिया गया।

लदाख की इस असहाय अवस्था का लाभ अलीमीर ने उठाया। उसने एक विशाल सेना लेकर लदाख पर आक्रमण कर दिया। राजविहीन लदाख को अलीमीर ने रौंद डाला, मंदिर और मठ फूँक दिये। बुद्ध की प्रतिमाएँ तोड़ दी गईं। इनमें छेवांग द्वारा निर्मित बुद्ध की अद्‌भुत विशाल प्रतिमा भी शामिल थी। पुस्तकों के विशाल भंडार को सिन्धु नदी में फेंक दिया गया। लदाख की साहित्यिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक सामग्री नष्ट कर दी गयी। लदाख को लूट कर अलीमीर वापस चला गया। लदाख का जो विध्वंस उसे करना था, वह कर ही चुका था। दुर्गम पर्वत के बीच इतनी दूरी से लदाख पर प्रशासन करना उसके वश की बात नहीं थी। स्कारदो वापस लौटने पर उसने जमयङ् को मुक्त कर दिया। कुछ इतिहासकारों का मत है कि उसने जमयङ् को मुक्त करते समय अपनी एक पुत्री का विवाह भी उससे करा दिया। जमयङ् की वापसी पर लदाख की जनता ने उसका बड़ा शानदार स्वागत किया। जमयङ् ने फिर अपने राज्य का विस्तार किया और लदाख की सीमाएँ तन्ची तक पहुँच गई।

अलीमीर की लड़की से जमयङ् के दो लड़के हुए। उनमें से एक का नाम सिंग्गे नमग्याल (Sangge Namgpal) तथा दूसरे का नाम नोरबू नमग्याल था। सिंग्गे नमग्याल का विवाह छेवांग ग्यालमो (Chewang Gvalmo) की लड़की से

से हुआ। इस विवाह के फलस्वरूप सिंग्गे के दो पुत्र हुए, नवांग नमग्याल (Nawang Namgyal) तथा तेनजिन नमग्याल (Tanzin Namgyal)। इस अवसर पर राजा ने बौद्ध-मठों को बहुत दान-पिण्ड दिया। इसी अवसर पर तीन ग्रन्थों की, जिन्हें ग्यातोकीसंगसुम (Gyatoki Sangsum) के नाम से जाना जाता है, की प्रतिलिपि उसने स्वर्ण, चाँदी और ताँबे के अक्षरों में कराई। 1620 ई० में जमयङ् का स्वर्गवास हो गया। यह कहा जाता है कि उसकी मृत्यु बुद्ध के दो मन्दिरों का निर्माण पूर्ण न हो सकने के दुःख से हुई। जमयङ् की मृत्यु के बाद उसका बड़ा लड़का सिंग्गे नमग्याल गद्दी पर बैठा। वह अपने पिता के बड़े भाई छेवांग की सैनिक विजयों से बहुत प्रभावित था। राजगद्दी पर बैठते ही उसने सैनिक अभियान प्रारम्भ कर दिया। गुगे (Guge) रुदोक (Rudok) तथा तिपि चंगयाप (Tipi Changyap) के जिलों पर इसने आक्रमण किया। इन सब आक्रमणों के फलस्वरूप उसे अपार सम्पत्ति प्राप्त हुई।

बाल्टी (Balti) के शासक अहमद खान की गृध्र दृष्टि सिंग्गे (Singge) की सम्पत्ति पर पड़ी। उसने सोचा की अलीमीर की तरह वह भी लदाख को लूट कर माला-माल हो जाए। इसी अभिप्राय से अहमद खान ने जहाँगीर शाह की सहायता से लदाख पर आक्रमण कर दिया। पर इस बार लदाख का शासक परम वीर सिंग्गे नमग्याल (Singe Namgyal) था। उसने अपनी सेना एकत्रित की और इस आक्रमण का डटकर मुकाबला किया। अहमद खान को पराजय का मुख देखना पड़ा। लदाख के शान्तिप्रिय निवासियों ने यह दिखा दिया कि अवसर पड़ने पर वे आक्रमणकारियों और अत्याचारियों का मुँह तोड़ना भी जानते हैं। इस विजय के बाद सिंग्गे ने अन्य विद्रोहियों की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया। अहमद खान और जहाँगीर शाह के संयुक्त आक्रमण का लाभ उठाकर कुछ सामन्तों ने विद्रोह कर दिया। सिंग्गे ने शीघ्र ही गुगे (Guge), चपरंग (Chaprang) तथा लोमोस्तंग (Lomostang) के विद्रोहियों को दबा दिया और उसने निकटवर्ती जिले रुदोक (Rudok) को अपने राज्य में मिला लिया। इन सब विजयों से प्रोत्साहित होकर उसने तिब्बत पर आक्रमण करने की तैयारी की, लेकिन वह अभी श्री किरकिर (Sri Kirkir) तक ही पहुँचा था कि ल्हासा का एक प्रतिनिधि मण्डल बहुमूल्य जवाहरातें, सोना, चाँदी आदि को भेंट स्वरूप देने के लिए पहुँच गया। इस प्रतिनिधि मण्डल का प्रधान देबा चंगपा (Daba Changpa) था। सिंग्गे ने भेंट स्वीकार

कर ली और तिब्बत पर आक्रमण करने का इरादा छोड़ दिया। इसके बाद उसने पुरंग (Purang), गुगे (Guge) जांसकार (Zanskar), स्पिति (Spiti), पुरीक (Purik), मंग्युमल (Mangyumal), सेदाख (Sedakh) तथा शकिय-मचो (Shakyamcho) को जीत कर अपने राज्य में मिला लिया।

सिग्गे नमग्याल (Singe Namgyal) का शासनकाल (1620–1670) लदाख के इतिहास का स्वर्ग युग कहा जा सकता है। इस युग में शासन अपने सर्वांगीण विकास पर था तथा जनता सुख चैन से रहती थी। सिंग्गे नमग्याल के तीन पुत्र थे। एक का नाम देलदन नमग्याल (Deldan Namgyan), दूसरे का नाम इन्द्र नमग्याल (Indra Namayal) और तीसरे का नाम देछोंग नमग्याल (Dechhong Namyal) था। राजा सिंग्गे के ऊपर लामा स्तग-छङ् (Lama Takshang) का बहुत प्रभाव था। लामा उस युग में प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु थे और उनके पाण्डित्य तथा शील का लोहा सभी मानते थे। संभवतः वह लामा भिक्षु अंशसिद्ध थे। लामा के परामर्श पर उन्होंने अपना राज्य तीन भागों में बाँट कर तीनों पुत्रों को वितरित कर दिया। देलदन को उसने लदाख, पुरंग, रुदोक तथा देह (Deh) तक क्षेत्र दिया। गुगे का जिला उसने अपने दूसरे पुत्र इन्द्र को तथा स्पिति (Spiti) तथा जाँसकर (Zanskar) को उसने अपने तीसरे पुत्र तेनछोग (Tenchhog) को सुपुर्द कर दिया।

सिंग्गे नमग्याल (Singe Namgyal) का उत्तराधिकारी देलदन (Deldan Namgyal) हुआ। देलदन बहुत ही धार्मिक तथा प्रजापालक था। उसने लेह से कुछ मील दूर भगवान बुद्ध की ध्यानमुद्रा में एक विशाल प्रतिमा बनाई। यह प्रतिमा शाक्य थुब्बा (Shakya Thubba) के नाम से प्रसिद्ध है। कहा तो यह जाता है कि यह प्रतिमा आरम्भ में सोने और चाँदी की थी। उसने अपने पिता की स्मृति में एक स्मारक भी बनवाया था। इस विशाल स्मारक का शिखर सोने और चाँदी का निर्मित कराया था। अपनी माँ की स्मृति में चारों ओर उसने चहार-दीवारी भी बनवाई। उसने जंस्कर (Zanskar), पुशबुज (Pushbuz) तथा तुम-नुज (Tumnuz) में मन्दिरों का निर्माण भी करवाया। प्रत्येक मन्दिर के निर्माण में उस समय लगभग 10,000 रुपये व्यय हुए थे। लेह के दुर्ग में भी उसने चन्द्रा की प्रतिमा का निर्माण कराया था। मूरक्रोफ्ट (Muorcroft) ने इस प्रतिमा का नाम

चम्बा (Chamba) दिया है। इसकी उपासना के लिए उसने कई पुजारियों की नियुक्ति की। इसी दुर्ग में चन्राजिक (Chanrazik-Snyan-ras) की चाँदी की मूर्ति भी बनवाई। मूरक्राफ्ट के अनुसार यह प्रतिमा अवलोकितेश्वर के समान ही है।

देलदन (Dalden) ने शाक्य-ग्या-छो (Shakya-gya-cho) को प्रधान मंत्री के पद पर नियुक्त किया। पुरीक के लोगों ने इस नियुक्ति के विरोध में विद्रोह कर दिया। प्रधान मन्त्री इस विद्रोह को दबाने स्वयं गया। खारबू को जीत कर उसने वहाँ के अधिकारियों को गिरफ्तार कर लिया और हेमीस (Hemis) के दुर्ग में डाल दिया। एक वर्ष बाद चिगतन (Chigton) शाकों (Shako) तथा सोड के लोगों ने विद्रोह कर डाला। प्रधान मन्त्री ने बड़ी आसानी से इसे भी दबा दिया। इस विद्रोह के नेता थाई सुल्तान (Thai Sultan) को गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया। इसके बाद प्रधान मंत्री ने खापोलोर (Khapolor), जो कि बाल्टी के अधीन था, पर एक बड़ी सेना के साथ आक्रमण किया। मार्ग में उसने छोरवाट (Chhoraat) तथा थोरचेखार (Thorchekhar) को भी जीत लिया। इन क्षेत्रों के प्रधान हासिम खॉन, सुल्तान खॉन तथा अली खॉन ने आत्मसमर्पण कर दिया। लेकिन बाल्टी (Balti) के प्रधान ने काश्मीर के सूबेदार से सहायता प्राप्त कर ली और सारीरू (Sariru) के पास उसने लदाखियों का सामना किया। दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। पर नमग्याल (Parak Namgyal) के कुशल एवं प्रभावशाली नेतृत्व में लदाखी सेना ने काश्मीरी सेना को पराजित कर दिया। काश्मीरी सेना को धन और जन की भारी हानि उठानी पड़ी। करचू (Karchu) तथा बाल्टी (Balti) के सामन्तों ने आत्मसमर्पण कर दिया। इस युद्ध में लदाखी सेना को बड़ा श्रेय प्राप्त हुआ।

सरीरू (Sariru) की विजय लदाखियों की महान् विजय थी। पर उसका यह ऐश्वर्य अधिक समय तक नहीं रह सका। सोकपोओं ने (Sokpos) ने गालदन छोवर जोंगर (Galdan Chobar Jongar) तथा लोब्जंग शेरब (Lobzung Sherab) के नेतृत्व में लदाख पर आक्रमण किया। लदाखियों को दलंग खरवार (Dalang Kharwar) पर पराजित होना पड़ा। लांग-संग तक का क्षेत्र इन आक्रमणकारियों ने रौंद डाला। अगले वर्ष पुनः सोगपोओं ने आक्रमण किया।

इन आक्रमणों से परेशान होकर ग्यालपो देलदन ने इब्राहीम खाँ से, जो मुगल बादशाह औरंगजेब का सूबेदार था, सहायता माँगी। औरंगजेब की स्वीकृति से इब्राहीम खाँ एक बड़ी सेना लेकर लदाख की सहायता के लिए गया। उसने लदाख को इन आक्रमणकारियों से मुक्त तो करा लिया, पर एवज में उसने चाहा कि राजा इस्लाम धर्म स्वीकार कर ले। इब्राहीम खाँ ने लेह में एक मस्जिद भी बनवाई। जब वह काश्मीर वापस लौटा तो अपने साथ देलदन नमग्याल के छोटे बेटे दे-छोग नमग्याल को लेता गया।

देलदन नमग्याल के कई पुत्र थे। दे-छोग तो सूबेदार के साथ काश्मीर चला गया और बुंचक (Ban chak) सोकपाओं (Sokpos) के साथ ल्हासा चला गया। उसके तीसरे पुत्र थुपतन (Thupton) के बिषय में कुछ ज्ञात नहीं। चौथा पुत्र देलेक् (Delek) था, जो अपने पिता का उत्तराधिकारी बना। देलेक नमग्याल (Delek Namgyan) का शासन काल 1720 ई० से 1750 ई० तक रहा। देलेक का शासन काल लदाख के लिए कोई विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं रहा। इसके पाँच पुत्र थे। जिसके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं, (1) निमा नमग्याल, (2) नवंग नमग्याल, (3) डीचोक, (4) ग-दन-नमग्यांल, (5) चोरतान। देलेक के शासन काल में बाल्टी के शासक मुराद ने लदाख पर भयंकर आक्रमण किया और लदाख को जी भर कर लूटा। इस आक्रमण से लदाख की एक प्रकार से कमर टूट गई।

लदाख के इतिहासमें 1834 ई० बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसी वर्ष में काश्मीर महाराजा गुलाब सिंह के प्रसिद्ध वजीर जोरावर सिंह ने लदाख पर आक्रमण किया। जोरावर सिंह के साथ आक्रमण में निम्नलिखित अधिकारी थे:—(1) सियक राय सिंह (2) मेहता बस्तीराम (3) मिर्जा रसूल बेग (4) राणा जालिम सिंह (5) सिहे मान-कोटिया (6) मियाँ टूटा (7) सरदार उत्तम सिंह (8) वजीर सोजा गूँज लदाख के ग्यालप (शासक) और बंक कहलन (Bank Kahlan) प्रधान मन्त्री के अतिरिक्त गपजू (Gapju) दोरजे नमग्याल (Corje Namgval), चाँग (Chang) अथवा छेगंग नवदन (Chevang Nabdan) और चचोट (Chachot) के रहम खान। 16 अगस्त 1834 ई० को डोगराओं का आक्रमण आरम्भ हुआ। लदाख के च पे-च पर घमासान युद्ध हुए और इस युद्ध में लदाख की पूर्ण पराजय हुई। 1837 ई० में सम्पूर्ण लदाख काश्मीर की अधीनता में आ गया। जोरावर सिंह

ने ग्यालपा के पौत्र सोलह वर्षीय जिगमेत सिंगे नमग्याल को नया ग्यालपो घोषित कर दिया ।

आज लदाख के इतिहास की अनेक महत्त्वपूर्ण कड़ियाँ लुप्त हो चुकी हैं । यह विश्व के इतिहास में एक अनूठी छटा रखता है. इस कारण इतिहास—शोधकर्त्ताओं का कतर्व्य है कि वे लुप्त कड़ियों पर पड़े पर्दे को हटाकर तथ्यों को उजागर करें, जिससे एक महान बौद्ध-प्रदेश की ऐतिहासिक उपलब्धियों से विश्व को परिचित किया जा सके। यह कार्य बहुत कठिन हैं, लेकिन मानव के चन्द्रमा पर पर्दापण से बहुत आसान है।

दरिद्राणां च सत्त्वानां निधिः स्यामहमक्षयः ।
नानोपकरणाकारैरुपतिष्ठेयमग्रतः ॥

(बोधिचर्यावतार ३ : ९)

REFERENCE :

1. Labakh Physical, Satistical and Historical, Alexander Cunningham 1853
2. Raj Tarengini,
3. Account of an Embassy to the Court of the T.Bama in Tibet, by Capt, Sammual Tumer.
4. Moorcroft, William and George Trebeak, Travels in the Himalayan Provicn Provinces nf Hindustan and Punjab in Ladakh ; and kashmir etc. from 1819-1825, 2 Vols. Rondom–1837–38.
5. History and culture of Himalayan States Vol V–Dr.Shukhder Singh Charak—1960
6. Encyclopaedia of Britania.

काश्मीर में बौद्ध धर्म

एस० सी० सक्सेना

राजतरंगिणी के अनुसार अशोक ने (पाण्डरेथन) श्रीनगर नामक नगर की स्थापना की थी। अधिकांश विद्वानों का भी यही कथन है कि श्रीनगर की स्थापना अशोक ने ही की थी। परन्तु कश्मीर का भारत के साथ इसके पहले ही व्यापारिक सम्बन्ध था, अतः हो सकता है कि बौद्ध धर्म श्रीनगर में चन्द्रगुप्त मौर्य के काल के पहले ही प्रचलित हो। चन्द्रगुप्त मौर्य ने कश्मीर पर अधिकार कर लिया था। चन्द्रगुप्त जैन धर्म के साथ अन्य धर्मों में भी श्रद्धा रखता था। इसने बौद्ध धर्म को मर्यादित करने का प्रयत्न किया था, क्योंकि बौद्ध धर्मग्रन्थों के अनुसार संघ में चोर-डाकुओं का प्रवेश हो गया था और इसके राजनैतिक कारण भी थे। अतः संभव है कि चन्द्रगुप्त मौर्य से पहले ही कश्मीर में बौद्ध धर्म प्रचलित हो। समन्तपासादिका, दीपवंश और महावंश के आधार पर गुप्त की बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धा प्रकट होती है।

कश्मीर में सर्वप्रथम नीलपाणि द्वारा नागपूजा प्रचलित थी। बौद्ध धर्म ग्रन्थ (दिव्यावदानशतक, बोधिसत्त्वावदान कल्पलता 40 पृ० सं) के अनुसार कश्मीर के लोग भी उसी जाति के थे। इसके बाद अशोक के काल में श्रीनगर में बौद्ध धर्म का प्रवेश अवश्य हो गया था। अशोक कलिंगयुद्ध के पूर्व बौद्ध नहीं था। अशोक ने अपने राज्याभिषेक के बाद बौद्ध धर्म स्वीकार किया था। प्रथम लघु शिलालेख से प्रकट होता है कि अशोक ने राज्याभिषेक के एक वर्ष बाद ही बौद्ध धर्म का प्रचार शुरू कर दिया था। इस प्रकार काश्मीर में बौद्ध धर्म अशोक के राज्याभिषेक के बाद ही प्रबल हुआ था। इस काल में बौद्ध धर्म श्रीनगर में खूब पनपा था। अनेक चैत्य, विहार, स्तूप आदि का निर्माण हुआ था। चीनी यात्री युवान च्वांग लिखता है कि तृतीय बौद्ध संगीति के बाद मोग्गलिपुत्र तिस्स कश्मीर में धर्म प्रचारार्थ भेजे गये थे। पालवंश का उल्लेख है कि स्थविर धोविक राजा मिलिन्द के समय काश्मीर में बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ भेजे गये थे (41 पृष्ठ रां)। इसी प्रकार मोग्गलिपुत्र स्थविर ने तृतीय बौद्ध संगीति को समाप्त कर मध्यांतिक स्थविर को काश्मीर और गान्धार में धर्म प्रचारार्थ भेजा था।

अशोक ने बौद्ध धर्म को राजधर्म घोषित किया था और जीव हिंसा पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। 17 वें शिलालेख से ज्ञात होता है कि इसने विदेशों में भी धर्म-प्रचारक भेजे थे। अशोक के पुत्र जलौक के समय बौद्धधर्म के पतन की झलक मिलती है। इसके बाद दामोदर द्वितीय शासक हुआ। राजा अभिमन्यु के समय भी बौद्ध धर्म प्रबल था, परन्तु राजा कित्तिसिद्ध गोमादित्य के समय बौद्ध विहारों को ध्वस्त करने का उल्लेख मिलता है। राजा मेघवाहन के समय बौद्ध धर्म का पुनः प्रचार हुआ। इसकी पत्नी के पिता के गुरु ने लदाख (भोट) में बौद्ध धर्म स्थापित कर वहाँ लोस्युन्त विहार की स्थापना की। राजा मेघवाहन ने सर्वप्रथम काश्मीर में बुद्ध प्रतिमा अपनी पत्नी भिन्नों के विहार में स्थापित की थी। पालिनिकायों के कथन के आधा पर ऐसा प्रतीत होता है कि 184 ई० पूर्व मौर्यवंश की समाप्ति के बाद काश्मीर और गान्धार में नये राजवंशों का उदय हुआ। शुंगवंश के साथ सातवाहन वंश भी ब्राह्मण धर्म का पोषक था, परन्तु धार्मिक सहिष्णुता थी। ई०पूर्व प्रथम शताब्दी में कलिंग का शासक खारवेल हुआ, जिसने उत्तरी भारत पर आक्रमण किया। संभवतः इसने काश्मीर पर भी अधिकार किया हो और बौद्ध धर्म को क्षति पहुँचायी हो। मिनेन्डर बौद्ध था। इसके समय में बौद्ध धर्म का पुनरुद्धार हुआ। कुषाणवंश के कुजुला कैडफिसेस ने लदाख पर अधिकार किया था। संभवतः काश्मीर पर भी अधिकार किया होगा। इसके नाम का लदाख में रानत्से नामक स्थान पर 32 ई० का एक लेख मिला है। 78 ई० में कुषाण वंश का राजा कनिष्क गद्दी पर बैठा था। राजतरंगिणी से प्रकट होता है कि इसका काश्मीर पर अधिकार था। इसके बाद इसने बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार किया और काश्मीर में कनिष्कपूर की स्थापना की। भारत, मंगोलिया, तिब्बत, चीन के बौद्ध ग्रन्थ कनिष्क द्वारा आयोजित चौथी बौद्ध संगीति का वर्णन करते हैं, स्थान का निश्चय नहीं है। परन्तु सिंहली महाकाव्य चौथी बौद्ध संगीति का होना नहीं मानते। कनिष्क के समय बौद्ध धर्म में मूर्ति पूजा का प्रचलन हुआ और बौद्ध धर्म हीनयान और महायान दो शाखाओं में विभाजित हो गया। कनिष्क के समय अश्वघोष हुए थे। कुछ विद्वान नागार्जुन को भी इसी काल का मानते हैं। कल्हण के अनुसार नागार्जुन कुषाण राजाओं का समकालीन था। यह तिब्बत भी गया था। नागार्जुन को भूमीश्वर कहा गया है। इससे प्रतीत होता है कि उसका काश्मीर में काफी प्रभाव था।

गुप्त काल में भी बौद्ध धर्म काफी प्रचलित था, वैसे ये वैष्णव धर्म के अनुयायी थे। 399 में फाह्यान भारत आया था। यह काल वैष्णव धर्म की उन्नति का काल था

परन्तु इस काल में बौद्ध विद्वान बसुबन्धु, असंग, दिङ्नाग आदि विद्वान हुए। स्कन्द-गुप्त वैष्णव था, परन्तु इसके काल में धार्मिक सहिष्णुता थी। बुद्धगुप्त संभवतः बौद्ध था। ह्वेनसांग के वर्णन से प्रकट होता है कि उसने नालन्दा के बौद्ध विहार के विकास में सहायता दी थी। बुद्धगुप्त ने बौद्ध विहारों को दान दिया। ह्वेनसांग के अनुसार नरसिंह गुप्त बालादित्य बौद्ध धर्म का अनुयायी था। गुप्तवंश के पतन के बाद नये राज्यवंशों का उदय हुआ। 515 ई० के लगभग मिहिरकुल शासक बना, यह हूण था। ह्वेनसांग के अनुसार हूण शैव मत के अनुयायी थे। मिहिरकुल बौद्ध विरोधी था। राजतरंगिणी, ह्वेनसांग और मन्दसौर अभिलेख से प्रकट होता है कि इसने काश्मीर पर भी अधिकार किया था। इसके पिता तोरमण का भी काश्मीर पर अधिकार था। मिहिरकुल ने बौद्ध धर्म को बहुत क्षति पहुँचाई। बौद्ध धर्म ग्रन्थों के अनुसार यह जैन मत का अनुयायी भी था। मन्दसौर अभिलेख से पता चलता है कि इसे मालव देश के शासक यशोवर्मन ने 532 ई० में पराजित कर दिया था।

वर्धनवंश के शासक हर्ष ने 606 से 650 तक राज्य किया था। ह्वेनसांग की जीवनी के अनुसार हर्ष ने काश्मीर नरेश से बलपूर्वक महात्मा बुद्ध के दन्त-अवशेष प्राप्त किये थे। अतः कुछ विद्वान कहते हैं कि काश्मीर हर्ष के अधीन था, परन्तु अधिकांश विद्वान काश्मीर में कार्कोट वंश का राज्य मानते हैं। हर्ष-काल में काश्मीर में ब्राह्मण धर्म का बोलबाला था। वैसे हर्ष ने बौद्ध धर्म की उन्नति में बहुत सहयोग दिया। परन्तु ह्वेनसांग और बाण के अनुसार इस काल में बौद्ध धर्म अवनत दशा में था और शैव पूजा का अधिक जोर था। ह्वेनसांग के समय बौद्ध धर्म 18 सम्प्रदाओं में विभाजित था। उस समय काश्मीर की जनता में किसी विशेष धर्म के प्रति आस्था नहीं थी। ह्वेनसांग ने बौद्ध धर्म और संस्कृति के केन्द्र उजड़े हुये पाए। मत्तविलास ग्रन्थ के अनुसार बौद्ध विहार अनैतिकता और विलासिता के गढ़ बन गये थे, जिससे बौद्ध धर्म के प्रति जनता की श्रद्धा और आस्था घट रही थी। काश्मीर में 254 वर्षों तक कार्कोट वंश का राज्य रहा। दुर्लभवर्धन के समय 627 ई० के लगभग भगवान् बुद्ध को अवतार मान लिया गया था, जिससे बौद्ध धर्म का महत्त्व कम हो गया। इसने अनेक मन्दिर और विहारों की स्थापना की। यह धर्म सहिष्णु था। इसके बाद इसके पुत्र दुर्लभक के समय सिकन्दर बुत ने काश्मीर के सभी मन्दिर, विहार, मठ नष्ट कर दिये। 700 ई० में ललितादित्य ने अनेक बौद्ध व शिव मन्दिरों का निर्माण कराया। ललितादित्य के कारण मुहम्मद बिनकासिम कश्मीर में प्रवेश न कर सका। 738 ई० में वज्रादित्य

शासक बना। इसके काल में मुस्लिम व्यापारियों के दासों की संख्या बहुत बढ़ गयी। दासों का धर्म उनके मालिक का धर्म होता था। अतः मुसलमानों की संख्या बहुत बढ़ गयी। राजा वज्रादित्य ने अपनी कार्य सिद्धि के लिये दास प्रथा को मान लिया था। मुस्लिम प्रभाव के कारण यह प्रथा कश्मीर में आ गयी थी।

855 ई० के लगभग कश्मीर में उत्कलवंश की स्थापना हुई। अवन्तिवर्मा वैष्णव था। परन्तु इसके काल में मन्दिर और मठ दोनों का निर्माण हुआ। 939 तक यह वहाँ समाप्त हो गया।

इसके बाद गुप्तवंश स्थापित हुआ। इस वंश की रानी दिद्दा के समय में सुबुक्तगीन ने नेपाल पर आक्रमण किया और हिन्दूओं को गुलाम बनाकर मुसलमान बना दिया। अलबरूनी के अनुसार काश्मीर सीमान्त पर मुसलमानों का अधिकार हो गया था और अनेक हिन्दू मुसलमान बनाये जा चुके थे। रानी दिद्दा ने 1003 संग्रामराज को कश्मीर दे दिया। इस प्रकार लोहरकुल को स्थापना हुई। परन्तु वास्तविक शक्ति सुँग के हाथ में रही। त्रिलोचन के साथ इसे भी महमूद से हारना पड़ा। महमूद ने 1021 में काश्मीर जीतने का अथक प्रयत्न किया। 1089 में राजा हर्ष ने अपनी सेना में मुस्लिम सेनापति नियुक्त किया। इसने बाद में जनता पर बहुत अत्याचार किये। राजनैतिक सत्ता एक से दूसरे हाथ में जाती रही। इन सब घटनाओं ने बौद्ध धर्म को एक प्रकार से काश्मीर में लगभग नष्ट कर दिया।

कल्हण के रचनाकाल तक भारत पर मुसलमानों का अधिकार नहीं हुआ था। परन्तु विदेशी आक्रमण होते रहते थे। 1150 ई० से 1339 ई० तक काश्मीर का काल अत्यन्त संघर्षमय रहा। (47 पृष्ठ रा०) 1339 में काश्मीर में मुस्लिम शासन स्थापित हुआ। इस काल से जैनुल आब्दीन के काल 1446 ई० तक काश्मीर में खूब उथल-पुथल रहीं और कुछ घरों को छोड़कर सभी परिवार मुस्लिम धर्म स्वीकार कर चुके थे। मन्दिर, विहार, मठ तथा पुस्तकें सभी नष्ट किये जा चुके थे।

इस प्रकार राजाश्रय मिलने, महात्मा बुद्ध को अवतार मानने, बौद्ध मठों और विहारों में भ्रष्टाचार तथा मुस्लिम आक्रमण आदि के कारण बौद्ध धर्म काश्मीर में समाप्त हो गया।

●

लदाखी भाषा : समस्या एवं समाधान

फुन्छोक छेरिंग

किसी भी देश की संस्कृति की आधारशिला उसकी भाषा होती है। भाषा के आधार पर ही उस क्षेत्र की संस्कृति की सम्पन्नता का मापदण्ड किया जा सकता है। परम्परागत भाषा जीवन से जैसे-जैसे कम होती जाती है, वैसे वैसे उस संस्कृति की सजीवता कम होती जाती है और अन्ततोगत्वा वह गतिहीन होकर समाप्त भी हो जाती है।

लदाख क्षेत्र की भाषा लदाखी अथवा भोटी है। जो अब अन्य भाषाओं के मिश्रण एवं शासन के हस्तक्षेप न करने के कारण विनाश की ओर बढ़ रही है। भोटी भाषा लदाखियों की सिर्फ मातृभाषा ही नहीं, प्रत्युत वह उनके संचित ज्ञान का भण्डार है और यहाँ की पवित्र धर्मभाषा है। लदाखी भाषा कोई नई भाषा नही है, मूलतः यह भाषा तिब्बती है, जिसके जनक थोनमी सम्भोट हैं। तिब्बत से हजारों कि० मी० दूर स्थित होने से उच्चारण में परिवर्तन स्वाभाविक है। भूटान से लेकर काराकोरम तक एवं सम्पूर्ण तिब्बत की बोली में थोड़ा बहुत अन्तर होना स्वाभाविक है किन्तु लदाखी लोग तिब्बती भाषा एवं उसके साहित्य को आसानी से समझ लेते है। शताब्दियों से इस क्षेत्र के दर्शन, साहित्य, साधना, काव्य एवं कलाएँ इसी भोट भाषा में सुरक्षित हैं। मनुष्य की अनवरत साधना के फलस्वरूप दुनिया में शास्त्रीय ज्ञान के जो उच्च शिखर खड़े हुए हैं, उन तक पहुँचने के लिए जिन भाषाओं का आश्रय लेना होगा, उनमें लदाखी भाषा का महत्त्व किसी से कम नहीं है। यह नहीं कि इन लोगों ने अपनी भाषा, धर्म एवं संस्कृति को किसी से उधार प्राप्त किया हो। वास्तव में काश्मीर, लदाख और जंस्कर आदि क्षेत्रों में ईसापूर्व ही बौद्ध धर्म पहुँच चुका था। उनके पास अपनी लिपि एवं भाषा थी, जिसने आगे चल-कर भोटभाषा का रूप ग्रहण किया और इसमें विशाल साहित्य का निर्माण हुआ। किन्तु यह जान कर आश्चर्य होगा कि यहाँ की वर्तमान शिक्षा में या यहाँ के राज-काज में इस भाषा का नामोनिशान नहीं हैं। जम्मू काश्मीर राज्य में तीन क्षेत्रीय

भाषायें हैं जैसे—काश्मीरी, डोगरी एवं उर्दू। परन्तु लदाखी भाषा सम्पन्न होने पर भी राज्य सरकार द्वारा उपेक्षित की गई। आज लदाखी छात्र उर्दू के माध्यम से अध्ययन करते हैं, जो मातृभाषा से पूर्णतः अलग होने के कारण ठीक तरह से अध्ययन का अंग नहीं बन सकती। यही कारण है कि इस वर्ष राज्य सरकार के हाईस्कूलों के लदाखक्षेत्र की मैट्रीक कक्षा का परीक्षापरिणाम जनश्रुति के अनुसार अब तक के लदाखी इतिहास में सबसे कम है, सिर्फ 35% शिक्षार्थी उत्तीर्ण हुए। क्षेत्रीय भाषा का कोई महत्त्व नहीं है। कुछ वर्ष पूर्व तक लदाखी भाषा की शिक्षा माध्यमिक स्तर तक बौद्ध छात्रा व छात्रों के लिए अनिवार्य थी, परन्तु अब सिर्फ पाँचवीं कक्षा तक है, वह भी मुस्लिम छात्रों को छोड़कर। नाम मात्र के लिये उसे अनिवार्य रखा गया है। उनके स्थान पर उर्दू जैसी अनजान भाषा को अनिवार्य की गई है। इसका मतलब यह हुआ कि दुनियाँ में सब कुछ जानें, परन्तु लदाखी जन अपने शास्त्र, संस्कृति और भाषा से परिचित न हो सकें।

यह तो बाहरी बात हुई। अब हम यह देखें कि अपनी भाषा के बारे में लदाखी खुद क्या करते हैं। लदाखी समाज में दो वर्ग प्रमुख हैं। मुस्लिम वर्ग और बौद्ध वर्ग। मुस्लिम वर्ग इस बात के हिमायती हैं कि उनकी भाषा उर्दू है, जबकि वह उनकी किसी भी स्थानीय संस्कृति से सम्बन्धित नहीं है और बौद्ध वर्ग नरम दलवाले हैं। अपनी भाषा एवं संस्कृति को नष्ट होता देखकर भी आँख मूँदकर बैठे हुए हैं। एक बार लदाखी भाषा को दसवीं कक्षा तक अनिवार्य करने की बात पर एक मुस्लिम सज्जन ने कहा कि भोटी भाषा हमारे मुस्लिम छात्रों को पढ़ाने के लिए नहीं है, जब कि इसाई बन्धु प्रभु ईसा के उपदेशों को लदाखी भाषा में रूपान्तरित करके उसका जन साधारण में प्रचार कर रहे हैं। उक्त कथन से यह स्पष्ट है कि यदि कोई व्यक्ति हिन्दी पढ़ता है, तब वह हिन्दू है और अंग्रेजी पढ़ने वाले सब क्रिश्चियन। परन्तु नगाड़े के सामने तूती की आवाज कौन सुनता है। आज के सन्दर्भ में शिक्षा का मतलब वह नहीं जो पुराने जमाने में समझा जाता था। शिक्षा न तो किसी को उपदेश के रूप में देना है और न काल्पनिक सुदूर भविष्य को ध्यान में रखकर रहस्यात्मक बातों का व्याख्यान करना है। आज शिक्षा का उद्देश्य छात्रों के वर्तमान का सही निर्माण करना है। शिक्षा सामाजिक प्रक्रिया की एक स्थिति है। इसका मकसद समाज के सभी सदस्यों को संत, महात्मा या लामा बनाना नहीं, अपितु उन्हें आजीवन अपने वर्ण, वर्ग

में रहने के लिए सुयोग्य बनाना है। इस क्षेत्र के मुस्लिम वर्ग के कुछ लोग यह भूल जाते हैं कि उनकी मातृभाषा भोटी है और आज भी कारगिल और बाल्टी आदि क्षेत्रों के पुराने मुस्लिम संस्कृति से सम्बन्धित लोगों द्वारा भोटी भाषा का तिब्बत और लदाखियों से अत्यन्त विशुद्ध उच्चारण होता हुआ सुनकर आश्चर्य होता है। परन्तु कुछ नवीन मुस्लिम लोग उर्दू के बहुत कठिन एवं लम्बे लफ्जों को दैनिक भाषा में इस्तेमाल करने में अपना बड़प्पन मानते हैं। चाहे उसे श्रोता समझें अथवा न समझें। जहाँ भी कोई सभा होती है, वहाँ वे उर्दू एवं अरबी भाषा में अपना वक्तव्य चीख-चीख कर देते हैं। मेरा अनुमान है कि उपस्थित श्रोता में सिर्फ 10 प्रतिशत लोग उसे समझ सकते होंगे। कभी-कभी मुझे इस बात की भी शंका होती है कि वक्ता के समझ में भी वह भाषा आती होगी या नहीं। किन्तु ताली एक हाथ से कभी नहीं बजती है। बौद्ध लोग अपने घरों के देवालय में पड़े धार्मिक एवं दार्शनिक पुस्तकों को खुद पढ़ने की कोशिश न कर लामाओं से पढ़वाते हैं, जिससे उन पवित्र ग्रन्थों में लिखित विशाल ज्ञान भण्डार जन साधारण के लिए गाय के गोबर के समान है। यह ठीक है कि पुराने युग की तरह आज शास्त्रीय ज्ञान के लिये बड़ी संख्या में लोग उत्सुक नहीं होंगे। किन्तु प्रश्न यह है कि आज पश्चिमी देशों में पचासों प्रसिद्ध संस्थाओं द्वारा सैंकड़ों-सैंकड़ों विद्वान् जब भोट भाषा का अनुवाद, अध्ययन एवं अनुसंधान आदि कार्य कर रहे हैं तो किस अपराध के प्रायश्चित्त स्वरूप इन लदाखियों को अपने पूर्वजों के ज्ञान भण्डार से वंचित रहना चाहिए।

जिस प्रकार मुस्लिम बन्धु उर्दू में भाषण देते हैं, उसी प्रकार कुछ नवीन बौद्ध साहित्यकार, नाटककर एवं कवि जन अपनी अमूल्य रचनाओं की भूमिका उपक्रमणिका आदि मूल रचनाओं से पूर्व लिखी जाने वाली बातों को एवं शीर्षकों को अंग्रेजी में छपवाना सम्मान की बात सोचते हैं। परन्तु इस ओर ध्यान नहीं जाता कि इस प्रणाली से उनकी रचना दूषित हो जाती हैं। क्या आपने कभी शेक्सपियर आदि अंग्रेज विद्वानों की रचनाओं का शीर्षक हिन्दी में देते हुए देखा है? क्या अपने उल्लू को कभों दिन दहाड़े चिल्लाते सुना है, यदि हाँ तो उसे अशुभ लक्षण माना जाता है।

लदाख क्षेत्र में वर्तमान शिक्षा नीति को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि यह नीति संस्कृति एवं लोकजीवन को खंड-विखण्ड करने की दिशा में काम कर रही है। इसमें स्थानीय संस्कृति, साहित्य एवं कला का स्थान नहीं के बराबर है। इस भाषा का

महत्त्व इस लिए भी हैं कि यह पूर्वोत्तर सीमान्त प्रदेशों के विशाल ज्ञान भण्डार की कुँजी है। यही नहीं, पिछले 2500 वर्ष की भारतीय विचारधारा की महान सभ्यता जो गौतम बुद्ध से प्रभावित है, इसी भाषा में है। यह महान सम्पत्ति शेष भारत से लुप्त हो जाने पर भी इस सीमा प्रदेश में इस लिए सुरक्षित रह सकी कि इन क्षेत्रों के लोगों ने स्थानीय भाषा के माध्यम से उसे अपनाया और इस भाषा के आधार पर ही उक्त विचारधारा में साहित्य एवं कला को विकसित किया। मैं यह वक्तव्य इसलिए प्रस्तुत करता हूँ कि कुछ लोग कहते हैं कि भारत में बौद्ध धर्म का पूर्णतः पतन हो गया। अगर वे वर्तमान पूर्वोत्तर सीमान्त क्षेत्रों को भारत का क्षेत्र नहीं मानते, तब ठीक है, परन्तु अगर उसे भी भारतीय क्षेत्र की संज्ञा दें तो उनके विचारों में संकीर्णता की पराकाष्ठा होगी।

लदाख के गोनपाओं और पुराने घरों में प्राचीन कलाओं का जो ज्ञान भण्डार पड़ा है, उनकी भी स्थिति दयनीय है। हमारी संस्कृति एवं कला की पुरानी मूर्तियाँ और तांत्रिक नृत्य, आभूषण आदि आज विदेशों के संग्रहालयों की शोभा बढ़ा रहे हैं। उनके ऐसे हालात पर स्थानीय जनता एवं सरकार शीघ्र ध्यान न देकर यदि उनकी सुरक्षा की व्यवस्था नहीं करेंगे तो देश की महान सम्पत्ति सदा के लिए नष्ट हो जाएगी।

संक्षेप में मैं यही कहना चाहूँगा कि भारतीय जनता एवं भारत सरकार को यह नहीं भूलना चाहिए कि भोट भाषाभाषियों की संस्कृति एवं शिक्षा भारतीय संस्कृति एवं शिक्षा के लिए कितनी महत्त्वपूर्ण है। यही नहीं, भारतवर्ष को सुरक्षा की दृष्टि से भी यह विचारणीय मामला है। आज दक्षिण भारतवाले कह रहे हैं कि उन पर हिन्दी थोपी जा रही है और मैं कहता हूँ कि उत्तर भारतवासियों पर उर्दू थोपी जा रही है। काराकोरम से कन्याकुमारी कहने के बजाय जब 'काश्मीर से कन्याकुमारी तक भारत एक हैं'— ये नारे जब सुनते हैं तब हम लदाखीय लोग भारतीय न होकर विदेशी महसूस करते हैं। इस तरह के सौतेले व्यवहार से निपटना होगा।

राज्य सरकार से अनुरोध है कि लदाख क्षेत्र की शिक्षा के माध्यम में मेट्रिक कक्षा तक उनकी क्षेत्रीय भाषा को अनिवार्य करें। जिससे इस क्षेत्र के विद्यार्थी अपनी मूल भाषा को विध्वंस होने से बचा सकें। उन लोगों को दी जाने वाली शिक्षा उनके जीवन और लोकजीवन से सम्बन्धित होना चाहिए और उनकी शैक्षणिक व्यवस्था

में उनकी लोक संस्कृतियों को भी समुचित स्थान मिलना चाहिए। लदाख में स्थित गोनपाओं, बौद्ध विहारों के ही नहीं, अपितु लोगों के घर-घर में स्थित मूर्ति, चित्र, पाण्डुलिपि और प्राचीन दुर्लभ ग्रन्थों की रक्षा होनी चाहिए और उनका पुनरुद्धार होना चाहिए। पुनरुद्धार भी सरकारी संग्रहालयों में एकत्रित करके नहीं, अपितु स्थानीय लोगों की सांस्कृतिक चेतना एवं धार्मिक भावनाओं के अनुरूप होना चाहिए। युगों पुरानी चिकित्साविद्या, ज्योतिषविद्या आदि जो मूल संस्कृति से सम्बन्धित हैं, के भी अध्ययन की व्यवस्था होनी चाहिए।

इन सारी व्यवस्थाओं का भार स्थानीय जनता को ही नहीं, अपितु देश की सभी सम्बन्धित शिक्षासंस्थाओं एवं सरकार को उठाते हुए अध्ययन एवं अनुसंधान की व्यवस्था करनी चाहिए।

यह न केवल भोट भाषा-भाषी जनों के हित में है, अपितु समस्त भारतीयता से प्रेम रखने वाली जनता एवं विद्या-व्यसनी विद्वानों के लिए एक महत्त्वपूर्ण योगदान होगा।

●

क्षमेत श्रुतमेषेत आश्रयेत वनं ततः।
समाधानाय युज्येत भावयेदशुभादिकम्॥
(शिक्षा समुच्चय-२०)

लदाखी भाषा की प्रमुख विशेषताएं और उसका संस्कृत से सम्बन्ध

श्री सत्यदेव कौशिक

लदाखी भाषा एक महत्त्वपूर्ण भाषा है। लदाख भारत का सीमावर्ती क्षेत्र है। इस भाषा को भोटभाषा भी कहा जाता है। भोट नाम तिब्बत का है। अतः इस भाषा का जन्म तिब्बत देश में ही हुआ। सातवीं शताब्दी में सम्राट् स्रोङ् चन गम पो तिब्बत पर राज्य करते थे। उस समय तिब्बत की न कोई भाषा थी और न कोई लिपि। उस समय तिब्बत में बौद्ध धर्म का उदय भी नहीं हुआ था। तब सम्राट् ने बिना लिपि के राज्य संचालन करना कठिन समझा और देशवासियों को बौद्ध धर्म के अभाव में अज्ञान रूपी सागर में डूबते हुए देखा। सम्राट् स्रोंग चन गम पो ने थोनमी सम्भोट सहित 16 परिचारकों को विद्या-अध्ययार्थ आर्यदेश भारत भेजा।

सभी ने आचार्य देवसिह (सिंह घोष) और ब्राह्मण लिपिकार से संस्कृत भाषा तथा बौद्ध दर्शन एवं साहित्य का अध्ययन किया। कहा जाता है कि मैदानी असहनीय गर्मी के कारण थोनमी सम्भोट के सभी साथी मृत्यु को प्राप्त हो गये, केवल थोनमी सम्भोट ही बचा था। थोन्मी सम्भोट ने पठित शास्त्रों को कण्ठाग्र कर लिया। अध्ययन समाप्त कर लेने पर वह तिब्बत की राजधानी ल्हासा पहुँचा। वहाँ सम्राट् की आज्ञा पाकर भोट भाषा की लिपि बनायी तथा व्याकरण लिखा। इसके अतिरिक्त उसने अनेक ग्रन्थ लिखे और कई ग्रन्थों का अनुवाद भी किया। इसलिए थोनमी सम्भोट को भोट भाषा एवं साहित्य का जनक माना जाता है।

संस्कृत के आधार पर थोनमी सम्भोट ने भोट भाषा की वर्णमाला बनायी। और संस्कृत भाषा के 16 स्वरों में से इ, उ, ए और ओ ये चार स्वर भोट भाषा में निर्धारित किए। संस्कृत के 34 व्यञ्जनों में से वर्ग के चतुर्थ व्यंजन, मूर्धन्य ष और क्ष सहित 11 वर्ण भोटवासियों की सुविधानुसार सम्मिलित नहीं किये और इन वर्णों के स्थान

बुद्धिज्म इन इण्डिया एण्ड एब्राड—प्रो० अनुकुल चन्द वनर्जे, पृ० 224 प्राचीन तिब्बती ग्रंथकारों के मतानुसार तिब्बती पाठमाला—टुल्कु, टुन्डा, भूमिका।

पर च, छ, ज, श, अ और आ सहित सात वर्ण सम्मिलित किये। इस प्रकार भोट भाषा में 30 व्यञ्जन निर्धारित किये गये। इस प्रकार भोट भाषा में 32 वर्ण हैं।

भोट भाषा की लिपि, अधिकांश लेखकों के अनुसार स्वजा लिपि के आधार पर निधारित की गयी, लेकिन इतिहासकार पुन्तोल और वैयाकरण सिन्तु आदि के मतानुसार यह नागरी लिपि के आधार पर बनायी गयी थी। कुछ भी हो, यह प्रत्यक्ष है कि यह भारत की गुप्तकालीन लिपियों से मिलती-जुलती है।

भोट भाषा में जैसा कि ऊपर कहा गया है कि सात वर्णों को संस्कृत भाषा से भिन्न सम्मिलित किया गया, क्योंकि इन वर्णों का उच्चारण भोट देशवासी सुगमता से कर सकते हैं, जबकि 11 वर्ण वर्ग के चतुर्थ वर्ण, ष और क्ष के उच्चारण में आज भी उन्हें कठिनाई होती है। हिन्दी और संस्कृत का सम्यक् ज्ञान होने पर आज भी भोट देशवासी शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाते, यथा—

हिन्दी	भोटदेशवासियों द्वारा उच्चारित
घर	गर
झण्डा	जंदा
घोडा	गोरा
भोट	बोट

उपयुंक्त वर्णों के अशुद्ध उच्चारण के लिए वे दोषी नहीं हैं, क्योंकि भोट भाषा में इन वर्णों के लिए कोई स्थान नहीं दिया गया। भोट भाषा के 30 व्यञ्जन है। जिनमें से 16 सार्थक व्यञ्जन हैं।

ཁ	ང	ཆ	ཇ	ཉ	ཏ	ཐ	པ	བ	མ	ཙ	ཡ	ར
मुँह	मैं	जोडा	चाय	मछली	अब	तो	पिता	गाय	माता	लोमड़ी	अयुग्म	बकरी

ལ	ཤ	ས
दर्रा	मॉस	भूमि।

जहाँ तक मेरा ज्ञान है, भारतीय किसी भी भाषा में इतने सार्थक व्यञ्जन नहीं हैं।

भोटभाषा में 5 पूर्वाक्षर हैं—

ག་ད་བ་མ་འ། इन पूर्वाक्षरों का इस भाषा में बड़ा महत्त्व है। इन पूर्वाक्षरों

का उच्चारण नहीं किया जाता। पूर्वाक्षर के अनुसार शब्दार्थ बदल जाता है। मैने यहाँ कुछ ऐसे उदाहरण दिये हैं—

शब्द	अर्थ	पूर्वाक्षर युक्त शब्द	अर्थ
སྡུག་	दुःख	གདུག་	क्रूर
ཆུ་	जल	མཆུ་	ओष्ठ
བུ་	पुत्र	འབུ	कृमि
དག་	दो	བདག་	मैं
སྒོ་	दरवाजा	མགོ་	सिर
བུ་	पुत्र	དབུ་	सिर (शिष्ट भाषा)

इसी प्रकार अन्य शब्द भी भोट भाषा में मिलते हैं। पूर्वाक्षर लगने पर शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है।

आदरसूचक शब्दों का इस भाषा में बाहुल्य है। जो इस भाषा की मुख्य विशेषता है। भोटभाषा में शिष्ट लोगों की भाषा तथा रचना सर्वदा भिन्न होती है। भोटवासी प्रथम पुरुष को छोड़कर मध्यम तथा उत्तम पुरुष के लिए सदा आदर-सूचक शब्दों का व्यवहार करते हैं। जैसे :—

साधारण भाषा	शिष्टभाषा	शब्दार्थ
མིག་	སྤྱན་	आँख
ཁ་	ཞལ་	मुँह
སོ་	ཚེམས་	दाँत
ཕ་	ཡབ་	पिता
མ་	ཡུམ་	माता
ཆུང་མ་	སྐུམ་	पत्नी
རྐང་པ་	ཞབས་	पैर

शरीरसम्बन्धी आदरसूचक शब्द :—

साधारण भाषा	शिष्टभाषा	शब्दार्थ
ལུས་	སྐུ་ལུས་	शरीर
ཤ་	སྐུ་ཤ་	माँस
མདོག་	སྐུ་མདོག་	रंगरूप
ཚེ་	སྐུ་ཚེ་	आयु

वाणी सम्बन्धी आदर सूचक शब्द :—

साधारणभाषा	शिष्टभाषा	शब्दार्थ
སྐད་	གསུང་སྐད་	भाषा
གཞས་	གསུང་གཞས	गाना
མགུར་	གསུང་མགུར་	गीत
བཤད་པ་	གསུང་བཤད་	भाषण

यही नहीं रोटी, पत्र, पुस्तक, नमक आदि दैनिक जीवन में उपभोग्य वस्तुओं के लिए भी आदरसूचक शब्दों का भोटभाषा में प्रयोग मिलता है। केवल शब्द ही आदरसूचक नहीं है, बल्कि क्रियाएँ भी आदरसूचक है।

साधारणभाषा	शिष्टभाषा	अर्थ
ཉན་པ་	གསན་པ་	सुनना
ངུ་བ་	ཤུམས་པ་	रोना
ཟ་བ་	བཞེས་པ་	खाना

भोटभाषा का संस्कृत से सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को दर्शाने के लिए मैंने भोटभाषा और संस्कृत के समानार्थक शब्दों के उदाहरण दिये हैं, जो निम्न-लिखित हैं।

भाषा	शब्द	उच्चारण	अर्थ
भोटभाषा	ཏ་ལ་	ताला	ताढ नामक वृक्ष
संस्कृत भाषा	ताल	तालः	ताड नामक वृक्ष
भोटभाषा	ཁ་	ख	आकाश
संस्कृत	ख	खम्	,,
भोट	ཧ་ལ་	हाला	विष
संस्कृत	हलाहल	हलाहलः	घातक विष
भोट	སེང་གེ་	सेङ् गे	शेर
संस्कृत	सिंह	सिंहः	,,
भोट	ཨ་མ་	आमा	माता
संस्कृत	अम्बा	अम्बा	माता
भोट	གུ་ཤ་	कुश	कुश नामक घास
संस्कृत	कुश	कुशः	,,
भोट	གུར་གུམ་	कुंकुम	केसर
संस्कृत	कुङ्कुम	कुङ्कुमम्	,,
भोट	པདྨ་	पद्म	कमल
संस्कृत	पद्म	पद्मम्	,,
भोट	ཛི་ར	जीरा	जीरा
संस्कृत	जीर	जीरः	जीरा
भोट	སྡུག་	दुग	दुःख
संस्कृत	दुःख	दुःखम्	,,
भोट	ཏོ་ལ་	तोला	तोला
संस्कृत	तोला	तोलः	,,

अत: उपर्युक्त भोटभाषा और संस्कृत के शब्दों में अर्थसाम्य है। अतः यह कहा जा सकता हैं कि भोटभाषा के निर्माण का आधार संस्कृत भाषा ही रही होगी।

भाषा संस्कृति की सुरक्षा और विकाश का सशक्त माध्यम होती है। तिब्बत सीमावर्ती क्षेत्र होने के कारण यहाँ की भाषा भी भोटभाषा है। यह भाषा लदाखियों के संचित ज्ञान का कोश है और इनकी पवित्र धर्म भाषा भी है। भोटभाषा विद्यालय एवं महाविद्यालय में अनिवार्य न होने के कारण यहाँ की शिक्षा प्रणाली में कोई स्थान नहीं रखती, जबकि उर्दू भाषा अनिवार्य है। भोटभाषा का साहित्यिक ज्ञान न होने से दुर्लभ ग्रन्थ केवल पूजा की वस्तु बन गये हैं।

भोटभाषा कोई विदेशी भाषा नहीं है, अपितु हजारों मील लम्बे भारतीय सीमान्त की सम्पर्क भाषा है, जिसमें लदाख, सिक्किम लाहुल-स्पीति, भूटान आदि आते है। यहाँ के निवासियों की यह मातृभाषा है। जब यहाँ के निवासी इस भाषा के व्याकरण और साहित्य से परिचित होने लगेंगे तो अवश्य ही उनमें से कुछ जिज्ञासु भोटशास्त्रों के सम्पादन, अनुवाद और अनुसन्धान की ओर प्रवृत होंगे। इस के अतिरिक्त इस भाषा का ध्वन्यात्मक अध्ययन भी होना चाहिए। ध्वन्यात्मक अध्ययन होने पर लदाख के इतिहास सम्बन्धी विवादास्पद गुत्थियाँ भी सुलझ जाएँगी, साथ ही लदाख के इतिहास की प्राचीनता भी स्वतः सिद्ध हो जाएगी।

●

वृत्तस्थः श्रुतचिन्तादान् भावनायां प्रयुज्यते।
नामोभयार्थविषया श्रुतमय्यादिका धियः॥
(अभिधर्मकोश ६ ः ५।)

ये धर्मा हेतुप्रभवा हेतुं तेषां तथागतो ह्यवदत् ।
तेषां च यो निरोध एवंवादी महाश्रमणः ॥

लदाख-प्रभा—३

लदाख में बौद्ध-विद्याओं का ऐतिहासिक एवं दार्शनिक सन्दर्भ

अंग्रेजी निबन्ध

शिरसि विनिहितोच्चसत्त्वभारः

शिथिलगतिर्न हि शोभतेऽग्रसत्त्वः ।

स्वपरविविधबन्धनातिबद्धः

शतगुणमुत्सहमर्हति प्रकर्तुम् ॥

(महायानसूत्रालंकार। ४ : २८)

PRESENT STATE OF FOUR MAJOR TIBETAN BUDDHIST ORDERS IN LADAKH

NAWANG TSERING

Even today, Ladakhi is the living repository of Tibetan religious and cultural life. For this religious and cultural legacy, the Ladakhis owe much to their successive religious kings who patronized Buddhism and took great pains to propagate the Dharma in Ladakh through sending number of novices to her neighbouring countries to study the Dharma. In fact, the poverty, hostile climate and an inaccessibility of this region caused a boon in disguise as no foreign missionaries or invaders could entrenched firmly and further influenced the Buddhist way of life of this land. The major Tibetan sects and sub-sects have continued to flourish in Ladakh uninterruptedly since their introduction from Tibet.

Despite the apparent distinction among the four Orders of Tibetan Buddhism, the teachings of respective schools are based on the teachings of the Buddha Shakyamuni and no major differences can be sited as far as the rituals, practices, the moral teachings, the four cardinal doctrine and the study and practice of Sutra and Tantra are concerned.

Concerning the names of the four sects, rNying-ma-pa means ancient ones and this name derives from the early period ef its development. The names of Sa-skya-pa, 'Brug-pa, and dge-ldan-pa Orders have been named after their respective places of founding. skar-ma-bka-brgyud etc. are named after their respective teachers.

Throughout the ages, the Ladakhis have been free from sectarian biases and rather, they have extended whole hearted supports to all the Tibetan rencwned teachers whenever they visited to Ladakh to establish and propagate their own lineages. Although Mahayana form of Tibetan Buddhism continues to flourish in Bhutan and other Himalayan borderland, yet Ladakh is probably only such region in the entire Himalayas, wherel all the four Tibetan major sects and sub-sects have firmly established and developed as seat of learnings of all the distinctive sects. A few incidents of conflict and even small clashes took place between different sects in Tibet and certain other areas however, fortunately, such foolish incidents worth the name are not known among the Ladakhis. A brief and general accounts of founding of the Tibetan Buddhist Sects in given in the following order to show how, rNying-ma-pa, Sa-skya-pa, dka'-brgud-pa and dGe-lugs-pa Orders have come into existence in proper Ladakh.

dKa'-gdamas-pa Order

The great Indian pandit, Dipamkara Atisha of Vikramshila introduced aKa'-gdams-pa Order in Tibet. He stayed in mtho-gling Monastery (Western Tibet) and preached the dKa'-gdams-pa mode of Order in Tibet. His Tibtan disciple Brom-ston rGyal-Ba'i'gyung-gnas carried the message of his illustrious teacher to Western and central Tibet. During this time, several monks from Ladakh definitely went to mTho-gling to listen the discourses of Jo-vo-rje and thus the dKa'-gdams-pa mode of teaching must have been the earliest order transmitted to Ladakh, sometime in 11th century A. D. The great Lo-tsa-va Rin-chen bzang-po of mNga'-ris received teaching from Jo-vo-rje and set an example of true follower of dKa'-gdams-pa Order in mNga'-ris'Kor-gsum. Some scholars are of opinion that the

monasteries of Lama Yuru and Likir in Ladakh were adherent of dKa'-gdams-pa Order but later, these monasteries were converted either into dGe-lugs-pa or dKa'-brgyud-pa sects. Before dKa'-gdams-pa, a moral degeneretion took place in the Sangha of Tibet. The exponent of this sect dPal-ldan Atisha introduced a strict code and conduct of vinaya rules for the Sangha of Tibet. However, life, dKa'-gdams-pa lost its populairity in Tibet and Western Himalayas.

rNying-ma-pa Order

Of the existing four major Tibetan Buddhist sects in Ladakh, the rNying-ma-pa is the oldest order that was introduced into Tibet in the 9th century A. D. through the Mahasidha Padmasombhava, the famous saint scholar of Nalanda Mahavira. His Dharma mission in Tibet was so successful that his teaching spread quickly and firmly entrenched there. The Tzang province became the stronghold of rNying-ma-pa and its enfluence swept the entire area of Western Himalayas. However, rNying-ma-pa suffered a setback in Ladakh during the Mongol invasion in the seventeenth century led by Sogloo dGe-ldan Tse-dbang. Another major reason for weakening of Sangha organisation of this sect in Ladakh was due to the failure to keep the code of the vinaya-discipline among the rNying-ma-pa order of monks. Number of lazy and ignorant persons In the guise of tantric sidhas grew overnight among the older sect of Tibetan Buddhism. These ignorance men did possess not even the knowledge of basic teachings of the Buddha not to speak of tantric teachings, the cream of all the Buddhist sciences. As a result, large section of society was weary of their abnominable state of conduct and their indiscriminate misuse of tantrice teaching threatened the very existence of Buddhism as religion in Tibet as was happened in

India. These charlatents did even great disservice to Padma sambhava when they claimed that Padma sambhava was the greater teacher than the Buddha himself as the former sanctioned drinking for the Sidhas.

Consequently, the society rejected these immoral men and lost the popularity of rNying-ma-pa order. Inspite of these facts, the rituals and ceremonies of this order remained intact in the daily life of Ladakhi people. Worship of Padmasambhava has never decreased. A monthly tse-bchu, elaborate offerings on Padma sambhava's birth day and reading of Padma kathang, a bigraphy of the great guru continues in every corner of Ladakh since long. All the monasteries, irrespective of different sects have enshrined huge statue of guru Padma sambhava. Drag-thag dgon-pa, the only rNying-ma-pa order monastary in Ladakh acts as the feat of Nying–ma–pa learning in Ladakh. This monastery was built by a scholar monk of Kathang monastery in Kham province who visited to Ladakh during the reigon of king Tse–dbang Nam–rGal 18th century A. D. It is highly probable that many of rNying–ma–pa monasteries in Ladakh might have converted either into dKa'–brgyud–pa or dGe–lugs-pa order. However, the omnipresent worship of Padmasambhava in Ladakh and adjoining regions shows the deep influence of the rNying–ma–pa order of Tibetan Buddhism in this part of region.

dKa'–brgyud-Pa Order

According to the Tibetan tradition, the originators of the bKa'-brgyud Order School were Naropa and his spiritual master Tilipa. The teaching were first introduced into Tibet by Marpa (1012–1096), who orally transmitted the "pitch instructions" of Naropa's esoteric teachings to his spiritual son, Mila-Raspa (1040–1123). rJe Mila in

turn, handed down the same teachings to sGampo-pa. After sGampo, the bKa'-brgyud order was divided into several sects and sub-sects. Though some of the lesser sects seem to have been extinguished, the Ladakhis and other Himalayan Buddhists have kept alive the traditions of the Lho-drug and Bri-gung bKa'-brgyud. In spite of such lines of division, there are no essential differences in doctrinal teaching among the bKa'-brgyud-pa sects. Their main differences consist in their traditional adherence to the different lineage and lamas and particular tutelary deities.

The order of the 'Brug-pa school is the dominant sect both in Bhutan and in Ladakh. rGod-tsang-pa mGon-bo-dpal (1189-1258) of Lho-brag was one of the prominent 'Brug-pa saints who visited 'Lho-stod' (Southen Land), the old kingdom of the Westen Himalayas. Even today, several caves and hermitages are to be found in central Ladakh and Lahul which are named after rGod-tsangpa, who sanctified these places with his presence high up in the mountains about 3 km. South-West to Hemis-dGonpa, there are today more that a dozen hermit monks who follow the tradition of this great mystic at a place called God-tsang. The position of the 'Brug pa order was further strenthened by the visit to Ladakh of another major teacher sTag-tsang Raspa, who visited here in 1567 at the invitation of the Ladakhi king 'Jam-dbyang rHam-rgyal (1594). Later through the help of king Senge-rNam-gyal, sTag-tsang Rispa was able to build Hemis, Chemde and Wanla monasteries in Ladakh.

Lama sTag-tsang organised a powerful Sangha at Hemis and Chemde and requested religious Ladakhi parents to send their sons to these monasteries. This was a golden period of Ladakhi history when the Tiher like Lama and the Lion king (Senge-rNamgyal)

provided leadership in the twin fields of spiritual development and material prosperity. Senge–rNamgyal himself had several multi-storyed silver and copper stupas installed as well as statues of Buddha, some of colossal dimension. He also had the bKa'–gyur collection and many other books embellished with gold, silver and copper.

The Bri-gung-bKa'–brgyud is yet another sub-sect of the bKa'–brgyud school which has a sizable following in Ladakh. sKyob–ba'–Jig–brten mGonpo (1100–1217) was founder of this sub-sect in Tibet. Lama Yuru, Phyang, Shachukul and Shang monasteries belong to 'Bri–gung sect in Ladakh.

Sa–sKya–pa order

Like the rNying–mapa order, Sa–skya–pa order too has small following among the four major sects in Ladakh. Khon–kon rGyal–po (1034–1102) was the founder of the Sa–skya–pa order in Tibet. He founded Pandu–bhimi Monastery in Tsang province of Tibet and became the centre of learning of this sect. The visit of several Sa–skya–pa scholar to China and Mongolia are well known. The Sa–skya–pa scholar Trung–pa rDor-rje who came to Ladakh in the 16th century to spread the Dharma, founded Matto Monastery, the only Sa–skya–pa establishment in Ladakh. The Ladakhi king 'Jam–dbyang rNam–rgyal patronised this order in the early part of his life, but later he favoured bKa'–brgyud–pa sect. In the absence of king's patro-age, the Sa–skya–pa order suffered a setback and their presence confi-ned to Matto village and monastery in Ladakh.

dGe–lugs–pa Order

dGe–lugs–pa is the last order to develop in Tibet. rJe Tzang–kha-pa, the founder of dGa'–ldan Monastery was the originator of this reformed sect. He studied the Dharma with scholar saints of

rNying–ma–pa, Sa–skya–pa and other orders and had originally no intention of forming a separate sect. In his time, the tantric cult had become popular and many persons in the garb of tantric siddhas brought immorality and indiscipline in the Sangha of Tibet. rJe-Tzong–kha–pa stressed a fusion of the ascetic discipline of the Sravakayana, the morality of Bodhisattvayana and the Yogic techniques of Vajrayana. This great reformer revitalized the vinaya code of conduct for transmitted by the Sarvastivadin school. He introduced Pratimoksha vows and the three months Varshavas in the monasteries according to the vinaya. rJe Tzong–kha–pa's great disciplines, mKhas–grub–rje, rGyal–tsab–rie and rie dGe'–dun–grub propagated this reformed sect of dGe–lugs–pa order in Tibet.

The Ladags rGyal–rabs' Chemed Ster mentions that the rJe Tzong–kha–pa himself sent two monks to Ladakh with gifts for the Ring Drags–pa 'Bum–lde. The king received these two monks very warmly and instantly ordered the renovation of the old Spithuk Monastery. Grags–pa 'Bum–lde formed the Sangha in strict accordance with the Pratimoksha vows of the dGe–lugs–pa. sTod–She–rab bZang–po, another disciple of rJe Tzong–kha–pa founded sTag–mo–Monastery and organized the Sangha. He also arranged a place for Pratimoksha recitations and the study of Lam–rim, the famous work of rJe Tzong–kha–pa. As a successful teacher, he attracted large number of followers from all over Ladakh. One of bZang–po's disciples, Lama Byang-sems founded bDe–skyid monastery in Nubra and dKyil monastery in Spiti and several other dGe–lugs monasteries in Zangskar. The dGe–lugs–pa flourished in Ladakh as it did in Tibet because of the excellent discipline and organisation of the Sangha. In fact, the invasion of Mongol to Ladakh under Sogpo dGa'–ldan Tsewang received great encouragement to this sect in Ladakh. The last monasteries

built in Ladakh were Ri–rdzong and bSam–bstap–gling, both dGe–lugs–pa. These monastic communities represent, as far as vinaya is concerned, an ideal Sangha, whose members have absolutely no private property. Study, meditation are the main features of the daily routine of Ri–rdzong and bSam–sten-gling monasteries.

Buddhism uprooted in Tibet for the second time. In such cricumstances, the Ladakhis have realized their special responsibility to preserve and strengthen the religious and cultural life of Tibetan Buddhism in Ladakh. Ladakh occupied a unique position as regarding maintainance of and preservation of Tibetan Buddhist sects. A course of History may changed or changing in Tibet and the 3rd spread of Buddha Dharma may take place again via Ladakh to Tibet as the 2nd spread of Buddhism had taken place from via Khan and Western Himalayas into Tibet between 10 to 11 centuries.

LADAKH AND THE CENTRAL ASIAN TRADE UNDER MAHARAJA PRATAP SINGH

DR. G. S. GAHABRA

Writing about Ladakh, Cowley Lambert remarked in 1877 : "The prevailing features of this country are bare rocky mountains, bare gravel slopes and bare sandy plains, with not a green thing, not a tree, not a bush, not a blade of grass, unless one accepts as green a grey kind of prickly sage which crops up here and there."[1]

The Ladakh district in the time of Maharaja Pratap Singh, which consisted of the three tehsils of Ladakh, Skardu and Kargil and which occupied the largest area in the Jammu and Kashmir State,[2] did not have many trade resources to boast of. An inferior quality of salt was found on the banks of the Iso-Kar Lake, which was not much in demand,[3] though sometime it was exported to Baltistan in exchange for *Khubani*, the small apricot, Gold was found in the sands of the Indus and the Shayok river in the Ladakh Tehsil. The sands of the Bashahar river in the Skardu Tehsil, and those along the left bank of the Dras-Suru in the Kargil Tehsil, also contained traces of gold. But the gold washing was not much economical, though the State Government did try to encourage it through reduction of licence fee and other such measures[4]. White marble was found at certain places like the Mughlib Valley and near Braripura, but probably it was only localised, there being no references to its trade value.[5] Serpenline or Zehr–Mohra–a poison detector was found in the Shigar mines in Ladakh and at certain other places, but not much exploited.[6] Lime-stone also occupied on the banks of the Indus, at the two ends of the

Pangkong lake and in the Photola and Hacu passes,[7] but was not made much use of.

The contemporary reports give details of the minerals, flora and fauna of the district but none of them was of much value, so far as the external trade was concerned. The external trade in the home produce in fact was confined to four natural productions–wool, borax, sulphur and dried fruits, of which only the first was of any co-sequence, and even that was not of sufficient importance to deserve more than a slight notice.[8]

The common domestic goat of Ladakh was shawl goat with its soft, curly and glossy bleece which could make exceedingly warm and comfortable lining for cloaks of the wealthy. The wool separated from the coarcer hair was exported to Kashmir, Punjab, Nepal etc. The hair was used to manufacture blankets, ropes etc. Borate of sodium of borax, deposited with sulphur, was found by the hot spring of the Puga Valley,[10] and exported to other parts of India, but heavy cost of transportations made it difficult to complete with cheaper supplies from else where.

The most important source of wealth in Ladakh in fact was only the carrying trade, or transport of foreign goods from one country to another through its own territories. This trade it owed entirely do its centrical situation between Kashmir and India on the South, and the Chinese provinces of Yarkand, Kotan and Kashgar on the North.[11]

Though river Indua was the most striking feature of the Ladakh geography, flowing through the district, lying away from the regular trade routes, it was not much useful for trade purposes.[12] On the

other hand, absence of proper roads and because of the tortuous hilly paths, among the various modes of transport, Man or Coolie was always an important one. In the beginning of the present century, the State Government organised a system known as Res. Under it each village had during thə summer months to provide a certain number of Respas or Coolies for transport on the Leh road. The Coolies were usually engaged by stage, and at the end of every march they expected a bakshesh (a tip) if they had done their job well. This was besides the regular remuneration the rates of which were fixed. These coolies could carry from two to three maunds load each.

Besides, coolies, ponies also came in for use, though not in large numbers. Not less than half of those which were used, however came from Yarkand, and were employed in the Central Asian trade. The Ladakh ponies though small in size, were hardly, and could carry $2\frac{1}{2}$ maunds load along with the mountanious routes for a stage of 10 to 12 miles.[14] The Government encouraged the Ladakhis to maintain a proper number of ponies on the Treaty High Road, by advancing loans.[15]

The best means of transport, however, was Yak a sure footed animal which could easily carry a 3 maunds load.[16] Another mode of transport was the sheep. Alexander Cuningham who wrote his account in 1853, thus remarked. "I have seen a single floak of six hundred sheep, entirely laden with wool; and in one day I have counted as many as from five to six thousand sheep laden with shawl wool and common wool, borax and sulphur, and quantitites of dried, apricot, all making their way to the hill provinces of the south west."

The main route for the Central Asian trade was along the route over the 16,000 foot Khardung Pass, known as the Khardung La

route, which was designated the Teeady High Road, after the Anglo-Kashmir Treaty signed in 1870,[18] an account of which will follow. There were 19 stages on this road from Leh to Srinagar, a distance of 259 miles, where transport and and other supplies could be procured.[19] The road however, was only a fair weather bridle track best travelled only from the middle of June to middle of Nov. At certain points it was dangerous even for ponies.[20]

The Central Asian trade in Ladakh, was mainly in the hands of the non-Ladakhis, the Ladakhis themselves helping only in its transit. Cowley Lambert, while visiting Leh in 1877, thus wrote : "As werode uP........through a crowd of people, we were astonished to see such splendid fellows as most of the Yarkand merchants are, Fare, tall men wearing a long, bright coloured, role line with sheepshin, an under-tunic girt at the waist, wide trousers, and long untaned leather riding boots-of French manufacture, I should say by the appearace. On their hands they generally carried a heavy riding whip......These Yarkandis were many of them ruddy and fair bearded as Englishmen"[21] Leh had been the hub of the north Himalayan trade, and I do Central Asian trade and cultural relations through Ladakh existed long before it was occupied by Gulab Singh, Lahoure feudatery, in 1834,[22] before the Sikh occupation of Ladakh a commercial treaty existed between this country and Tibet, and it found its mention in the Tibetan copy of the treaty between Tibet and Gulab Singh signed in 1842, though the date on which it had been signed, is not mentioned. Under this treaty, Ladakh was to make necessary arrangement to supply transport and other facilities to the Tibetan traders, and the Tibetan authorities would do the same in return for the Ladakhi : traders. A trade mission was to go every year from Leh to Lhasa,

and from Lhasa to Leh.[23] Under this system the ruler of Leh used to send an agent to Lhasa every third year with an advance of Rs. 1,920, the carriage required for the merchandise being obtained through forced labour. The agent after trading had to bring back tea worth Rs. 3840.[24]

Ladakh, as we have seen, was occupied by Gulab Singh in 1834, and he signed a commercial tready with Tibet in 1842 under which trade between the two countries continued as before. Later on when the Independent Dogra rule was established in the J&K State, the commercial transactions continued as before, and we find that Maharaja Pratap Singh continued to follow the prectice of exchanging trade missions every third year. He now advanced a sum of Rs. 9,000 to the agent in return for which he was expected to bring Rs. 18,000 worth goods from Tibet.[25]

In 1893, we learn, Maharaja Pratan Singh's Government levied a tax of three annas and theree pies per pony on the traders who obtained these animals from the State contractors for crossing the Khardung Pass. The tax was discontinued in 1895, and the contractors were now expected to make their own arrangement for procuring the animals.[26] Since the the traders found it difficult to procure the transport animals without the state help, the tax was re-imposed the same year. Their income to the State on account of this tax was slightly more than Rs. 434, which declined to mere Rs. 213 in 1912-13, on account of which it was abolished in that year.[27]

Besides, the above, Maharaja Pratap Singh's Government took from the Champas or the Tartar shepherds coming from Chang-Thang, a sheep and a sheep's load for every hundred sheep in a caravan.

Besides, the owner of every caravan, irrespective of its size gave a seer of wool, ten seers of salt and one sheep to the government.

It must be quoted that trade between the Jammu and Kashmir State and Central Asia during the time of Maharaja Pratap Singh was almost entirely an import trade, the items registered under export to Central Asia being only rations and personal luggage which the Central Asian traders took on their way back home. The total export trade registered in 1907–08 thus was worth only Rs. 392. And this rose to Rs. 8,988 in 1923–24.[29]

The imports from central Asia consisted mainly of raw wool, woolen expecially namdas, charas, tea (Lhasa), silver, fruits. The Chinese provinces of Ruthok and Chang Thang supplied the shawl wool, which was manufactured into shawls in Kashmir and exported to India and elsewhere. Large number of namdas came from Yarkand, and after being embroidered in Kashmir went to India and abroad,[31] Precious stones like jade, agates, carnelian came from Yarkand.[32] Various customs and excise duties were imposed by the State government, which were improved upon from time to time.

The total import trade of the State from Central Asia in 1907–08 was worth of Rs. 81,071, which rose in 1920–21 to Rs. 4,25,410 but declined in 1925–26 to Rs. 3,09,139. The fluctuations were due to various causes like rising and declining fortunes of the Kashmir shawl industry; wars during which namdas, wool, tea, charas found an easier market in Russia; political disturbances in the Central Asia etc.[34]

CENTRAL ASIAN TRADE AND THE BRITISH

An interesting feature of the Central Asian trade through Ladakh was the development of the British interests in it. The genesis

of this interest lay in the unofficial visit to Gartok in Western Tibet in 1812, of William Moorcroft, Superintendent of East India Company's stud. He visited Leh again in 1819 and then 1821, and while there it occurred to him the Russian march through Kashgarh across the Karakoram via Kashmir from where co-operation of Ranjit Singh of Punjab what the time was demanding tribute from Ladakh, was possible for the invassion of the British territories. His fears were not appreciated by the British authorities at Calcutta, yet before his death in 1825 he had been able to bring both Ladakh and Eastern Turkistan within the scope of the British displomacy. In 1834 Gulab Singh occupied Ladakh, but when in 1841 he wanted to go beyond, the British expressed their concern. After the first Anglo-Sikh War, the Treaty of Amritsar signed in 1846 confered the Kashmir state on Gulab Singh.

Under this treaty the demarcation of the boundary line between Ladakh and eastern Turkistan became a British responsibility. Boundary commissions of 1846 and 1847 failed to bring clear understanding between Culab Singh and the Chinese, and no "formal frontier agreement was ever signed, and today's Sino-Indian dispute is one result."[36] Still through these Commissions sufficient information of commercial and political nature was collected.

In 1861 R. H. Davies ? Secretary to the Government of Punjab prepared a comprehensive report detailing the tremendous Possbilities of trade with Eastern Turkistan through Ladakh, which would also remove the possibilities, if any, of danger of a Russian march from that side. There were, however, physical difficulties of long distances, high mountainous paths, tribal raids, but most of all the Kashmir government's prohibitive duties and oppression of the merchants at Leh. Davie's report opened the way for the British authorities to take

more keen interest in the matters. In the meanwhile after expelling the Chinese, an exile, Yakub Beg having consolidated his power in Eastern Turkistan once again, commercial implications with a kingdom several times the size of Britain that he was able to carve out, were realized. These areas though fertile and rickly populated, depended on all manufactures on foreign imports. As much, it was understand that "he demonds in all these countries for Indian products, and English manufactures is common." Yet more so when Yakub Bed reciprocated fully the British enthusiasm and offered all co-operation.

A necessary step towards the development of this trade, however, was the appointment of a British commercial agent at Leh to check extortions. It also begin to be alleged that the Kashmir government had been levying tribute on the British subjects at Lahul. Sir John Lawrence, the then Governor-General of India was averse to the appointment of any agent, which he was sure would antagonise the feelings of the Kashmir ruler who had been consistently loyal and well-disposed towards the British. But when the subordinate officals presisted in this course, he agreed to a purely temporary arrangment and said probably medial man at Leh would be an easier pill for the Maharaja to swallow. Dr. Henry Caylay was therefore appointed at Leh for one season only in 1867. No sooner, however, Cayel arrived at Leh, Than he started removing venal official and reducing trade duties on his own. The Maharaja of Kashmir had been protestations now proved of no avails, and the agent who had been appointed only for one season was now a permanent features in 1869.[38]

"In the meanwhile, from 1863, a series of remarkable men, using false or abbreviated names, in disguise, and employing such ingenious device as hallow prayers wheels and decimatised rosaries to help

with the counting of paces, penetrated all over the northern frontiers. The mas of information which they brought back was edited and then laid before the Government.[34] Sir John Lawrance opposed any such exploration on the sly in the dangerous areas, forbade the Government officials from engaging themselves into such activities and even compelled one to resign on this account. He could not, however, stop the movements of the private individuals. A tea planter Robert Saw and a subaltern William Hayward peneterated into Kashgar in 1868, and on the basis of the information collected by them the Punjab government insisted in 1868 that native officer to report the interest of the Indian traders should be appointed at Kashgar. Sir, Lawerance rejected the proposal argu:ng that any such contracts with Yakub Beg might encourage him to see British help against any Russian aggression. Later in the year however. The persistent demand for such an appointment was granted which cleared the way for Lord Mayo in 1870 to open diplomatic relation with eastern Turkistan.

Lawrence had followed a policy of caution towards central Asia, but his successor, Lord Mayo was a different man. While the former was satisfied with a cushion of only one layer of influened states and belived the best security of India lay besides in the contontment of the Indian Princes and people for whose welfare the British should work, the latter wanted the cushion too stitute two layers, i. e. she wanted to go to the north of Afghanistan and press the Eastern and Western Turkistan into that cushion which Lawrence had thought unnecessary. That Mayo stretched his imagination too far beyond the Indian frontier, proved from the fact that it snapped. In the Western Turkistan Mayo wanted to spread British political influence through commerce, and persuaded his friend, the British Foreign Secretary Lord Clarent

this purpose. But this mission completly flopped, as it alarmed the Russians, and then to send a mission under Douglas Forsyth to the Russian, capital for this purpose. But this mission completely flopped as it alarmed the Russians and the protective tarrif of Russia in the Western Turkistan that Forsyth had gone to break became instead permanent. A similar failure awaited Mayo in the Eastern Turkistan and Kashmir.

The "means as well as the end of Mayo's Eastern Turkistan policy was new. For, while Lawrence curbed commercial enterprise because of its political implications, Mayo encouraged it for that very reason". Mayo sent a mission to Yakub Beg under Forsyth at the latter's own request, but since no soldiers accompanied the mission, it was clear that the British should give Yakub beg definite gurantee against the the Russian aggression. He therefore refused as much as even to meet the mission on one pretect or another. The whole scheme of the mission thus not only ended in failure, but it also brough in its train active consequences which it was designed to prevent. Alarmed by the Forsyth mission, under threats of open hostilities the Russia as forced Yakub to sign a commercial treaty in 1872 under which Russian merchants and commercial agents got a free access to all the towns of Yakub's Kingdom. The Government of India sitting far away in Calcutta fretted and fumed, but Mayo's policy of double-layer cushion had failed.

In Ladakh, however, Mayo's policy adopted a different shape. Mayo observe no caution in his approach to Kashmir, and fully convinced of the possibilities and desirabilities of developing trade with Eastern Turkistan via Leh, he considered it with wrong on the part of the British to allow the Maharaja to place obstacles in the way. He despatched his special envoy Captain Grey with fortnight instructions to

negotiate a treaty for the development of trade through Ladakh, whether the Maharaja liked it or not. The treaty was signed in 1870.[41]

The treaty of 1870 gave birth to what was known as the Trade in Bond. Under this treaty, all routes passing through Kashmir were to be surveyed and one would be selected and made a "free high way in perpetuity and at all times for all travellers and traders." Proper arrangoment for rest house, supply depots and carriages were to be made, the route was to be supervised by two Joint-Commissioners of Kashmir and the British. The Maharaja agreed to levy no duties on goods passing between the British, India and Central Asia through Ladakh. On the other hand the British agreed to levy no duty of the State's merchants for the goods they transmitted in band through British India, to the States or to the Central Asia. Besides, the British agreed also to levy no export duties on shawls and other textiles fabrics manufactured in the Jammu and Kashmir State and exported to Countries beyond British India.[42]

Dr. Henry Caley who was already at Leh had explored and recommended the routes through the Chang Chemmu valley as the safest route. The route was selected as stipulated in the treaty, and termed as the Treaty High Road. It was placed under the executive control of the British Joint Commissioner who was also to enjoy judicial authority on all offences in conection with trade, committed within 2½ miles of the trade route, by all British Indians and foreign nationals such as the Yarkandis.[43] Expenses for the maintenace of the road were to be met by the Maharaja.

Rules with regard to trade under the treaty were further revised in 1872, 1875 and 1898. Under these rules the British were to

refund to the State all duties imposed at the British Indian posts, on the sea borne goods intended for consumption in the state. Duty on goods meant for Central Asia, was refunded to the State traders at Leh, provided the goods had been declared and sealed for transmission in bond at the ports themselves, and the seals had not been broken for local consumption of the goods.[44] Trade thus carried out by the State merchants was known as the Trade in Bond.

Trade in bond for local consumption in goods such as sugar, European piece goods, petroleum, liquids, arms and amunition, cigarettes, tea etc. Continued in the time of Maharaia Pratap Singh. Total value of the goods imported into Jammu under trade in bond in 1903–04 was Rs. 5,35,595. The value rose to Rs. 30,49,621 in 1925–26. The respective figures for imports into Kashmir were Rs. 12,62,843 and Rs. 52,79,153. 43 Export trade in bond from the state to Central Asia however was almost nil.

Nowhere the efforts made by the British to pursuade merchant to uso treaty high road very much successful. In fact the whole British project for trade with Central Asia and the selection of the said route for it was closed up miscalculation. Its objects, like those of opening up of the Indus for trade avigation in Punjab under the inspiration of William Moorcroft himself, were political than commercial. But even political objects, so far as Eastern Turkistan was concerned, could not be seucured. Though like Maharaja Ranjit Singh in Punjab, the Maharaja of Jammu and Kahsmir had to pay a heavy price. As a result of the threat in 70, the British political hold on the State was further strengthen. It late ultimately to the appoi tment of British President in Kashmir in 1885, and to the disposition of Maharaja Pratap Singh in 1889.

The commercial tresty of 1870 thus served the political interest of the British in Kashmir. But so far as the British interest in the Central Asian trade were concerned, they completely failed. The export trade of the British through the British Indian Merchant could not much developed. Nor could the merchants in Jammu and Kashmir helped through the trade in bond, though the import trade from central Asia to Kashmir as before continued.

British trade with central Asia Via Ladakh passed through Punjab. They were to routes from Punjab to Ladakh, one via Kulu which was described in 1867, and the other were Kashmir which was developed after the treaty of 1970, as we have seen. And a government report in Punjab remarked in 1888–89 that the trade with Lkdakh was insignificient and showed no tendency to expand.[46] In 1891–92 it was reported that the propotion which the trade with Ladakh formed of the foreign trade, of Punjab was only 2%.[47] In 1898–91 it increased to 3.8% but in 1899–1900 it was again reduced to 2. In 1900–01 a further decrease was registered. The total value of the goods exported to central Asia via. Ladakh, from Punjab, both through Kashmir and Kulu, was Rs. 3,11,000 in 1880–81. The value decreased to Mere Rs. 2,49,000 in 1900–91 despite the fact that the prices were raising.

Davis while reporting on the prospects of trade with central Asian had saved that there was a great demand of their goods of European and Indian manufacturing. He had express his confidents that the once of Central Asia being nearer the source of supply in India than via Russia, the traders in European goods from the side of India would be able to compete successfully with traders from Russia side. In practice, however, the British scheme of replacing Russia, in the Central Asian trade dismal failure.

1. Cowlely Lambert : A trip to cash–more and Ladakh, London, 1877, P. 109.
2. The censes of India, 1921, XXII, part I, P. 2.
3. Gazetter in Kashmir and Ladakh (here after gazetted) New Delhi, 1974 (reprint), P. 30.
4. Alexander Cunningham, Ladakh, physical statistical and historical 1853, P. 23 (here after Cuningham gazetter p. 29)
5. Gazetter, p. 31 C. also C. S. Middlemiss, general report on the work done by mineral survey deptt. (1918–1919)
6. Cunningham, PP. 231–32.
7. Ibid P. 230 the author gives a detailed study of the minerals fauna and flora of the district, which form trade point via either unimportant or could not be exploited for various reasons.
8. Ibid, PP. 238–39.
9. Ibid, 215 Oseas Fckenstein, The Karakoram and Kashmir, London 1896 p. 250.
10. Watia, S. M. the zoology and geography of India 1929 p. 319 H & K chief, F. No. 7/H–121 of 1908.
11. The Cunningham p. 241.
12. Ibid p. 89.
13. Assessment report, Kargil tehsil, 1901, p. 11HZ Darrah, sports in the highlands of Kashmir London 1898 p. 18 Darmot Kashmir : The Switzerland of India 1933 p. 83.
14. Gazetter p. 92 Cunningham p. 209.
15. J & K chief pol F. No. 121/A–6, 1908 : JC MacDonald, Hince on hill travelling in Kashmir, Allahabad, 1903 p. 39.
16. Author Nava, picturesque Kashmir, London 1900, p. 64.
17. Cunningham p. 211.
18. J&K JN Genahar, B. N. Ganahar Buddhism in Kasamir and Ladakh New Delhi 1956, p. 190.

FOREIGN TOURISTS AND THEIR IMPACT IN LADAKH

Prem Singh Jina

Man since antiquity has been an inveterate traveller. Only the motivations for travel have changed. In ancient times, the main motivations for travel were trade, pilgrimage and conquest. It is most realised from the interchange of ideas and knowledge between India and West Asia. There was extensive contracts among people several thousand years ago. India's link with the exotic past, when lengthening caravans piled the abcient. 'Silk route' and lingered long at Leh of Ladakh to rest, to buy charas, silk, silver, gold etc. Today's Hong-Kong was Leh of Ladakh in ancient times for minor Asia. In the north lay the caravan route to Yarkand and Kashgar, both in Sikiang, in the east in Lhasa. Traders from Afghanistan Turkey and Arabian Kingdoms all cogregated in the main square, deplayed their wares and, in the evening, played an inivigorating game of Polo.

In this way that time trade was the main source of revenue. The earning from the trade to Ladakh was Rs. 16,441 in Canningham, Alexander-Ladakh, Physical, Statistical and Historical p. 23, in 1846–1847. The trade relations through Ladakh to minor Asia were continue upto 1959. After 1959 due to the occupation of Tibet by China these relations were completely stopped; and in the meanwhile government of India imposed ban in Ladakh for outsiders. This way Ladakh progress falled in shadow; because during the ban period no major steps for the development of Ladakh was taken by the government except defence. In summer 1974 ban was suddenly lifted for outsiders; by this dint many visitors visited Ladakh and latter on

they give a shape of tourist industry to Ladakh based on foreign tourists.

As a foreign tourist many visitors came to Ladakh before 1974. Diogod Almeira who was a Portuguese layman came here first on 1600. In 1631 fathers Francesco de Azevedo and Giovanni de Oliveiro visited Ladakh. Ipolito Desideri who passed through Ladakh in 1715 on his long journey from Srinagar to Lhasa. William Moorcroft and his party reached Leh of Ladakh in September 1820, remained here until Sentember 1822. Towards the end of the year 1834 Dr. Henderson came in Ladakh. Alexander Cunningham was here during 1846 upto 1847. Rev. A. H. Heyde and Pagell came in 1853 with the intention of opening a mission of Mongolia in Ladakh. Jonson from 1871 to 1883 took in climbing the mountain submits around Leh. Dr. A. H. Francke German seholar came with Moravian mission board on 1909. Prof. Giuseppe Taui and Prof. Luciano Petech worked on the history and culture of old Tibet came in 1930. David Shellgrove and Tradeusz Skorupski author of "The cultural Heritage of Ladakh" came just after lifted the ban by the govermənt in summer 1974.

TABLE : 1

Number of Foreign Tourist in Ladakh since 1974

S/No	Year	Foreign Tourists	Total Tourists	% increase (+) or decrease (–)	
1.	1974	500	527	–	
2.	1975	650	778	(+)	30.00
3.	1976	1,798	2,051	(+)	176.60
4.	1977	7,127	7,392	(+)	296.40

5.	1978	8,748	9,621	(+)	22.74
6.	1979	9,213	9,834	(+)	5.31
7.	1980	13,104	14,117	(+)	42.33
8.	1981	13,540	14,000	(+)	3.33
9.	1982	12,786	14,286	(–)	5.56

Source : Tourist Bureau Leh—Ladakh.

TABLE : 2

Number of Tourists from Developed and Developing countries in 1982

S. No.	Countries	By Air	By Road
1.	Developed	1866 (99.00)	10,785 (98.93)
2.	Developing	18 (1.00)	117 (1.07)
3.	Total	1,884 (100)	10,902 (100)

Source : Date complied from the Tourist Bureau Leh Ladakh,
Brakets indicate percentage.

TABLE : 3

Monthwise number of Foreign tourists in 1982

S/No	Month	By Air	By Road	Total
1.	Jan.	86	—	86
2.	Feb.	58	—	58
3.	Mar.	64	—	64
4.	Apr.	135	—	135
5.	May	206	82	288
6.	June	188	1,731	1,919

7.	July	374	3,038	3,412
8.	Aug.	516	4,128	4,644
9.	Sept.	153	1,546	1,699
10.	Oct.	60	347	407
11.	Nov.	22	30	52
12.	Dec.	22	—	22
13.	Total	1,884	10,902	12,786

Source : Tourist Bureau Leh-Ladakh.

Table : 1 indicates us that except slight down fall in the total strength of tourists during 1981, in all the years since 1974 upto 1982 strength of the tourists from their previous year increases. We find percentage average of foreign tourists of the total strength 91.00 and except 1982 their strength increases year-wise since 1974. Due to government world wide advertisement about Ladakh after the opening a tourist office in Leh on December 1974, which started its function form 1975 foreign tourists rushed up in Ladakh rapidly and their percentage increased in 1975 from 1974 to 30% in 1976 from 1975 176·60%. During emergency period in 1976 government after viewing the increasing trend made her advertisement strongly and due to the multiples effect in 1977 the percentage of foreign tourists increased upto 296·40 from 1976. After 1977 onwards except 1982 the trend of foreign tourists increases but in slow way, cause behind it the social, economic alertness of local people because of this alertness they charge highly of the things in which foreign tourists show their interests. The result is not far behind, because of silly nature foreign tourists got down 5·5% in 1982 than 1981.

During 1982 foreign tourists from the developed countries

visited Ladakh greatly, both by road and Air ways. Their average percentage was 98.86 as shown in the tablc 2.

Table 3 indicate us the number of foreign tourists during 1982 visited Ladakh through out the month by air but by road they visited from May upto November and the rest of the months due to the closed of Leh-Srinagar Road they could not come. The visiting trend from January upto June was slow but it rapidly increased in the month of July and August, because in both the months Air flights cancelled minimum almost in the middle of July or last week of June Hemis Festival celebrated in Ladak.

Now due to the rapid increase in foreign tourists or we may say tourism based on foreign tourism attributed few factors in Ladakh.

1. Increase leisure
2. Increase market structure
3. Higher standard of livings
4. Improved education.
5. Developed fast means of transport or mobilities.
6. Employing large number of people.

In Ladakh, the impact of the growing tourist industry discemible in the following :

1. The tourist trade is responsible for the expansion of plantation, constructure of concrete structures, development of market. In recent years some preservation have come up in the form of parks etc.

2. Tourist industry has brought far reaching social and cultural effects in the region through development of infrastructural facilities and employment potentials, whereas intermining of various shades of people has led to wiping out of age old traditions and weakening of social constraints for example marriage systems.

3. The expansion of the tourist industry has led to may ramifications viz; migration of people, changes in transport, increase accessibility, changes in land use, urban development, cultural diffusion.

4. Although foreign tourists visited Ladakh through out the months of the year, but a seasonal activity having peak season in summer i.e. from June upto September as shown in the table 3, which means that casual work and sasonal unemployment are often distinguishing features, travel foreign travel foreign tourists are different from the old tourists in that they come from varied social and economic background, have varied tastes and desires and have restricted time and wants to grab maxium pleasure low price accommodation and servicces, but in Ladakh they face high price accommodation, high charges services and transports, due to this reason the percentage of foreign tourists in 1982 got down to the previous year as shown in table 1.

TABLE : 4

Growth of population in Ladakh

S/No	Year	Population	% increase
1.	1961	88.651	—
2.	1971	105,211	18.77
3.	1981	187,000	82.92

Source : Data compile from the census of India Ladakh District 1961, 1971 and from the District Headquarter Leh.

6. Due to the increase in employment, rising living standard the population growth 110.94 percent during 1961 upto 1981. The rapid growth of population during 1971–1981 as shown in the Table 4, it raised up to 82.12 percent. Rapid growth of population

in 1981 indicate the rapid growth of population in 1981 indicate the rapid growth of birth rate which was in 1981 30.53%. (Source : D.C. Office Leh-Ladakh). We may also give argument that both the rapid growth of population and growth birth rate was increase due to the eradication of polyandry system. No doubt we may have some cases of polyandry still today but in the demographic character it is neglible. The eradication of polyandry is by dint of education development and the development of education is due to the rising source of income by foreign tourists.

TABLE : 5

Number of Buddhist Mosks in some selected gonpas

S/No	Name of Gonpa	1961	1971 % decrease from 1961	1981 % decrease fıom 1971
1.	Likir	215	205 (–) 4.6	190 (–) 7.3
2.	Lamayuru	152	150 (–) 1.3	140 (–) 6.7
3.	Phyang	50	47 (–) 6.0	35 (–) 25.5
4.	Spituk	110	100 (–) 9.0	80 (–) 20.0
5.	Thicksey	220	210 (–) 4.5	180 (–) 14.0
6.	Hemis	325	321 (–) 1.0	310 (–) 3.4

Source : Data collected during survey by the another in summer of 1981–82.

Table 4 & 5 :—Indicate the negative correlation as the population during their previous docade but beside of this the percentage of monks rapidly decrease in 1981 than 1971. The average decline in Buddhist monks of the six gonpas as shown in the table 5 was 4.43% in 1971 and was 12.8% in 1981. We may argue tourism was also one of the additional factor which multiply the effect upon Buddhist monks declination, as they were attracted towards modern education

and after completing their education they got employment. So when they got themself employed their attachment with their gompas gradually deteriorate and after some time they transfer themself into layman. On the other side due to the increasing number of schools in every villages the younger generation do not interested to become Buddhist monks.

TABLE : 6

Foreign exchange earning

S/No	Year	Earning from foreign exchange
1.	1980	58 lakh
2.	1981	60 lakh
3.	1982	57,80,000

Source : S.B.I. Leh.

Viewing to the foreign earning in term of rupees we find the per capital earning from the foreign exchange was Rs. 32.08 per year in 1981, as calculate from table 6. Because of this earning from the foreign tourists Jammu and Kashmir Bank attained a major role after financing for the development of Tourism.

TADLE : 7

Finance by the Jammu and Kashmir Bank for the development of tourism.

S/No	Year	Finance for Taxis		Finance for hotels & Restuarants	
		Kargil Distt.	Leh Distt.	Kargil Distt.	Leh Distt.
1.	1981	2.64 lakh	6.9 lakh	10.70 lakh	6.0 lakh
2.	1982	1.87 lakh	38.5 lakh	62 thousand	6.4 lakh

Source : Jammu and Kashmir Bank's area circle office, Leh

Table 7 indicates Bank financed Leh district comparably higher than Kargil district. Bank financed Leh District in 1981 12.9 lakh for transport and hotels, restuarants which raised upto 44.9 lakh in 1982 i. e. 248 times percentage rise up during 1981–82.

Leh which is now an international tourist centre. Tourists firstly come here and then go for other places in Ladakh. Tourist traffic is constantly on an increase creates complex preblems during summers. A recent survey in 1981–83 summers conducted by me in connection with tourism revealed in Leh Ladakh the following statements :

1. The changing mode of tıansport and fast means of traffic have increased the mobility of tourists. Taxies used only for foreign tourists and they do not want to take the passenger, and their Load if so they usually charge from them very high.

2. Due to the rush in Indian Air Lines and Bus Station of foreign tourists local people demands neglected by the Indian Air lines and Bus station manager instead of this they prefer foreign tourists service.

3. The lion share of foreign tourists earning gives to few people who have hotels. Antique shopes and ties owners and the bank also give finance them only. So the few people getting money from both side i. e. one from the tourists another from the ban in this way they are becoming more and more richer; on the other side duo to this inflatio creates, because of this inflation another group also develop i. e. the poor group, which is growing to poorer. So the gap between poor and rich is rising up rapidly.

4. The repid expansion of tourist industry led to serious conse-

quences in the form of changing landscape much of the open space being covered up by the buildings and hotels.

5. The elderly people are less prone to move out because of increasing infirmity and reduced income.

6. Women however, show greater interest than man while families with childrens trend to travel less because of the expanses. The survey also indicated that people with better education have higher propensity to travel. Younger generation adopting more and more fashion of western civilizatioa.

7. Development of subsidiary and ancillary activities dependent on tourism—Painting, Photography etc.

8. Development of tourism; social evils also developing as shown in the table 8.

Table 8

Mumber of cognisable cases reported in 1981–82

S/No	Category Leh Distt.	Number of cases reported
1.	Murder	3
2.	Kidnapping and abduction	1
3.	Burglary	12
4.	Thefts	12
5.	Roits	11
6.	Cheating	1
7.	Others	40

Source : District Headquarters, Leh

Convicted cases reported during 1951–60 or during one

decade was only 138, where as such cases reported 80 during one year. This leads us serious consequences in the form of convicted habits as murder, thefts, kidnapping.

1. Tourist trade effects upon such as soaring land values, encroachment upon agricultural land in the peripheral areas, break-down of ammunity facilities and services. The social significance of tourism is clearly evident in the form settlement, growth and development.

Occasionally tourist development may result in a conflict between the needs of the tourists and the interests of the resident population due to inconvenience and reduction in the civic amenities brings on its trail, cultural diffusion but it may sometimes become disturbing as the traditional ways of life and may be weakened or even destroyed by the impact of tourism. Outside contacts, spread of education may have undesirable social effects, social consent, political instability etc. and it is therefore essential that in a fastly developing tourist centre like Ladakh, the future growth should be carefully planned.

The maiority of people who inhabit the town and its vicinity are dependent on tourist trade in one way or the other. There is no denying the fact that organisational efficiency in the town is gradually dwindling with increase in tourist traffic. Breakdown of the basic amenities and transeport, even essential servioes like supply of meat reach a low ebb, creating tensions among the local inhabitants.

We can therefore suggested after viewing the survey conducted during 1981–83 that, the Government should impose income tax upon the owner of Hotelers, taxies owners or rather we can say the rich people of Ladakh for deteriorating the growning gap between rich and

poor. Help should be given to the Ladakhies gonpas for the preservation of their painting, sculpture etc.

Facility should be given to the young Buddhist monks at their gonpas for modern education besides Adhyatdmic education at least for ten years. For lowering the inflation government should fixed the prices of consuming items and other necessary items; and also stop further financing policy, Government should start city bus service during summer or in peak tourist season.

Reference :

1. David L. Snellgrove and Tadeusz Skorupski, the cultural heritage of Ladakh Volume one, Central Ladakh, Vikas Publication House Ltd. (197˙) Pages XIII to XIV.

2. Census of India 1961, Jammu and Kashmir, District census Handbook–4, Ladakh District.

3. Census 1971, Series–8, Jammu and Kashmir, District Census Handbook, Ladakh District.

4. Antiquities of Indian Tibet, by A. H. Francke (Part–I)

●

PROBLEM OF LADAKHI LANGUAGE AND ITS SOLUTION

LOBZANG TSEWANG

Language is an essential factor to develop and transfer literature, culture and civilisation, In order to gain solid knowledge in literature, first learn language in which it is available. Language is a medium of exchanging thought in human society. Human beings have different feelings, emotions and ideas which can only be expressed through the language. The mind of other individual can't directly be known, but through the language. All kinds of events viz; external and enternal can be manifested through the language. And all past racord or history, we find in human language. There is certain transcendental phenomena which can also be known through the language. I mean by inference which dopends upon the syllogism, consists of three sentences. So from all sides the language is very useful in human human life.

Before the 7th century our language had no script, it was only spoken language. In the 7th century the King of Tibet named Song-chan-Gampo sent Thon-mi-Sambhota to India for education. He came to India and took admission in Nalanda University. He learnt Sanskrit language and Buddhist Philosophy and religion very well. Becoming learned scholar he returned to his home land. According to Kings'-order he creates new script in accordance with Tibetan language. This script has thirty four alphabets viz; thirty cousonant and four vowels. It has two kinds of characters viz; Uchan and Umet. And he translated many scriptures from Sanskrit to Tibetan language. The translation task had been started at the 7th century.

What languages is being spoken by Ladakhi ? Common people are very rich and have vast language. This language is being used in the differenct regions of Asian continent. For instance, Tibet, Bhutan, some areas in Nepal and Pakistan, in Indian, Ladakh, Sikhim, some areas in Himachal Pradesh, Uttar Pradesh, Arunachal Pradesh, and in West Bengal and so on. The root language is same, but there may be little bit difference in accent in their colloquial languages among them.

Different names has been assigned to this language, likewise, Tibetan, Bhutani, Ladakhi and Baltistani and so on. It creates confusion in mind of foreigners. They might think that these are different and small regional languages which are blank sound of higher literature. By this reason our language did not get recognition in Indian constitution. Therefore we do not get good facilities from government for the development of our language. Keeping this problem in the mind, we should assign one name to it which should be agreeable for all speakers of this language as a mother tongue. By this name we can remove certain major problems.

In my opinion Tibetan language may be suitable name for this language. There will be no reasonable objection to it. It is true that Tibet is the name of a particular land and property of definite community. But Tibetan language can be common property of different community who belong to different countries, likewise English language is the national language of both America and England.

For protection and developmet of this language, we should set up a particular committee in which representative should be called from all regions wherever this language is being used as a mother

tongue. The committee should organise annual conference which will relatively be held in all regions. It would definitely be beneficial to protect and develop this language.

Now-a-days Ladakhi people are speaking a peculiar mixture language which consists English, Hindi and Urdu terms. Ladakhi scholars have different opinion regarding this matter.

The opinion of some scholars is that our language alone may be insufficient to analyse all kinds of ideas. So the adoption of an essential foreign words may be no harmful for the development of our language. By geeting an assistance of important foreign words, we can obtain good achievement in this field. There may be certain peculiar vital conception which requires original terminology to convey exact meaning or idea of it, in this case, we should not neglect foreign words in conversation. So we should observes an essential and suitable foreign term in our language. English language freely obsorbed Greek and Latin words. Therefore, it became very rich and vast language in the world. Now it is recognised as an International language.

Other scholars say that the adoption of foreign words is the main cause of the distruction of our original language. The cause of mixture language will definitely ruin original one, moreover, consequently be disappeared from its home land. It is true that there may be certain essential foreign term to indicate any particular object. Even though we don't use the same word. But create new term which can bear the exact idea of the object. And make them popular word among the common people through day to day communication. Otherwise we can't project and develop our language.

Second opinion seems more scientific than first one. The mixture usage is the destructive factor of original language. In the phase of

time, coming generation would be unable to understand the original scriptures, viz; Kangur, Stangur and Sun-bum and so on. Because, they naturally might have less terminological vocabulary. If they have sudden interest to be familair with Buddha's teaching, then they have to go refugee to foreign language. And our precious language and scriptures would be worthless for them. It does not mean not to learn and use foreign language, but don't mix and leave our own language.

Ladakhi language should be introduced from primary school and continue upto post graduate level. It is very essential factor to develop the language and protect culture and civilization. In both state University, viz; Jammu and Kashmir should establish particular Department for Ladakhi language and literature as other languages have. In this way numerious scholars can definitely be produced in Ladakhi language and literature. In fact, these are only day dream being seen by certain individuals like me.

Since some years ago upto last year Ladakhi language used to be taught from primary class upto Matriculation in all government school in Leh District. The intention of State government has suddenly been changed and now it does not allow to teach Ladakhi language in the schools, besides, matriculation as an additional subject. In the college and University, there is no sign and smell of Ladakhi language although it is very rich and has vast literature. This situation gives painful stroke in the heart of Ladakhi people. The language is the foundation stone of the castle culture and civilization. If the language is ruined then culture and civilization will automatically be collapsed. In this critical situation how can be preserved our culture and civilization. We should request to state government to amend their educational system. And government should release order to in-

troduce Ladakhi language from primary school and continue upto post graduate level.

Fifty percent Ladakhi population are Muslim and Ladakhi language is their mother language. Ninety-nine percent Ladakhi Muslim can't understand Arbi language. So Holy Koran should be translated into our mother tongue and composed easy commentary in the same language. And common people can easily be understand the subtle meaning of Koran and can stricly be observed Koranic religions precepts. Alongwith it will be praise worthy service for our mother language.

Christan religion recently enters into the land of snow yet they immediately translated Holy Bible in Ladakhi language. Ladakhi Christan are reciting their prayer in Ladakhi language. It is appreciable service for one home language.

We have a particular language and its script which are precious legacy of our forefather. It is invaluable property all of us whoseover took birth on this land. And all community viz; Muslim, Buddhist & Christan should equally be cautions for the protection and development of this language. We are having a rich and vast one own language and its script in case, we should not be slave of any foreign language.

Our language has rich and vast literature for instance, Philosophy, religion, history, philosophy, Astronomy, mathematics, medicine and grammer and so on. There is good translation of Holy Bible, and anthentic translation of tripatas. There might be translation of Holy Koran in Baltistan in occupied Kashmir. But we don't have modern subjects in our language, likewise, all branches of modern

sciences, civics, economics, comperative philosophy modern noveles and dramas. Besides, them we don't have in one language different kinds of news papers and magazines likewise, daily, weekly and monthly and so on. In fact, these are the main factor to develop language and literature. So in immediate future we should produce such kinds of news papers and magazines in our language. We should set up a committee who write all kinds of modern subjects and certain authentic book translated in our language. In this way we can project and develop our language, literature and cultnre and civilization.

चित्तोत्पादः परार्थाय सम्यक्संबोधिकामता
(अभिसमयालंकार, १ : १९)

महोत्साहा महारम्भा महार्थाथ महोदया ।
चेतना बोधिसत्त्वानां द्वयार्था चित्तसम्भवः ॥
(महायानसूत्रालंकार, ४ : १)

तद् बोधिचित्तं द्विविधं विज्ञातव्यं समासतः ।
बोधिप्राणिधिचित्तं च बोधिप्रस्थानमेव च ॥
(बोधिचर्यावतार, १ : १५)

बोधिप्रणिधिचित्तस्य संसारेऽपि फलं महत् ।
न त्वविच्छिन्नपुण्यत्वं यथा प्रस्थानचेतसः ॥
(बोधिचर्यावतार, १ : १७)

परार्थमुद्योगवतः कृपात्मनो
ह्यवीचिरप्येति यतोऽस्य रम्यताम् ।
कुतः पुनस्त्रस्यति तादृशो भवन्
पराश्रयैर्दुःखसमुद्भवैर्भवे ॥
(महायानसूत्रालंकार, ४ : २६)

यत्प्रेम या वत्सलता प्रयोगः
सत्त्वेष्वखेदश्च जिनात्मजानाम् ।
आश्चर्यमेतत् परमं भवेषु
न चैव सत्त्वात्मसमानभावात् ॥
(महायानसूत्रालंकार, ४१ : १४)

यावदाकाशनिष्ठस्य निष्ठा लोकस्य सम्भवेत् ।
तावत् स्थास्यामि लोकार्थं कुर्वन् ज्ञानपुरःसरः ॥

(शिक्षासमुच्चयः—१९)

लदाख-प्रभा—३

लदाख में बौद्ध विद्याओं का ऐतिहासिक एवं दार्शनिक सन्दर्भ

तिब्बती निबन्ध

अनाथानामहं नाथः सार्थवाहश्च यायिनाम् ।
पारेप्सूनां च नौभूतः सेतुः संक्रम एव च ॥

दीपार्थिनामहं दीपः शय्या शय्यार्थिनामहम् ।
दासार्थिनामहं दासो भवेयं सर्वदेहिनाम् ॥

चिन्तामणिर्भद्रघटः सिद्धविद्या महौषधिः ।
भवेयं कल्पवृक्षश्च कामधेनुश्च देहिनाम् ॥

(बोधिचर्यावतार, ३ : १७–१९)

ལ་དྭགས་ཆོས་རིགས་ཀྱི་ཆེ་བ༔ ཉི་མ་མགོན་,

ཀྱལ་དབང་འབྲུག་ཆེན་རིན་པོ་ཆེ།

༄། ། དོན་གཉིས་མཐར་ཕྱིན་གཏན་གྱི་སྐྱབས་གནས་ཆེ། །
ཡང་དག་རྫོགས་སངས་རྒྱས་དང་དེས་བསྟན་པའི། །
དམ་ཆོས་རིན་ཆེན ཚོགས་མཆོག་དགེ་འདུན་ལའང་། །
སྙིང་ནས་གུས་པའི་སེམས་ཀྱིས་སྐྱབས་གསོལ་ནས། །
ཐ་སྙད་བདེན་པའི་ཁྲུ་མཆོག་རྒྱ་མཚོ་ཆེར། །
རྣམ་རིགས་ཆགས་པའི་ཀཱ་དཔའི་བུ་མོ་ཡི། །
ལོ་མང་དབྱད་པའི་རིག་བྱས་བདེ་བྱུང་གཡོ། །
དེ་བས་བསམ་བྱེད་རི་ཁྲོད་མས་འདི་ལོ། །
རིང་ནས་གོམས་པའི་ཚོགས་གཉིས་ལུས་ཕྲ་མའི། །
མི་ཕྱེད་མཛེའ་བས་འཁྲུད་པའི་སྟོབས་བཙའི་རྩལ། །
ཡོངས་སུ་རྫོགས་པའི་རྣམ་འདྲེན་ཉི་མའི་གཉེན། །
ཁྱེད་ཀྱིས་སྲིད་འདིར་ཐུགས་རྗེས་སྐྱན་ཡོན་སྟོལ། །

དེ་ཡང་འདིར་རང་ཉིད་ལོ་ན་དང་རྣམ་གཡེང་ཤས་ཆེ་བའི་དབང་གིས་ས་གནས་འདི་གའི་རྒྱུས་གནས་སྔར་བྱུང་ཇི་ཡོན་སོགས་ཐོས་ལོ་ཙམ་སྔེ་འདིར་… ཡིག་ཚོགས་མང་བ་ལས་གཞན་མ་མཆིས་པས་ཞིབ་པར་གཞན་རྣམ་ཐར་ཆོས་…

འབྱུང་ཁྲངས་ལྡན་དག་ལས་མཁྱེན་རྟོགས་ཡོང་བས་མ་བཀོད་དོ། །སྐབས་སུ་བབས་པའི་བརྗོད་བྱ་ནི། ཇི་སྐད་དུ། སློབ་དཔོན་པདྨའི་གཏེར་ལུང་ལས–

མངའ་རིས་བསྐོར་གསུམ་གྱི་གོ་སྒོ་རུ་དང་། །
མི་རྗེ་རྒྱལ་པོ་མགོན་གསུམ་ཞེས་བྱ་བྱུང་། །
དེ་ཡིས་རྒྱལ་བའི་བསྟན་ལ་བྱ་བ་བྱེད། །

ཅེས་ལུང་གིས་ཟིན་པའི་ཆོས་རྒྱལ་མགོན་གསུམ་གྱི་གཙོ་བོ་ཉི་མ······མགོན་གྱིས་འཛམ་བུ་གླིང་གི་ལྗོན་པས་མཚན་པའི་གླིང་ཆེན་པོ་'ཡོན་ཏན་རྒྱལ་མཚན་ཅན' ཞེས་དགེ་མཚན་འབུམ་གྱིས་མངོན་པར་ཕྱུག་པ། གང་གི་ནུབ་ཕྱོགས་ཀྱི་དོག་ཏུ་འཕོན་པ་གངས་རིན་པོ་ཆེ་ཏི་སེའི་བྱང་ཕྱོགས་སེང་གེའི་ཁ་ནས······ངང་གིས་བབས་ཤིང་གསེར་གྱི་བྱེ་མས་དལ་གྱིས་འདྲེན་པའི་ཀླུང་ཆེན་པོ་སི···དྷུའི་འཇུག་ངོགས་མང་ཡུལ་ལ་དྭགས་ཞེས་གྲགས་པའི་ལྗོངས། ནུབ་ཕྱོགས་སིནྡྷུའི་རྒྱ་མཚོ་ཆེན་པོ་ལ་ཐུག་པའི་བར་གྱི་གསེར་ལྡན་འཛིན་མའི་ཁྲོན་ཆེན···པོར་ཉེ་བར་འཁོད་པའི་སྐྱེ་དགུ་བསོད་ནམས་ཅན་ཐམས་ཅད་བདེ་སྐྱིད་ཀྱི······དཔལ་ལ་གཞོལ་བའི་ཆེད་རིས་མེད་དགོན་སྡེ་ཕྱག་བཏབས་པ་སོགས་ཆོས···སྲིད་ཀྱི་བྱ་བ་ཆེན་པོ་མཛད་དོ། །དེ་སྐད་དུའང–

འཛམ་གླིང་དོག་གི་ཡངས་པའི་ས་ཁྲོན་ལ། །
དགེ་ལེགས་གཏེར་སྒོ་འབྱེད་མཁས་མིའི་དབང་པོ། །
སྐྱེ་དགུ་བདེ་སྐྱིད་ཚལ་ཆེན་དུ་གཞོལ་བའི། །
ས་སྐྱོང་རིགས་ལྡན་ས་ན་གྲགས་འདིས་བསྟན། །

ཞེས་ཚོགས་སུ་བཅད་དེ་གོང་སྨོས་མི་དབང་ས་སྐྱོང་དག་གིས་རིམ་

ཕར་བཅས་པའི་ཆོས་སྲིད་ཀྱི་ཁྲིམས་སུ་བཅས་པ་དག་ནི་གཞན་ལས་ཤེས་པས་འདིར་བཀོད་པའི་རྒྱུ་མཚན་མ་མཐོང་ལ། དུས་རབས་འདིའི་ནང་གནའ་དུས་ཀྱི་བཅའ་ཁྲིམས་ལས་དྲངས་པའི་ལུགས་བཟང་ཞི་དུལ་འདི་ཉིད་འཛད་ཆོན་……ལྟར་ཡལ་བའི་གནས་ཚུལ་འདི་བཞིན་འཛམ་གླིང་ཡུལ་གྲུ་ཤར་ནུབ་ཀུན་གྱི་……གནས་ངན་ཞིག་ལས་སྐྱེར་ཆོས་ཤིག་མིན་པ་ཚད་མས་མངོན་ཀྱང་། རང་རེ་ལ་དགས་པའི་གནའ་སྲོལ་འདི་ནི་ཧ་ཅང་གཟི་བརྗིད་དང་ལྡན་པའི་སྲོལ་བཟང་པོ་…ཞིག་ཡིན། ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། གནའ་སྲོལ་ལུགས་བཟང་འདི་ཉིད་བསྟེག་ན་འདི་ཕྱི་གཉིས་ཀའི་དོན་བཟང་མ་འབད་ལྷུན་གྲུབ་ཏུ་འབྱུང་བ་ནི་ཤེས་ལྡན་གཟུར་…གནས་རྣམས་ཀྱིས་མཁྱེན་གསལ་ལྟར་ལ། དེས་ན་འདི་ཉིད་ཐོར་རླག་སོང་འགྱུར་ཆོ་གཟོད་མེད་ཀྱི་བློ་ཕམ་སྐྱེ་འོས་སུ་སོང་གཤིས་ལོ་རྒྱུས་ལྡན་པའི་གནའ་རབས་འདི་ཕྱི་གཉིས་ཀའི་དོན་བདེ་ཐག་ཏུ་འགྲུབ་པའི་ཐབས་སུ་སོང་…བ་གཞན་དྲིང་འཛོག་མི་དགོས་པའི་ཡོན་ཏན་འདི་ཉིད་མ་བོར་བར། ཇི་སྐད་དུ—

སྐྱིད་ཡོན་ཇི་བཞིན་ཤེས་ལས་རང་ཉི་ཀྱི། །
ཡོན་ཏན་ཆ་ཕྲན་ཙམ་ལའང་བསླད་མེད་པར། །
མེ་ལོང་ངོས་བཞིན་བསྐྱངས་པའི་སྐྱེ་བོ་གང་། །
བརྗོད་པ་མེད་ནའང་དཔའ་བོ་ཁྱུ་མཆོག་ལགས། །

ཞེས་འབྱུང་བ་ལྟར་དཔའ་བོ་བགས་ཅན་ཀྱི་མཆོག་ཉིད་ཀྱི་སྲོལ་བཟང་…བོ་འདི་ཉིད་བསྲུང་སྐྱོབས་བྱེད་པ་ཡིན་པས་དེ་ལྟར་ཕྲུག་ལས་འཁེལ་བར……དགོས་ལ། དེ་མིན་རྒྱན་ཐམས་ཅད་ཀྱི་མཆོག་གམ་ཏོག་ལྟ་བུ་བཀྲ་ཤིས་པའི་དགེ་མཚན་དུ་མས་བརྒྱན་པའི་གནའ་སྲོལ་བཟང་པོ་དོར་དེ་གཞན་ལུགས…

འཚོལ་ན་རི་དྭགས་ཀྱི་རྒྱལ་པོ་སེང་གེ་དཀར་མོས་ཁྲིའི་བདུལ་ཞུགས་འཛིན…
དེ་གྲོང་ནང་འཁྱོང་ཚེ་ཁྲི་ལས་ལྷག་པ་གང་ཡང་མེད་པ་བཞིན་དུ་སོང་བས་དེ…
ལྟར་ན་རང་ལུགས་དྲི་མེད་གཡུའི་རལ་པས་བརྒྱན་དེ་མང་ཡུལ་གྱི་ལྗོངས……
གངས་རིའི་ཁྲོད་དུ་འཁྱིང་ཚེ་གཞན་རི་དྭགས་ཕལ་པའི་ཚོགས་རྣམས་ཅི་ཙམ…
འཁྱིངས་པར་འགྱུར་ཡང་དོ་བསྡོ་བར་ག་ལ་ནུས་དེ་མི་ནུས།

ལུགས་བཟང་འདྲེན་བྱེད་བྱུང་བའི་འཕྲུར་ལྷིང་གི། །
སློལ་བཟང་རྩི་བཅུད་པདྨའི་ཟེའུ་འབྲུར་ཆགས། །
ལམ་བཟང་འདྲེན་པའི་ཁ་བ་བཞིབས་ནས་སུ། །
སྤྱོད་བཟང་འཛམ་གླིང་རྒྱན་འདི་ཨེ་མ་ཧོ། །

ཞེས་པར་སྐབས་ཀྱི་ཚིགས་སུ་བཅད་དེ། ཕྱིར་འཛམ་གླིང་ཡངས་པའི་ས་
ཁྱོན་འདིའི་ནང་བྱ་སྤྱོད་ལེགས་ཉེས་ཐ་དད་སྣ་ཚོགས་ཤིག་ཡོད་ཀྱང་འདྲ……
འདྲའི་ནང་ནས་མི་འདྲ་བ་རང་རེའི་ཕ་མེས་ཀྱི་གནའ་སྲོལ་བཟང་པོ་འདི་བཞིན་··
གཅེས་སྲུས་བྱ་རྒྱུ་ནི་རང་རེའི་སྐྱེ་བོ་གྲན་གཞོན་སྐུ་སེར་ཐམས་ཅད་དང་ཁྱད……
པར་གཞོན་ནུ་གསར་སྐྱེས་རྣམས་འདོད་ཐད་དོ་སྣང་ཆེན་པོ་ངེས་པར་དུ……
མཛད་དགོས་པར་སྣང་། ཅེས་ཞེ་ན། དེང་དུས་ཕྱི་རྒྱལ་ཡུལ་གྲུ་སྣ་ཚོགས་
ཤིག་ནས་བལྟ་སྐོར་བ་ཡོངས་དང་ཡོང་བཞིན་པ་འདི་ཡང་རང་རེའི་སྔོན……
གྲགས་ཅན་གྱི་གནའ་སྲོལ་བཟང་པོ་འདི་ཉིད་ལ་བལྟ་བར་ཡོང་བ་ལས་དེང་དུས་
རིགས་གསར་གྱི་སྲོལ་རྣམས་བསླབས་པར་ཡོང་བ་མ་ཡིན་པས་དེས་ན……
གཞན་ཕྱོགས་ཀྱི་ལུགས་སྲོལ་ཡང་ཤེས་དགོས་རྒྱུ་ལས་རང་སྲོལ་སྲུང་བྱ་མ…
ཡིན་པས་རང་གི་ནོར་བུ་བོར་དེ་གཞན་གྱི་འཆིང་བུ་ཆེད་དུ་མ་རྩལ་བར་གནའ··

སྒྲོལ་ལུགས་བཟང་གི་ནོར་བུ་ཡོད་བཞིན་པ་འདི་ཀ་ནོར་ཉམས་ཆོད་པར་བྱས···
ནས་གཅེས་སྲུས་བྱ་བ་ནི་རང་ལ་ཕན་པ་མ་ཟད་གཞན་ལྟ་སྐོར་བ་དང་ཕྱོགས···
འཐའི་མི་སྣ་ཀུན་གྱི་འདྲེན་བྱེད་ནུ་བའི་བདུད་རྩིར་ལྡགས་པར་གྱུར་ལ། དེ་
བཞིན་དགོན་སྡེ་རྣམས་ཀྱང་ཕྱིའི་ལྷ་ཁང་དང་ནང་གི་རྟེན་སོགས་གནའ་དུས་ཀྱི···
ལོ་རྒྱུས་ལྡན་པའི་དངོས་པོ་སོགས་སྲུང་སྐྱོབ་བྱ་རྒྱུ་འདི་ཡང་གནའ་རྫས······
རྫས་ཤུལ་ལུས་ཤིང་འཛམ་གླིང་ཡོངས་ལ་སྟོན་གྲགས་ཀྱི་བ་དན་དཀར་པོ····
ཕྱོགས་མཐར་རྒྱས་པའི་ཐབས་རྨད་དུ་བྱུང་བ་ཞིག་ཡིན་པར་སོང་། འདི་ཐད་
ཀྱང་རང་སྒྲོལ་བཟང་པོ་འི་བྱ་སྤྱོད་ལ་གནས་ཆེ་དཀའ་ངལ་ཆེར་མེད་པ་མ······
ཟད་གཞན་ཡང་ལ་དྭགས་ཡུལ་མི་སྤྱི་ཚོགས་ནང་ལ་དཀལ་ངལ་ཕྲན་ཚེག······
རིགས་མིན་ཆོས་ཉིད་དུ་སོང་རྒྱལ་བའི་ཕྱག་གིས་ཀྱང་སེལ་བར་མི་འགྱུར་ལ།
དེ་མིན་ཆེ་བའི་རིགས་ན་སྤྱིར་སེལ་ཐབས་མང་ལ། བྱེ་བྲག་ཏུ་རང་སྒྲོལ་གནའ་
ལུགས་ཀྱི་རྒྱུན་བཟང་པོ་འདི་ཉིད་ཀྱི་སྟེང་དུ་གཞན་ཕྱོགས་ཀྱི་ལེགས་སྤྱོད་དག··
དང་། ཁྱད་པར་རིགས་ཚད་སོགས་ལ་མ་རྨོངས་པ་བྱ་རྒྱུ་ནི་མི་ཚེའི་དཀའ་
ངལ་ལ་གདོང་ལེན་ཟབ་མོ་ཞིག་ཡིན་པ་ཙམ་དུ་མ་ཟད་ཕྱི་མའི་གནས་སྐབས···
ལ་ཡང་མེད་དུ་མི་རུང་བ་ཡིན་ཏེ

རིག་པའི་གནས་ལྔ་དག་ལ་མཁས་པར་མ་བྱས་ན། །
འཕགས་མཆོག་གིས་ཀྱང་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་ཉིད་ཐོབ་མི་འགྱུར། །

ཞེས་ཇེ་སྐད་གསུངས་པ་ལྟར་ཡིན་ཞིང་། །

དེས་ན་བློ་གསལ་གཞོན་ནུ་དག་ནས་སྤྱངས་པ་ཕྱོགས་མེད་དུ་མཛད····
དགོས་པ་ནི་གལ་ཆེ་བ་ཡིན་ལ། གང་ལྟར་ལ་དྭགས་མི་མང་ཐམས་ཅད་དེང་

དུས་ཀྱི་གང་དམངས་གཙོ་ལུགས་བཟང་དེའི་དབྱེ་འཁྲིད་ཀྱི་འོག་རང་དབང་ཡོད་···
བཞིན་པར་གནའ་ཟས་གནའ་གོས་གནའ་ལུགས་ཐམས་ཅད་དོར་བའམ་ཉུབ···
དུ་འཇུག་ན་ཏ་ཙང་བློ་ཕམ་གྱི་རང་བཞིན་དུ་སོང་འདིའི་ཐད་ལ་ལ་དགས······
མཆོག་དམན་གུན་གཞོན་མཐའ་དག་ལ་རག་ལས་པར་མཐོང་ཆོས་སྲུ་གྲུབ་པོ། །

རིགས་ཀྱི་ཕྱོགས་དང་ཆོས་ཀྱི་ཕྱོགས་གཅིག་པའི། །
སྐྱེ་བོ་བདག་འདྲས་རིངས་ནས་བརྟག་པ་ཡི། །
གནས་ཚུལ་ཇི་བཞིན་བརྗོད་པའི་འཛེ་སྐེག་མ། །
ལྷག་བསམ་ལང་ཚོ་གྲུས་བཞིན་ལུགས་གཉིས་ཀྱི། །
འདྲེན་བྱེད་ཟུང་མཛེས་འཕྲུལ་གྱི་ཟློས་གར་མཁན། །
དབྱངས་ཅན་ལྷ་མོ་འི་མགྲིན་བཞིན་ལུགས་བཟང་གི། །
དེ་ཉིད་བསྟད་པའི་གཏམ་འདི་གླུར་བླངས་པས། །
དྲི་ཟའི་བུ་མོའང་བཞིན་འགྱུར་འཕྱུར་ཁའི་གནས། །
འདོད་གདུང་སྐྱེས་བུ་དར་བབ་གཞུར་གནས་ཀུན། །
ལུས་སེམས་སིམ་པའི་རེག་བྱས་མ་ངོམས་ཅམ། །
ནམ་དཀར་འཁྲབ་སྟེགས་འདི་ལ་རབ་གཞོལ་ནས། །
གདན་བདེའི་འཇུག་ངོགས་རིམ་བཞིན་བསྒོ་བར་སྤྱིད། །

ཅེས་པ་འདི་ཡང་ཕྲན་རྒྱལ་དབང་འབྲུག་པ་བཅུ་གཉིས་པར་བསྟོད་པ···
འཇིགས་མེད་པདྨ་དབང་ཆེན་གྱིས་གང་ཤར་དུ་བྲིས་པའོ།། ||

རིགས་གནས་བཅུའི་སྐོར

སྐྱབས་རྗེ་སྨྲས་རིན་པོ་ཆེ།

ད་ལམ་འདིར་ཚོགས་འདིའི་དབྱ་སྐྱོང་མཆོག་གི་གཙོས་ཚོགས་པ་ལྷན་རྒྱས་ལ་ཕྱུ་རྒྱུ། དེང་སྐབས་རིག་གནས་སྐོར་ལ་ཚོགས་འདུ་ཚོགས་རྒྱུ་དེ། ཤིན་ཏུ་གནད་དོན་ཆེ་བ་ཞིག་ཡིན། ཅིའི་ཕྱིར་ཕྱུ་ན། ཇི་སྐད་དུ།

རིག་པའི་གནས་ལྔ་དག་ལ་མཁས་པར་མ་བྱས་ན། །
འཕགས་མཆོག་གིས་ཀྱང་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་ཉིད་ཐོབ་མི་འགྱུར། །
དེ་ལྟ་བས་ན་གཞན་དག་ཚར་བཅད་རྗེས་བཟུང་ཞིང་། །
རང་ཉིད་ཀུན་ཤེས་བྱ་ཕྱིར་དེ་ལ་དེར་བརྩོན་བྱ། །

ཞེས་གསུངས་པ་ལྟར་གདུལ་བྱ་གཞན་གྱི་རྫོད་བྱེད་ཚིག་ལ་འཁྲུལ་པ་ཚར་གཅོད་པའི་ཕྱིར་སྒྲ་རིག་པ་དང་། བརྗོད་བྱ་དོན་ལ་འཁྲུལ་པ་ཚར་གཅོད་པའི་ཕྱིར་གཏན་ཚིག་རིག་པ། དེ་ལྟར་ཚར་བཅད་ནས་རྗེས་སུ་བཟུང་ཕྱིར་བཟོ་དང་། གསོ་བ་རིག་པ། རྗེས་སུ་བཟུང་ནས་རང་དང་གཞན་གྱིས་ཤེས་པར་བྱ་བའི་གཙོ་བོ་ནང་དོན་རིག་པ་ཡིན། དེ་ལྔའི་ནང་ནས་དང་པོ་བཞི་ཕྱི་ནང་ཐུན་མོང་བ་དང་། ལྔ་པ་ནང་པ་ཁོ་ནའི་ཐུན་མོང་མ་ཡིན་པ་ཡིན། རིག་པའི་གནས་ཆུང་བ་ལྔ་ནི། སྒྲ་རིག་པའི་ཡན་ལག་སྙན་ངག སྡེབ་སྦྱོར། མངོན་བརྗོད། ཟློས་གར་དང་། དེ་སྟེང་རྩིས་བསྣན་པ་ལྔ་ཡིན། དེ་རྣམས་སོ་སོའི་ངོས་འཛིན་ནི། སྒྲ་རིག་པའི་སྐོར་ལ་འཇམ་དབྱངས་དང་འཇིག་རྟེན་དབང་ཕྱུག་གིས་དུས…………………………………………

······································འཁོར་ལོ་འི་དབྱིངས་དག་ལ་བརྟེན་པར་ཡི་གེ·······བ་ལྷུ་བཙད་ལ་ངར་པའི·············སྒྲ་མདོ་དང་། གཞན་ཡང་མདོ་ཆེན་པོ་བརྒྱད་སོགས་ནང་བཤད་པའི་གཞུང་དེང་སྐབས་······རྒྱ་གར་དུ་གྲགས་ཆེ་བ་རྣམས་ཡིན། གདན་ཚིགས་རིག་པ་ནི་སློབ་དཔོན་ཕྱོགས་གླང་གིས་མཛད་པའི་ཚད་མ་ཀུན་བཏུས་དང་། སློབ་དཔོན་ཆོས་གྲགས་ཀྱིས་མཛད་པའི་སྡེ་བདུན་གྱིས་བསྟན་བཅོས་ནས་གསུངས་པ་ལྟར······རྟོག་གེ་ཚིག་དོན་བརྒྱད་དང་གཙོ་བོར་དེ་ལ་བརྟེན་ནས་ཐར་པ་དང་ཐམས་ཅད་··མཁྱེན་པ་འདི་ལས་རིགས་པའི་གནས་སྐྱབ་ཚུལ་རྣམས་ཡིན། །བཟོ་རིག་པ་ལས་༑ ལུས་བཟོ། ངག་བཟོ། ཡིད་བཟོ་གསུམ་ཡོད། ལུས་བཟོ་ནི་བྲིས་འབུར་སོགས་ལག་པས་བཅོས་པའི་བཟོ་རིགས་རྣམ་པ་བཅུ་དང་། གཞན་ཡང་རིག་པའི་གནས་བཅོ་བརྒྱད་དེ་ལ་བཤད་ཚུལ་མི་འདྲ་བ་བཞི། སྒྲ་རྩལ་དྲུག་ཅུ་རྩ་བཞི་འདོད་པའི་སྒྲ་རྩལ་དྲུག་ཅུ་རྩ་བཞི་སོགས་མང་དུ་ཡོད། ངག་བཟོ་ནི་མདོ་རྒྱ་ཆེར་རོལ་པ་ནས་གསུངས་པ་ལྟར་གྱི་ཡིག་རིགས་མི······འདྲ་བ་དྲུག་ཅུ་རྩ་བཞི་སོགས་རྒྱ་བོད་རིགས་མི་འདྲ་བ་རྣམས་ཡིན། ཡིད་བཟ་ནི་ཕོས་བསམ་སྒོམ་གསུམ་དང་སློབ་དཔོན་ཀླུ་སྒྲུབ་ཀྱིས་མཛད་པའི·······བརྟག་པ་བརྒྱད་པ་དང་སྐྱེས་པ་དང་བུད་མེད་ཀྱི་མཚན་ཉིད་བཤད་པ་དང་། ས་བཅུ་ལམ་ལྔ་རྣམས་ཡིན། གསོ་བ་རིག་པ་ནི། འཕགས་པ་ཐོགས་མེད་ཀྱི་གསོ་བ་རིག་པ་བཤད་པའི་སྐབས་“གསོ་བ་རིག་པ་གང་ཞེ་ན། ནད་ཀྱི་ངོ་བོ་ལ་མཁས་པ། ནད་ཅིག་ལས་བྱུང་བ་ལ་མཁས་པ། ནད་བྱུང་བ་བསལ་སྤང་ལ་མཁས་པ། ནད་པས་ལྷ་ནས་ཕྱི་མི་འབྱུང་བ་ལ་མཁས་པ” ཞེས་གསུངས་

པ་ལྟར་གསོ་བ་རིག་པའི་གཞུང་ནས་གྲགས་ཆེ། ནང་དོན་རིག་པ་ནི་གཙོ་བོར་ནང་གི་སེམས་རྒྱུད་འདུལ་ཐབས་བཤད་པ་ཡིན། སེམས་འདུལ་ཚུལ་ཡང་སྡེ་སྣོད་གསུམ་གྱི་བརྗོད་བྱའི་གཙོ་བོ་བསླབ་པ་གསུམ་གྱི་སྒོ་ནས་ཉོན་མོངས་··· འདུལ་ཚུལ་ཡིན། སྔགས་ཀྱི་སྡེ་སྣོད་ཀྱིས་ཀྱང་བརྗོད་བྱ་ཉིང་ངེ་འཛིན་གྱི་བསླབ་པ་བརྗོད་བྱའི་གཙོ་བོར་བསྟན་པ་མདོ་སྡེའི་སྡེ་སྣོད་ཀྱི་ཁོངས་གཏོགས་ཡིན།། ཕྱིར་སྔགས་ཀྱི་སྐད་དོད་མན་ཏྲ་ཞེས་པ་ཡིད་ཐ་མལ་གྱི་སྣང་ཞེན་ལས་སྐྱོབ་པ་ཡིན་དེ། དེ་ཡང་སྔགས་ཀྱི་སྐབས་འབྲས་བུ་སངས་རྒྱས་ཀྱི་འདི་ལས་གནས་ལུས། ལོངས་སྤྱོད་མཛད་པ་ཡོངས་སུ་དག་པ་བཞི་དང་རྣམ་པ་དང་མཐུན་པའི་ལམ་ཉེན་གཞལ་ཡས་ཁང་། རང་ལུས་ལྷ་སྐུ། མཆོད་པ་ལོངས་སྤྱོད་དང་། སྤྱོད་པ་སྤྲོ་བསྡུ་སོགས་སེམས་ཅན་གྱི་དོན་མཛད་ཚུལ་ད ལྟ་ནས་འབྲས་བུ་ལམ་བྱེད་ཀྱི་ཚུལ་དུ་བསྒོམ་རྒྱུ་ཡོད་པས་ན། འབྲས་བུའི་ཐེག་པ་དང་སྔགས་ཀྱི་ཐེག་པ་ཞེས་བརྗོད། ཐབས་ཤེས་དབྱེར་མི་ཕྱེད་པའི་རྣལ་འབྱོར་ཡིན་པས་ན་རྡོ་རྗེ་ཐེག་པ་ཞེས་བརྗོད། །

སྔགས་པ་ཡང་གདུལ་བྱ་མཆོག་དམན་གྱི་དབང་གིས་ཕྱིའི་བྱ་བ་འཁྲུས་དང་གཙང་སྦྲ་སོགས་དང་ནང་ལྷའི་རྣལ་འབྱོར་གཉིས་ཀྱི་ནང་ནས་ཕྱིའི་བྱ་བ··· གཙོ་བོར་སྤྱོད་པ། དེ་གཉིས་ལས་ནང་གི་རྣལ་འབྱོར་གཙོ་བོར་མི་སྤྱོད་པ་ཕྱིའི་དེ་གཉིས་མཉམ་པར་སྤྱོད་པ། དེ་གཉིས་ཀྱི་ནང་ནས་ནང་གི་རྣལ་འབྱོར་གཙོ་བོར་སྤྱོད་པ། ཕྱིའི་བྱ་བ་ལ་མི་ལྟོས་པར་ནང་གི་རྣལ་འབྱོར་གཙོ་བོར་སྤྱོད་པ་བཅས་ཀྱི་སྒོ་ནས་རྒྱུད་སྡེ་བཞིར་འཇོག

རིག་གནས་ཆུང་བ་ལྔ་ཡི་ནང་ནས་སྙན་ངག་ནི། སློབ་དཔོན་དཎྜིའི་གཞུང་ནས་བྱུང་བ་ལྟར་གྲགས་ཆེ། སྡེབ་སྦྱོར་ནི། རྒྱ་གར་གྱི་རྩོམ་ལ་ཡི་གེ་ཚིག་ཡང་སྤེལ་ནས་རྩོམ་པ་དེ་ཡིན། ཚིག་གཏེར་གྱི་ཡན་ལག་ལྔ་ནི། མདོ

འཛིན་པ། རོལ་མོ། ཆས་ཞུགས། བཞད་གད། ཟློས་གར་ཡིན། དེའི་སྨྲ་བཤད་ལུས་ཀྱི་རྣམ་འགྱུར། ཁང་ལག་གི་སྟང་སྟབས། ངག་གིས་སྨྲ་བརྗོད་དུ་མ་ཡང་ཡང་ཟློས་ཤིང་ལུས་ཀྱི་བྱ་གར་བྱེད་པས་ཟློས་གར་ཟེར༎ མཐོང་བརྗོད་ནི་རིག་བྱེད་ཀྱི་གདམ་རྒྱུད་སོགས་ལས་བྱུང་བའི་དོན་གཅིག་ལ་མིང་མང་དུ་འཇུག་ཚུལ་དང་། གྲངས་ཀྱི་མིང་གི་རྣམ་གྲངས་བཅས་ཡིན༎ རྩིས་ནི་གྲངས་ཀྱི་གནས་དྲུག་ཙ་རྩེ་ཚུལ་དང་། དུས་འཁོར་སོགས་ཀྱི་རྒྱུད་ནས་བྱུང་བའི་དཀར་རྩིས་ནག་རྩིས་བཅས་ཡིན།

དེ་ལས་རིག་གནས་ལྔའི་སྐོར་མདོར་བསྡུས་ཞུས་ནས། འདིར་ཚོགས་འདུས་འཚོགས་པའི་དགོས་དོན། རང་རེས་རིག་པའི་གནས་འདི་རྣམས་ལ་གལ་ཆེར་རྩིས་ཏེ། སློབ་སྦྱོང་གོང་འཕེལ་ཐོག་རང་གཞན་ཀུན་ལ་ཕན་པ་རྒྱ་ཆེན་པོ་སྒྲུབ་རྒྱུ་ཚང་མས་ཐུགས་ལ་བཞག་དགོས།

ཚང་མར་བཀྲ་ཤིས་བདེ་ལེགས།

ནང་དོན་རིག་པའི་ངོས་འཛིན།

དགེ་བཤེས་དཀོན་མཆོག་དབང་འདུས་

རིག་གནས་ཆེ་བ་ལྔའི་ནང་གི་ནང་དོན་རིག་པའི་ངོས་འཛིན་དང་། དེ་ལ་ལ་དོགས་སུ་ཐོས་བསམ་སློབ་གཉེར་བྱེད་ཚུལ་བཅས་བཤད་པ་ལ། དང་པོ་ནང་དོན་རིག་པ་ཞེས་པ་ནི། ཕྱིའི་རྒྱལ་བ་ངན་པ་རྣམས་ཚར་བཅད་པ་དང་། བཟང་པོ་རྣམས་སྐྱུད་པར་བྱེད་པའི་ཡན་ལག་ཏུ་གྱུར་པའི་ཐུན་མོང་བའི་རིག་གནས་རྣམས་ལས་ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་པའི་སྐྱེས་བུའི་ནང་གི··· ཤེས་རྒྱུད་འདུལ་བ་དང་། བཟོ་ལྟ་བཟང་པོ་བཟོ་ཐབས་ཀྱི་གཙོ་བོར་གྱུར་པ་ལས་བསླབ་པ་གསུམ་དང་། དེའི་ནང་ནས་ཀུང་ཆོས་དང་གང་ཟག་གི་བདག་མེད་པ་གཉིས་དང་། དེ་གཉིས་ཀྱི་ཡན་ལག་མི་རྟག་སོགས་བཅུ་དྲུག་ལ་སོགས་པའི་ཤེས་བྱའི་གནས་ལུགས་ཕྱིན་ཅི་མ་ལོག་པ་རྟོགས་པའི་ལམ···· དང་། གནས་ལུགས་དེ་དག་ལ་ལོག་པར་ཞུགས་པའི་མ་རིག་པ་ལ་སོགས་པའི་ཕྱིན་ཅི་མ་ལོག་གི་བློ་ངན་ཉོན་མོངས་པ་དང་། དེའི་རྐྱེན་ཁམས་གསུམ་འཁོར་བ་དང་བཅས་པ་ལྡོག་པའི་ཐབས་ལམ་འབྲས་བུ་དང་བཅས་པ་རིག····· པའི་གནས་གང་ཡིན་པ་དེ་ནི་ནང་རིག་པ་ཡིན་ལ། དེ་སྟོན་པའི་གསུང་རབ་ཡན་ལག་བཅུ་གཉིས་དགོངས་འགྲེལ་དང་བཅས་པ་རྣམས་ནི་ནང་དོན་རིག····· པའི་གཞུང་ཡིན་ནོ། །དེ་ཡང་ཚུང་ཟད་རྒྱས་པར་ཕྱེ་ན་གདུལ་བྱའི་སྒོ་ནས་ཕྱུམ་རྒྱས་འབྲིང་བསྡུས་གསུམ་ལ་སོཊ་པའི་ཐེག་ཆེན་གྱི་བཀའ་དང་། འདུལ་བ་ལུང་ལ་སོགས་པའི་ཐེག་དམན་གྱི་བཀའ་གཉིས་ཡོད་དོ། །བརྗོད་བྱའི་སྒོ་ནས་དབྱེ་ན་དངོས་བསྟན་སྟོང་ཉིད་ཀྱི་རིམ་པ་དང་། སྦས་དོན་མངོན་ཏོཊ་ཀྱི་རིམ··· པ་སྟོན་པའི་ཤེར་ཕྱིན་འབུམ་པ་ལ་སོགས་པ་ཤེས་རབ་ཀྱི་བསླབ་པ་བསྟན····

བྱའི་གཙོ་བོར་བྱས་པའི་མངོན་པའི་སྡེ་སྣོད་དང་། ཏིང་ངེ་འཛིན་གྱི་བསླབ་པ་བསྟན་བྱའི་གཙོ་བོར་བྱས་ནས་བསྟན་པའི་མདོ་སྡེ་ཕལ་ཆེན་ལ་སོགས་མདོ་སྡེའི་སྡེ་སྣོད་དང་། ཚུལ་ཁྲིམས་ཀྱི་བསླབ་པ་བསྟན་བྱའི་གཙོ་བོར་བྱས་ནས་བསྟན་པའི་འདུལ་བ་ལུང་བཞི་ལྟ་བུའི་གདུལ་བའི་སྡེ་སྣོད་དང་གསུམ་ཡོད་དོ།།

ཡང་ཐེག་ཆེན་གྱི་སྡེ་སྣོད་ལ་ཆགས་བྲལ་གྱི་སྤྱོད་པ་ལ་དགའ་བ་རྣམས་ལ་གཙོ་བོར་སྟོན་པའི་རྒྱ་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པའི་མདོ་སྡེ་དང་། ཆགས་བཅས་ཀྱི་སྤྱོད་པ་ལ་དགའ་བའི་གདུལ་བྱ་ལ་སྟོན་པའི་གསང་སྔགས་རྡོ་རྗེ་ཐེག་པའི་རྒྱུད་སྡེ་གཉིས་ཡོད། ཕྱི་ནང་རྒྱུད་སྡེ་ལ་གསང་བ་སྤྱི་རྒྱུད་དང་། ལེགས་གྲུབ་ཀྱི་རྒྱུད་དང་། དཔུང་བཟང་གི་ཞུས་པའི་རྒྱུད་སོགས་བྱ་རྒྱུད་དང་། རྣམ་པར་སྣང་མཛད་མངོན་པར་བྱང་ཆུབ་པའི་རྒྱུད་སོགས་སྤྱོད་རྒྱུད་དང་། དཔལ་ལྡན་དེ་ཉིད་བསྡུས་པའི་རྒྱུད་དང་། བཤད་རྒྱུད་རྡོ་རྗེ་རྩེ་མོ་སོགས་རྣལ་འབྱོར་རྒྱུད་དང་། ཕ་རྒྱུད་གསང་བ་བསྡུས་པ་དང་། མ་རྒྱུད་ཀྱེ་རྡོར་དང་། བདེ་མཆོག་དང་། དུས་འཁོར་ལ་སོགས་པ་རྣམས་རྣལ་འབྱོར་བླ་ན་མེད་པའི་རྒྱུད་དེ། རྒྱུད་སྡེ་བཞི་ཡོད་དོ།།

བསྟན་བཅོས་ཀྱི་དབང་དུ་བྱས་ན། ཐེག་པ་ཆེ་ཆུང་དང་། མདོ་དང་རྒྱུད་ལ་སོགས་པའི་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་བཀའ་དེ་དང་དེའི་དགོངས་འགྲེལ་དུ་གྱུར་པའི་བསྟན་བཅོས་དེ་དང་དེའི་ནི་ཐེག་པ་དེ་དང་དེའི་བསྟན་བཅོས་ཡིན་ནོ།། །གྲུབ་མཐའི་དབང་དུ་བྱས་ན་སངས་རྒྱས་ཀྱི་གསུང་རབ་མདོ་རྒྱུད་རྣམས་ལ་སྤྱིའི་ཆ་ནས་གྲུབ་མཐའ་སོ་སོའི་དབྱེ་བ་འབྱེད་རྒྱུ་དཀའ་བས་འདིར་ངལ་བ་མ་བྱས་ཀྱང་བསྟན་བཅོས་ཀྱི་དབང་དུ་བྱས་ན། བྱེ་བྲག་བཤད་མཛོད་དང་། མངོན་པ་སྡེ་བདུན་དང་། མངོན་པ་མཛོད་ལ་སོགས་པ་ཐེག་དམན་གྲུབ་མཐའ་སྨྲ་བའི་བསྟན་བཅོས་དང་། མདོ་སྡེ་རྒྱན་དང་། འབྱེད་རྣམས་

གཉིས་དང་ས་སྡེ་ལྔ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་སེམས་ཙམ་པའི་བསྟན་བཅོས་དང་། དབུ་མ་རིགས་ཚོགས་དྲུག་དང་། བཞི་བརྒྱ་པ་ཙ་འགྲེལ་དང་། དབུ་མ་འཇུག་པའི་ཙ་འགྲེལ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་ནི། དབུ་མ་པའི་བསྟན་བཅོས་ཡིན་ནོ། །དེ་བཞིན་དུ་གསང་སྔགས་རྒྱུད་སྡེ་བཞིའི་དགོངས་འགྲེལ་གྱི་བསྟན་བཅོས་ལ་དབུ་སེམས་གཉིས་ཀའི་བསྟན་བཅོས་མང་དུ་ཡོད་དོ། །

ཐེག་པ་ཆེ་ཆུང་གི་དབྱེ་བ་ལ་ལམ་གྱི་ཐེག་པའི་དབང་དུ་བྱས་པའི་ཆེ་ཆུང་དང་། གྲུབ་མཐའི་དབང་དུ་བྱས་པའི་ཆེ་ཆུང་འབྱེད་ཚུལ་གཉིས་ཡོད་པའི་དང་པོ་ནི། ཆེན་པོ་བདུན་ལྡན་ནམ། ཁུར་ཆེ་བ་སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ཀྱི་དོན་བྱ་འདོད་པའི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་ཀྱིས་ཟིན་པ་དང་། བསྒྲོད་པ་ཆེ་བ་དུས་བསྐལ་ཆེན་གྲངས་མེད་མང་པོ་ལ་སྦྱིན་སོགས་ཕར་ཕྱིན་དྲུག་གི་དཀའ་སྤྱད་ཚད་མེད་པ་ལ་མི་འཇིགས་པ་དང་། འབྲས་བུ་ཆེ་བ་སྐྱོན་ཀུན་ཟད་ཡོན་ཏན་ཀུན་ལྡན་གྱི་བླ་མེད་བྱང་ཆུབ་ཐོབ་བྱེད་དུ་བརྩོན་པའི་ལམ་དང་ལྡན་པའི་ཐེག་པ་ལ་ཐེག་པ་ཆེན་པོ་དང་། དེ་ལ་དབྱེ་ན་རྒྱུ་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་དང་། འབྲས་བུ་གསང་སྔགས་རྡོ་རྗེ་ཐེག་པ་གཉིས་ཡོད། དེ་ལྟར་མིན་པ་རང་ཉིད་ཐར་བར་འདོད་པའི་སྒོ་ནས་ལམ་ལ་བརྩོན་པའི་སྐྱེས་བུ་ལ་ཐེག་དམན་པ་ཟེར་བ་ཡིན། དེ་ལ་ཉན་རང་གཉིས་ཡོད། ཕྱི་མ་གྲུབ་མཐའི་དབང་དུ་བྱས་ན། ཆོས་ཀྱི་བདག་མེད་དང་། ཐེག་ཆེན་གྱི་བཀའ་ལ་སོགས་པ་ཁས་ལེན་པའི་གྲུབ་མཐའ་བ་ལ་ཐེག་ཆེན་པ་དང་། དེ་དག་ཁས་མི་ལེན་པའི་གྲུབ་མཐའ་སྨྲ་བ་ལ་ཐེག་དམན་གྲུབ་མཐའ་སྨྲ་བ་ཟེར། མཚན་གཞི་ནི་དབུ་སེམས་གཉིས་དང་པོ་དང་། ཉན་ཐོས་སྡེ་གཉིས་ཕྱི་མ་ཡིན་ནོ། །

དེ་འདྲའི་ལམ་གྱི་དབང་དུ་བྱས་པའི་ཐེག་ཆེན་དང་། གྲུབ་མཐའི་དབང་དུ་བྱས་པའི་ཐེག་ཆེན་པ་གཉིས་ལ་མུ་བཞི་དང་། དེ་འདྲའི་ཐེག་དམན་

གཉིས་ལ་ཡང་སྦྱ་བཞི་འཇོག་དགོས་པ་ཡིན་ནོ། །ཐེག་པ་ཆེན་པོ་རྒྱ་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པའི་ཐེག་པ་དང་། འབྲས་བུ་གསང་སྔགས་རྡོ་རྗེ་ཐེག་པ་གཉིས་ཀྱི་ཁྱད་པར་དབྱེ་ཚུལ་མང་དུ་ཡོད་ཀྱང་། མདོར་བསྡུས་ཙམ་ཞུ་ན། ཐེག་པ་དེ་ལ་རྒྱུ་ངེས་འབྱུང་བྱང་སེམས་ཡང་དག་པའི་ལྟ་བ་གསུམ་ཚང་དགོས་པ་དང་། འབྲས་བུ་སངས་རྒྱས་ལ་སྦྱང་བྱ་ཐམས་ཅད་སྦྱངས་པ་དང་། འཐོབ་བྱའི་ཡོན་ཏན་དང་། སྐུ་བཞི་ལ་སོགས་པ་ཕྲ་རགས་དང་། ཆེ་ཆུང་ག་ཁྱད་པར་མེད་ཀྱང་ལམ་གྱི་གནས་སྐབས་ལ་ཁྱད་པར་ཆེན་པོ་ཡོད་དེ། མདོ་ཕྱོགས་ནས་བཤད་པའི་ལམ་གྱི་ངོ་བོ་ལ་སངས་རྒྱས་ཀྱི་སྐུ་གཉིས……ཀྱི་ནང་ནས་གཟུགས་སྐུ་སྒྲུབ་བྱེད་ཀྱི་ཉེར་ལེན་གྱི་རྒྱུ་སྒོམ་པ་མེད་ལ། སྔགས་ཕྱོགས་ལ་དེ་འདྲའི་རིགས་འདྲའི་རྒྱུ་ལྷ་སྐུ་ཕྲ་རགས་སྒོམ་པ་ལ་སོགས……པའི་སངས་རྒྱས་ཀྱི་སའི་འབྲས་བུ་ཡོངས་དག་བཞི་དང་། རྣམ་པ་མཐུན་པའི་རྒྱུ་ད་ལྟའི་ལམ་དུས་ནས་ཐོབ་རྒྱུ་ཡོད་པའི་ཁྱད་པར་ལ་སོགས་པ་ཡོད་དོ། །

ནང་དོན་རིག་པ་ཉམས་སུ་ལེན་ཚུལ་ལ་སྤྱི་འི་དབང་དུ་བྱས་ན་སངས་རྒྱས་ཀྱི་གསུང་རབས་ཐམས་ཅད་གང་ཟག་གཅིག་འཚང་རྒྱ་བའི་དོན་དུ……གསུངས་པ་ཡིན་པས། གང་ཟག་ཅིག་གིས་ཀྱང་མངོན་པར་འཚང་རྒྱ་བ་ལ་ནང་དོན་རིག་པའི་གསུངས་རབས་ཐམས་ཅད་ཀྱི་དོན་ཉམས་སུ་ལེན་དགོས་པས། དེའི་ཚུལ་ནི་བཤེས་གཉེན་བསྟེན་ཚུལ་ནས་སྡུག་བསྔལ་འབྱུང་བའི་རྒྱུ་ནག་……པོ་འི་ལས་ལམ་བཅུ་ལ་སོགས་པ་སྤོང་བ་དང་། བདེ་བ་འབྱུང་བའི་རྒྱུ་དཀར་པོ་དགེ་བའི་ལས་ལམ་བཅུ་ལ་སོགས་པ་ཚུལ་བཞིན་དུ་བསྒྲུབ……པའི་ཡང་དག་པའི་ལྟ་བ་སྐྱེད་པའི་བར་གྱི་སྐྱེས་བུ་ཆུང་ངུའི་ཆོས་སྐོར་རྣམས…རྒྱུད་ལ་སྐྱེ་བར་བྱས་ནས། དེ་ནས་རྟེན་འབྲེལ་བཅུ་གཉིས་དང་། བདེན་པ་བཞིའི་སྒོ་ནས་གནས་ལུགས་མི་རྟག་སོགས་བཅུ་དྲུག་རྟོགས་པའི་སྒོ་ནས…

འཁོར་བའི་འཇུག་ལྡོག་བསམས་ནས་འཁོར་བ་ལས་ཐར་པའི་ཐར་འདོད་ཀྱི···
ངེས་འབྱུང་སྐྱེས་པ་ནས་འཕགས་ལམ་ཡན་ལག་བརྒྱད་ཀྱི་དགྲ་བཅོམ་པའི·····
འབྲས་བུའི་བར་གྱི་སྐྱེས་བུ་འབྲིང་གི་ཆོས་སྐོར་རྣམས་རྒྱུད་ལ་སྐྱེས་ནས་སམ།
ཡང་ན་དང་པོ་ནས་ཐེག་ཆེན་གྱི་རིགས་ཅན་པ་རྣམས་ཀྱིས་མི་རྟག་སོགས·······
བཅུ་དྲུག་རྟོགས་པའི་ལམ་ཐུན་མོང་བ་ལ་བྱམས་སྙིང་རྗེ་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས·····
ཀྱིས་སངས་རྒྱས་ཐོབ་པར་འདོད་པའི་སྒོ་ནས་ལམ་ཐམས་ཅད་ཐབས་ཤེས·····
གཉིས་སམ། ཡང་ན། རང་རྒྱུད་སྨིན་བྱེད་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་དྲུག་དང་།
གཞན་རྒྱུད་སྨིན་བྱེད་བསྡུ་བའི་དངོས་པོ་བཞིའི་སྒོ་ནས་སངས་རྒྱས་སྒྲུབ་པར···
བྱེད་པ་དང་། སྔགས་ལམ་ལ་ཞུགས་ན་གོང་གི་ཐུན་མོང་བའི་རྟོགས་པའི་
ཡོན་ཏན་དེ་རྣམས་ཀྱི་སྟེང་དུ་མཚན་ཉིད་དང་ལྡན་པའི་རྡོ་རྗེ་སློབ་དཔོན་ཞིག···
གི་དྲུང་ནས་རྒྱུད་སྡེ་རང་རང་གི་དབང་རྣམས་རྫོགས་པར་ནོད་དེ། དབང་
དུས་སུ་ཁས་བླངས་པའི་དམ་ཚིག་དང་སྡོམ་པ་རྣམས་མིག་གི་འབྲས་བུ་བཞིན་
དུ་སྲུང་ཐོག་རྒྱུད་སྡེ་འོག་མ་གསུམ་གྱི་ཐོས་བསམ་གཙོ་བོར་གྱུར་པའི·········
མཚན་བཅས་ཀྱི་རྣལ་འབྱོར་དང་། སྒོམ་བྱུང་གི་ངོ་བོར་གྱུར་པའི་མཚན་
མེད་ཀྱི་རྣལ་འབྱོར་རྣམས་རིམ་གྱིས་སྒྲུབས་པ་དང་། བླ་ན་མེད་པའི་རྒྱུད་
ཀྱི་དབང་དུ་བྱས་ན་རྒྱུད་སྨིན་བྱེད་ཡི་དམ་གྱི་ལྷའི་ངོ་བོར་སྐྱེད་པའི་རིམ་པ····
དང་། རྒྱུད་གྲོལ་བྱེད་རང་ལ་རྫོགས་པའི་རྩ་རླུང་ཐིག་ལེ་རྣམས་གནད་
དུ་བསྣུན་པའི་རྫོགས་རིམ་གྱི་རྣལ་འབྱོར་དག་རིམ་གྱི་བསྒྲུ་བས་ཏེ། མཁའ་
སྤྱོད་ཡན་ལག་བདུན་ལྡན་ཟུང་འཇུག་རྡོ་རྗེ་འཆང་གི་གོ་འཕང་སྒྲུབ་པར····
བྱེད་པ་ནི་ནང་དོན་ཉམས་སུ་ལེན་ཚུལ་ཡིན་ནོ། །

ཡང་རྟོགས་པ་དེ་རྣམས་འོག་མ་རང་འགའ་བར་གྱུར་པའི་གནས་
སྐབས་སུ་ཐེག་པ་གོང་མ་གོང་མའི་འབྲས་བུ་ཐོབ་པའི་རྒྱུར་མི་བྱེད་ཀྱང་།

རང་རྒྱུད་ལྡན་གྱི་སྐྱེས་བུ་གོང་མར་གྱུར་པའི་ཚེ་འོག་མ་དང་ཐུན་མོང་བའི······ཡོན་ཏན་དུ་གྱུར་པའི་སྒོ་ནས་གོང་མའི་འབྲས་བུ་རྣམས་ཐོབ་པའི་རྒྱུར་འགྱུར··བ་ཡིན་པས། འོག་མ་རང་འགའ་བ་མ་ཡིན་ཡང་འོག་མའི་རིགས་སུ་གྱུར་པའི་ཡོན་ཏན་དེ་རྣམས་མི་སྤོང་བར་ཡར་ལྡན་དུ་གྱུར་པའི་སྒོ་ནས་སྐྱེས···བུ་གཅིག་གི་རྒྱུ་ལ་ལྡན་དགོས་པ་ཡིན་ནོ། །

སྐབས་བབ་ལ་དྭགས་སུ་ནང་དོན་རིག་པ་ལ་ཇི་ལྟར་སློབ་པའི་ཚུལ་ནི། དགེ་བའི་བཤེས་གཉེན་མཚན་ཉིད་དང་ལྡན་པ་ཞིག་བསྟེན་དེ་བཀའ་སྡེ་སྣོད·····གསུམ་དང་། རྒྱུད་སྡེ་བཞིའི་དོན་རྣམས་ཅི་ནུས་སུ་བསླབས་དེ་གོང་དུ་བཤད་པ་ལྟར་གྱི་སྐྱབས་འགྲོ་ལས་འབྲས་ལ་སོགས་པ་ཡིད་ཆེས་པའི་འཛིག་རྟེན·····པའི་ཡང་དག་པའི་ལྟ་བ་རྒྱུད་ལ་སྐྱེས་དེ་དགེ་བཅུ་དེ་མི་དགེ་བཅུ་སྤོང་གི་ཚུལ་ཁྲིམས་གཞི་རྟེན་དུ་བྱས་པའི་སྒོ་ནས། རྟེན་འབྲེལ་དང་། བདེན་བཞིའི་གནས་ལུགས་བསམ་པའི་སྒོ་ནས་འཁོར་བ་ལ་ཡིད་སྐྱོ་སྟེ། ཐར་པ་འཐོབ་འདོད་བྱུང་བ་ན་བྱམས་སྙིང་རྗེ་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་བསྐྱེད་པར་བྱས་དེ། གཞི་བདེན་པ་གཉིས་ཚུལ་བཞིན་དུ་ཤེས་པར་བྱས་ནས་འབྲས་བུ་སྐུ་གཉིས་འཐོབ··པའི་ཕྱིར་དུ་ལམ་ཐབས་ཤེས་གཉིས་ལ་བསླབ་པར་བྱ་བ་ཡིན། དེ་ཡང་ཐེག་དམན་དང་། ཐུན་མོང་བ་ལ་སློབ་ཚུལ་ནི་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་འདུལ་བའི་ཕྲུག་ལེན་ཐམས་ཅད་གཞི་བཅུ་བདུན་དུ་བསྡུས་ནས་གསུངས་པ་ལྟར་སྡོམ་པ་མ་ཐོབ་པ་འཐོབ་པར་བྱེད་པའི་ཐབས་འདུལ་བ་ལས་གསུངས་པ་ལྟར་གྱི···སྦྱོར་དངོས་མཇུག་གསུམ་ལེགས་པར་ཚང་བའི་ཆོ་ག་ལ་བརྟེན་ནས། རང་གིས་སྲུང་བ་ནུས་ཚོད་དང་བསྟུན་དེ། སོ་ཐར་རིགས་བརྒྱད་གང་ཡང་རུང་བའི་སྡོམ་པ་བླངས་ནས་སྲུང་ཚུལ་ཡང་ཕྱིའི་རྐྱེན་དགེ་བའི་བཤེས་གཉེན་དང་། ནང་གི་རྐྱེན་བསམ་པ་ཕུན་ཚོགས་དང་། སྡོམ་པའི་མི་མཐུན་ཕྱོགས་ངོ་ཤེས་

པ་དང་། བསླབ་པ་ཡོངས་སུ་སྦྱོང་བའི་ཐབས་རྣམས་ལྡན་པ་དང་། བདེ་
བར་གནས་པའི་ཀྱེན་བསྟེན་པའི་སྒོ་ནས་སྲུང་བ་སོགས་བསྲུང་བའི་ཐབས······
རྣམས་ཚང་བར་བྱས་ཏེ། མིག་འབྲས་བཞིན་སྲུང་བ་དང་། ཉམས་
ན་ཕྱིར་བཅོས་ཚུལ་ཡང་ལྟུང་བ་གླིང་དྲན་དང་། སྡོང་མགུ་དབྱུང་གསུམ་
དང་། ནན་ཏུར་གྱི་ལས་ལ་སོགས་པའི་སྒོ་ནས་ལྟུང་བ་རང་རང་གི་མིང་
རིགས་དང་མཐུན་པའི་ཕྱིར་བཅོས་བྱས་ཏེ། རྒྱུད་དག་པར་བྱས་ནས་
སྡོང་བ་བསམ་གཏན་དང་། ཀློག་པ་ཐོས་བསམ་ལ་བརྩོན་པའི་སྒོ་ནས་མཐའ་
གཉིས་སུ་མ་ལྟུང་བ་དང་འབྲེལ། དྲན་པ་ཉེར་བཞག་བཞི་ལ་སོགས་པའི་
ལམ་བྱང་ཕྱོགས་སོ་བདུན་སོགས་ལ་བརྩོན་པར་བྱེད་པ་ནི་ཐུན་མོང་བའི་ལམ··
ཉམས་སུ་ལེན་ཚུལ་མདོ་ཙམ་ཡིན་ནོ། །

རང་ཅག་ལ་དགོས་པ་རྣམས་ནི་མདོ་སྔགས་ཟུང་འབྲེལ་གྱི་ཐེག་པ་
ཆེན་པོ་ལ་དད་པའི་གང་ཟག་ཡིན་པས། དེ་འདྲའི་ལམ་ཉམས་སུ་ལེན་ཚུལ་
ནི་གོང་དུ་བཤད་མ་ཐག་པའི་ཐུན་མོང་བའི་ཡོན་ཏན་དེ་རྣམས་མ་གཏན་དུ······
བྱས་པའི་སྟེང་དུ་ཉིན་ལྟར་སྤྱི་དྲོ་ཡར་ལངས་པ་དང་། ཁྲུས་དང་། ཕྱག་
ལ་སོགས་པ་གནས་ཁང་ཕྱི་དོར་བྱ་བ་སོགས་སྦྱོར་བའི་ཆོས་དྲུག་དང་འབྲེལ··
བའི་ཀུན་སློང་དག་པར་བྱས་ཏེ་རང་གི་རྩ་བའི་བླ་མ་དང་། སངས་རྒྱས་
ཤཱཀྱ་ཐུབ་པ་ལ་སོགས་པའི་ལྷག་པའི་ལྷ་གཉིས་ངོ་བ་དབྱེར་མེད་དུ་སྒོམ······
པའི་སྒོ་ནས་དེ་ལ་ཡན་ལག་བདུན་པ་མཎྜལ་དང་བཅས་ཕུལ་ནས་ཚོགས······
སོགས་སྒྲིབ་སྦྱོང་བྱེད་པ་དང་འབྲེལ་བའི་བླ་མའི་རྣལ་འབྱོར་སྒོམ་པ་དང་།
དགེ་བའི་བཤེས་གཉེན་བསྟེན་ཚུལ་ནས་མཐར་ཟུང་འཇུག་མི་སློབ་པའི་བར་གྱི་
ལམ་ཡོངས་རྫོགས་རང་གི་རྒྱུད་དང་འབྲེལ་ངེས་པར་བསྒོམས་ཏེ། རང་
གི་བསྙེན་བྱར་གྱུར་པའི་ཡི་དམ་གྱི་ལྷ་དེའི་ངོ་བོ་བསྐྱེད་པའི་བདག་བསྐྱེད་རྒྱས··

བསྡུས་ཅི་རིགས་བསྒོམས་དེ། མཆོད་བསྟོད་སྨོན་བཟླས་ཀྱི་རིམ་པ་རྣམས་ལེགས་པར་བྱས་ནས། ཐུན་མཚམས་སུ་ལྷང་སྟེ་གླང་དོར་གྱི་གནས་ལ་ཐུགས་མ་གཡེལ་བའི་སྒོ་ནས་སྦྱིན་སོགས་ཕར་ཕྱིན་དྲུག་དང་། བསྡུ་བའི་དངོས་པོ་བཞི་ལ་སོགས་པ་དང་། གཞན་ཡང་ཞབས་བརྟན་སྐུ་རིམ་དང་འཆད་ཉན་རྩོམ་པ་ལ་སོགས་པའི་གཞན་དོན་བརྩོན་པ་ཅི་ནུས་སུ་འབད་བཞིན་པ་ནི་རང་ཅག་སྐྱ···སེར་གཉིས་ཀའི་ཁྲོད་དུ་མང་ཞིག་ཡོད་པ་ནི་མཐོང་ཆོས་ལྟར་ལགས་སོ། །

ཡང་ཤར་བྱུང་ཞབས་བརྟན་སྐུ་རིམ་གྱི་དོན་ཚུང་ཟད་ཞུ་ན། སྤྱིར་བཏང་ཞབས་བརྟན་བྱེད་ཚུལ་ལ་སྒོ་དུ་མ་ཞིག་ཡོད་ཀྱང་། དོན་ནི་དཀོན་མཆོག་ལ་སྙིང་ཐག་པ་ནས་སྐྱབས་སུ་འགྲོ་བའི་སྒོ་ནས་ལྷག་པའི་ལྷ་གང་ཡང་རུང་བ་ལ··མཆོད་པ་དང་། བསྟོད་པ་དང་། སྨོན་བཟླས་ལ་སོགས་པ་བྱས་པའི་སྒོ་ནས་ཐུགས་བརྒྱུད་བསྐུལ་དེ། དོན་འགྲུབ་པའི་གསོལ་བ་འདེབས་པ་དང་། ཡང་སངས་རྒྱས་ཀྱི་གསུང་རབ་སྒྲོག་པ་ལ་སོགས་པའི་སྒོ་ནས་བསོད་ནམས··བསགས་དེ། 'བསོད་ནམས་ལྡན་པའི་མི་ཡི་བསམ་པ་རྣམས་ཀྱང་འགྲུབ།' ཟེར་བ་ལྟར་འདོད་དོན་འགྲུབ་པའི་གསོལ་བ་འདེབས་པ་དང་། ཡང་འཇིག་རྟེན་ན་གཞན་ལ་བླ་ཛན་ལ་སོགས་པ་བྱིན་ནས་དོན་སྒྲུབ་པར་བྱེད་པ་ལྟར་འཇིག་རྟེན་པའི་ལྷ་ལ་སོགས་པ་ལ་ཡང་མཆོད་གཏོར་བྱིན་ནས་འདོད་དོན་འགྲུབ་པའི་གསོལ་བ་འདེབས་པ་རྣམས་ཡིན་ནོ།། ||

བོད་ཆོས་ལྡན་གྱི་ཡུལ་ནས་ཆོས་ལྡན་མང་ཡུལ་དུ་
སངས་རྒྱས་ཀྱི་བསྟན་པ་དར་ཚུལ།

དགེ་བཤེས་བྱང་ཆུབ་ཚུལ་ཁྲིམས།

དང་པོ་ བོད་དུ་ཆོས་དར་ཚུལ་ :—

ཕྱི་ལོ་མ་བྱུང་གོང་ལོ་ ༥༤༥ ཙམ་གྱི་སྔོན་དུ་བྱོན་པའི་ནང་པ་སངས་…པའི་ཆས་ཀྱི་སྲོལ་བཟང་གསར་དུ་སྟོན་པ་པོ་ སྟོན་པ་ཤཱཀྱའི་རྒྱལ་པོ་འདི་ཉིད་··སྔོན་གྱི་ཐུགས་བསྐྱེད་བཞིན་ཞིང་འདིར་བྱོན་ནས་ཆོས་སྐོར་རིམ་པ་གསུམ་གྱིས་མཚོན་པའི་བླང་དོར་གྱི་གནད་མཐའ་ཡས་པ་གསུངས་ཏེ། སེམས་ཅན་གྲངས་མེད་སྨིན་གྲོལ་ལ་བཀོད། མཐའ་མ་དགུང་ལོ་གྱ་གཅིག་ཏུ་ཕེབས་སྐབས་རྩ་མཆོག་གྲོང་དུ་མྱ་ངན་ལས་འདས་པའི་ཚུལ་བསྟན་ནས་ལོ་ ༡༧༨ ཙམ་…དང་། ཕྱི་ལོ་ ༤༣༣ ཙམ་ནང་བོད་ཀྱི་རྒྱལ་པོ་ལྷ་ཐོ་ཐོ་རིའི་སྐབས་སངས་རྒྱས་ཀྱི་བསྟན་པ་བྱུང་ནས་བྱུང་དུ་དར་གསུངས་པ་ལྟར། བོད་ལྗོངས་སུ་སངས་རྒྱས་ཀྱི་བསྟན་པ་དར་རྒྱས་ཡང་བའི་སྔ་ལྟས་མདོ་སྡེ་ཟ་མ་ཏོག་དང་། དཔང་ཀོང་ཕྱག་རྒྱ་བ་གདན་དྲངས། རྒྱལ་བསྟན་དར་བའི་དབུ་རྙེད། ཕྱི་ལོ་ ༦༢༩ ནང་རྒྱལ་པོ་སྲོང་བཙན་སྒམ་པོའི་སྐབས་ལྷ་ས་གཙུག་ལག་གིས··མཚོན་པའི་མཐའ་འདུལ། ཡང་འདུལ། རུ་གནོན་གྱི་གཙུག་ལག་ཁང་སོགས་གཙུག་ལག་ཁང་མང་དུ་བཞེངས། ལོ་ཙཱ་བ་དང་པོ་ཐོན་མིས་བོད་ཀྱི་ཡིག་གཟུགས་གསར་དུ་སྲོལ་གཏོད་དེ་བརྡ་སྤྲོད་པའི་བསྟན་བཅོས……བརྒྱད་བརྩམས། རྒྱ་གར་ནས་སློབ་དཔོན་ཀུ་མ་ར་སོགས་དང་། བལ་ཡུལ་ནས་སློབ་དཔོན་ཤཱི་ལ་མཉྫུ་སོགས་སྤྱན་དྲངས་ཏེ་མདོ་རྒྱུད་མང་པོ་བོད་··སྐད་དུ་བསྒྱུར་ནས་རྒྱལ་བསྟན་སྲོལ་གཏོད།

དེ་སྐབས་འཆད་ཉན་གྱི་སྲོལ་དེ་ཙམ་མ་དར། ཕྱི་ལོ ༧༥༠ ནང་
རྒྱལ་པོ་ཁྲི་སྲོང་ལྡེའུ་བཙན་གྱི་སྐབས་མཁན་ཆེན་ཞི་བ་འཚོ་འི་ལུང་བསྟན་པ…
བཞིན་སློབ་དཔོན་པདྨ་འབྱུང་གནས་སྤྱན་དྲངས། སློབ་དཔོན་གྱི་རྒྱལ་བསྟན་
དར་སྤེལ་ལ་གནོད་པའི་ནག་ཕྱོགས་རྣམས་དམ་ལ་བཏགས། བསམ་ཡས་
མི་འགྱུར་ལྷུན་གྱིས་གྲུབ་པའི་གཙུག་ལག་ཁང་ཡང་བཞེངས། མཁན་ཆེན་
ཞི་བ་འཚོ་སོགས་དགེ་སློང་བཅུ་གཉིས་སྤྱན་དྲངས་ནས། བོད་ཕྲུག་བྲ།
གསལ། མང་སོགས་བདུན་གྱིས་རབ་བྱུང་དང་། བསྙེན་རྫོགས་ཀྱི་སྡོམ་
པ་བླངས། རབ་བྱུང་གི་སྡེ་བཙུགས། འདི་རྣམས་བོད་ཀྱི་རབ་བྱུང་
གི་དང་པོ་ཡིན། སློབ་དཔོན་བི་མ་ལ་མི་ཏྲ་དང་། སངས་རྒྱས་གསང་
བ་སོགས་པཎ་ཆེན་བརྒྱ་རྩ་བརྒྱད་དུ་གྲགས་པ་རྣམས་དང་། བོད་ཀྱི་ལོ་ཙཱ་
བ་བཻ་རོ་ཙ་ན་སོགས་ལོ་པཎ་དེ་དག་གི་མདོ་རྒྱུད་སྣ་ཚོགས་དང་། དེ་དག་
གི་དགོངས་འགྲེལ་གཙོ་ཆེ་རྣམས་བོད་སྐད་དུ་བསྒྱུར་ཏེ་བཤད་སྒྲུབ་ཀྱི……
འདུས་སྡེ་མང་པོ་བཙུགས་སོ། །

ཕྱི་ལོ་ ༨༦༦ ནང་མངའ་བདག་ཁྲི་རལ་གྱི་སྐབས་དགེ་འདུན་གྱི…
འདུས་སྡེ་སྔར་ལས་ལྷག་པར་དར་སྤེལ་མཛད། གཙུག་ལག་ཁང་སྟོང་རྩ་
བཞེངས། ཨཱ་ཙཪྻ་ཛི་ན་མི་ཏྲ་སོགས་སྤྱན་དྲངས་ནས་སྔར་བསྒྱུར་བཀའ་
བསྟན་ནང་བོད་སྐད་དུ་མ་གྲགས་པ་དང་། དོན་དག་གོ་དཀའ་བ་རྣམས་
བསལ་ནས་ཐེག་པ་ཆེ་ཆུང་གི་གཞུང་དང་མཐུན་པར་བསྒྱུར་བཅོས་མཛད་དེ…..
བཀའ་བསྟན་ལ་དག་ཐེར་སྐད་དུ་བྱུང་བ་མཛད་པ་ཡིན། འདི་ཡན་ཆད་
ལ་ 'བསྟན་པ་སྔ་དར་' ཞེས་གྲགས། ཕྱི་ལོ་ ༨༤༢ ནང་རྒྱལ་པོ་གླེང་དར་
སྐབས་རབ་བྱུང་རྣམས་ཁྲིམ་དུ་ཕབ། རྒྱལ་བའི་སྐུ་གསུང་ཐུགས་རྟེན་རྣམས་
བཤིག་སྟེ་བསྟན་པ་ལ་གནོད་ཚབ་ཚད་མེད་བྱས། ལོ་བརྒྱད་ཅུ་ཙམ་གྱི་

རིང་བོད་དབུས་གཙང་ཁུལ་དུ་རབ་བྱུང་གི་དགུས་ཙམ་འཛིན་པ་མེད་པར་གྱུར། ཕྱི་ལོ་ ༡༧༨ ནང་དམར་གཡོ་གཙང་གསུམ་སོཊ་ཀྱིས་མདོ་སྨད་ནས་དབུས་གཙང་ཕྱོགས་དང་། ཧྥི་པ་ལ་ལ་སོགས་མངའ་རིས་སུ་བྱོན་ཏེ་སྟོད་ཕྱོགས་ནས་རབ་བྱུང་གི་འདུས་སྡེ་བཙུགས་ནས་རབ་བྱུང་ཡར་ཟླ་བཞིན……འཕེལ༑ ལོ་ཆེན་རིན་ཆེན་བཟང་པོ་དང་། ལེགས་པའི་ཤེས་རབ་སོགས་བོད་ལོ་ཙཱ་རྣམས་དང་། རྒྱ་བལ་ནས་བྱོན་པའི་ལོ་པཎ་རྣམས་ཀྱིས་མདོ་རྒྱུད་དུ་མ་བོད་སྐད་དུ་བསྒྱུར། དེ་དག་གི་དུས་སྐབས་རྒྱལ་བསྟན་བདག་གིར་བཞེས་པའི་བོད་ཀྱི་མཁས་གྲུབ་རིམ་བྱོན་རྣམས་ཀྱིས་ཀྱང་བཀའ་བསྟན་དེ་དག་ལ་དྲི་མ་མེད་པའི་དགོངས་འགྲེལ་གྱི་བསྟན་བཅོས་མཐའ་ཡས་པ་མཛད་ནས་བཤད་སྒྲུབ་གཉིས་ཀྱི་སྒོ་ནས་རྒྱལ་བསྟན་སྤྱི་དང་རང་རང་གི་ཆོས་རྒྱུད……རྣམས་དབྱར་གྱི་ཆུ་གཏེར་བཞིན་དར་སྤེལ་མཛད་པ་ཡིན་ནོ། །

ལ་དྭགས་སུ་སངས་རྒྱས་ཀྱི་བསྟན་པ་དར་ཚུལ༔—

ཕྱི་ལོ་མ་བྱུང་གོང་བརྒྱ་ཕྲག་ལྔ་པའི་ནང་ཙམ་ན་དགྲ་བཅོམ་ཉི་མ་དཀྱུང་པ་གཡུང་དྲུང་དང་། དཔེ་ཐུབ་དང་། ལྷམ་ར་རྣམས་སུ་བྱོན་ཏེ་ཡུལ་ལུང་བྱིན་རླབས་མཛད་པ་ངག་རྒྱུན་ཙམ་དང་། ཕྱི་ལོ་བརྒྱ་ཕྲག་བརྒྱད་པ་ཡན་མན་ལ་སློབ་དཔོན་པདྨ་འབྱུང་གནས་ཟངས་དཀར་བསམ་ཡས་སོགས་དང་། བྲག་ཐོག་དང་། ཐོབ་དཀར་སོགས་སུ་བྱོན་ནས་སྒྲུབ་པ་ཉམས་ལེན་མཛད་པའི་གྲུབ་ཁང་དང་། དེ་བཞིན་ཕྱི་ལོ་ ༡༠༣༠ ནང་པཎ་ཆེན་ན་རོ་པ་ཟངས་དཀར་དང་། གཡུང་དྲུང་རྣམས་སུ་བྱོན་ཏེ་སྒྲུབ་པ་ཉམས་ལེན་མཛད་པའི་བཞུགས་ཁང་ཐུན་མོང་དུ་མཇལ་རྒྱུ་ཡོད་ཀྱང་། གྲུབ་ཆེན་དེ་དག་གིས་གཙུག་ལག་ཁང་བཞེངས་པ་དང་། འདུས་སྡེ་བཙུགས་པ་དང་།

མང་ཚོགས་སུ་ཆོས་འཆད་སྤེལ་མཛད་པའི་ལོ་རྒྱུས་ཆེར་མི་སྣང་། དེ་བཞིན་ལོ་ཆེན་གྱི་གོང་དུ་བོད་ནས་མཁས་གྲུབ་འགའ་རེ་ལ་དྭགས་སུ་ཕེབས་ཚད་……ཀྱང་ཆོས་འཆད་སྤེལ་དང་སྐུ་གསུང་ཐུགས་རྟེན་བཞེངས་པ་དང་། དགེ་འདུན་གྱི་སྡེ་བཙུགས་པའི་ལོ་རྒྱུས་མ་མཇལ། དེ་འདྲའི་ལམ་སྲོལ་ནི་ལོ་ཆེན་རིན་ཆེན་བཟང་པོས་དབུ་བཙུགས་ཏེ་བོད་ཀྱི་མཁས་གྲུབ་ཁ་ཤས་ལ་དྭགས་སུ་བྱོན་པ་དང་། ལ་དྭགས་ཀྱི་སློབ་གཉེར་བ་ཁ་ཤས་བོད་དུ་ཕེབས་སློབ་གཉེར་མཐར་ཕྱིན་མཛད་དེ་ལོག་ནས་སོང་དུ་དར་བའི་ཆོས་རྒྱུད་རྣམས་མང་ཡུལ་ལ་དྭགས་འདི་ཁུལ་དུ་བཙུགས་པར་མཛད་པ་ཡིན།

བོད་ལྗོངས་སུ་ཆོས་རྒྱུད་དར་རིམ།

དང་པོ་སྙིང་མ། དེ་ནས་བཀའ་གདམས་པ། དེ་ནས་ས་སྐྱ། དེ་ནས་གཀའ་རྒྱུད། དེ་ནས་དགེ་ལུགས་བཅས་དར། ཡང་ལ་དྭགས་འདི་ཁུལ་དང་པོ་བཀའ་གདམས་པ། དེ་ནས་ས་སྐྱ། དེ་ནས་དགེ་ལུགས། དེ་ནས་འབྲི་གུང་བཀའ་བརྒྱུད། དེ་ནས་འབྲུག་པ་བཀའ་བརྒྱུད་བཅས་རིམ་བཞིན་དར་རྒྱས་བྱུང་།

བཀའ་གདམས་པའི་བསྟན་པ་ནི།

ལ་དྭགས་རྒྱལ་པོ་གཉིས་པ་ཆོས་མགོན་གྱི་དུས་ཕྱི་ལོ་བརྒྱ་ཕྲག་དགུ་པའི་མཇུག་ཙམ་ལ་ལོ་ཙཱ་བ་རིན་ཆེན་བཟང་པོ་མང་ཡུལ་ལ་དྭགས……སུ་བྱོན། ཉར་མ་དང་། ཨ་ལྕི་དང་། གཡུང་དྲུང་། སྤྱི་མདའ། པ་མགོ དཔེ་ཐུབ་སོགས་སུ་ལྷ་ཁང་དང་མཆོད་རྟེན་མང་པོ་བཞེངས། ལྷ་ཁང་རྣམས་སུ་ཆོས་བཅོ། ཉེར་ལྔ་དང་། བསྟེན་གནས་ཚོགས་པ། སྨྱུན་

རས་གཟིགས་ཀྱི་མཚན་སྔགས་འདོན་པའི་སྲོལ་བཟང་འཛུགས་པར་མཛད། ཉེར་མ་སོགས་འགའ་ཤས་ལ་དགེ་འདུན་གྱི་སྡེ་ཡང་འཛུགས་པར་མཛད་དེ་... བཀའ་གདམས་པའི་ཕྱག་སྲོལ་དར་རྒྱས་མཛད། བཀའ་གདམས་པའི་ཆོས་བརྒྱུད་བྱུང་ཚུལ་ནི། ཕྱི་ལོ་ ༡༠༣༧ ལོར་ཇོ་བོ་དཔལ་ལྡན་ཨ་ཏི་ཤ་བོད་དུ་བྱོན་ཏེ་ལོ་ངོ་བཅུ་བདུན་རིང་སྨྲས་ཀྱི་གཙོ་བོ་འབྲོམ་སྟོན་རྒྱལ་བའི་...... འབྱུང་གནས་སོགས་ལ་མདོ་རྒྱུད་དགོངས་འགྲེལ་ཐམས་ཅད་གདམས་ངག་... ཏུ་འཆར་བའི་གདམས་ངག་གསུངས། ཕྱི་ལོ་ ༡༠༤༧ ལོར་འབྲོམ་སྟོན་པས་བོད་དབུས་སྲུ་ར་སྒྲིང་དགོན་པ་བཞེངས། དགེ་འདུན་གྱི་འདུས་སྡེ་དང་འཆད་ཉན་བཙུགས། ཁ་ཐོག་འབྲོམ་གསུམ་སོགས་ནས་བརྒྱུད་པ་ལ་བཀའ་གདམས་པ་ཞེས། གདམས་ངག་གི་ཆ་ནས་མཚན་ཐོགས་པ་ཡིན་ནོ། །

དཔལ་ལྡན་ས་སྐྱའི་ཆོས་བརྒྱུད་དར་ཚུལ་ནི།

རྒྱལ་རབས་བཅོ་ལྔ་པ་ལྷ་ཆེན་ཁྲི་གཙུག་སྡེའི་དུས་ཕྱི་ལོ་ ༡༣༢༦ ནང་ཟླ་མ་དྲུང་པ་རྡོ་རྗེས་མང་སྒྲོ་དགོན་པ་ཐུབ་བསྟན་ཤ་སྐྱིང་ཆོས་འཁོར་..... ཞེས་པ་གསར་དུ་བཞེངས་ཏེ། དགེ་འདུན་གྱི་འདུས་སྡེ་དཔལ་ལྡན་ས་སྐྱའི་ཕྱག་བཞེས་གསར་དུ་བཙུགས་ཏེ། ས་སྐྱའི་ཆོས་བརྒྱུད་དར་སྤེལ་མཛད། ས་སྐྱའི་ཆོས་བརྒྱུད་ཐོག་མར་བྱུང་ཚུལ་ནི། ཕྱི་ལོ་ ༡༠༣༩ ལོར་འཁྲུངས་པའི་འཁོན་དཀོན་མཆོག་རྒྱལ་པོས་འབྲོག་མི་ལོ་ཙཱ་བའི་དྲུང་ནས་ཀྱཻ་རྡོ་པ་... དང་། པཎ་ཆེན་ག་ཡ་དྷ་ར་ནས་བརྒྱུད་པའི་ལམ་འབྲས་གསན་ནས་ཕྱི་ལོ་ ༡༠༥༨ ལོར་ས་སྐྱར་དགོན་པ་བཞེངས། དགེ་འདུན་གྱི་སྡེ་དང་། བཤད་སྒྲུབ་ཀྱི་ཆོས་འཆད་ཉན་བཙུགས། དེ་ནས་པཎ་ཆེན་གོང་མ་རྣམ་ལྔ་སོགས་ནས་བརྒྱུད་པ་ལ་ས་སྐྱའི་ཆོས་བརྒྱུད་ཞེས་པ། དགོན་པ་ཆགས་

ཡུལ་གནས་ཀྱི་ཆ་ནས་མཚན་གྲོགས།

དགེ་ལུགས་པའི་ཆོས་རྒྱུད་དར་ཚུལ་ནི།

རྒྱལ་རབས་བཅུ་དྲུག་པ་རྒྱལ་པོ་གྲགས་པ་འབྱུམ་སྡེའི་སྐབས་ཕྱི་… ལོ་ ༡༤༡༦ ཡན་མན་ཙམ་ལ་རྗེ་ཙོང་ཁ་པའི་ངོས་སློབ་བྱང་སེམས་ཤེས་… རབ་བཟང་པོས་སྟག་མོར་“ལྷ་ཁང་སེར་པོ” ཞེས་པའི་དགོན་པ་བཞེངས། འདུས་སྡེ་དང་། རྗེ་ཙོང་ཁ་པའི་ཕྱག་བཞེས་བཙུགས། ཕྱི་ལོ་ ༡༤༢༠ ནང་ལྷུམ་རར་བདེ་དགོན་“དགའ་ལྡན་བཀྲ་ཤིས་ཆོས་གླིང” ཞེས་པ་བཞེངས། འདུས་སྡེ་དང་། རྗེ་ཙོང་ཁ་པའི་ཕྱག་བཞེས་བཙུགས་པར་མཛད། ཕྱི་ལོ་ ༡༤༢༠ ནང་ཟང་དཀར་དཀར་ཤ་བྱམས་པ་ཆོས་གླིང་དུ་རྗེ་ཙོང་ཁ་པའི་ཕྱག་རྗེས་བཙུགས་པར་མཛད། ཕྱི་ལོ་ ༡༤༤༧ ནང་ཕྱག་དལ་དགོན་ལ་རྗེ་ཙོང་ཁ་པའི་ཕྱག་བཞེས་བཙུགས་པར་མཛད། དཀར་ཤ་བྱམས་པ་ཆོས་གླིང་ནི་དང་པོ་ཟངས་དཀར་ལོ་ཙྪ་བ་འཕགས་པ་ཤེས་རབ་ཀྱིས་ཕྱག་བདབས།། བར་དུ་སློབ་དཔོན་མདོ་སྡེ་རིན་ཆེན་གྱིས་དར་རྒྱས་མཛད། མཐའ་མར་བྱང་སེམས་ཤེས་རབ་བཟང་པོས་རྗེ་ཙོང་ཁ་པའི་ཕྱག་བཞེས…… བཙུགས་པ་ཡིན། ཕྱག་དལ་དགོན་པ་ནི་དང་པོ་ཟངས་དཀར་ལོ་ཙ་བ་འཕགས་པ་ཤེས་རབ་ཀྱིས་བཞེངས། བར་དུ་སློབ་དཔོན་མདོ་སྡེ་རིན་ཆེན་གྱིས་དར་རྒྱས་མཛད། མཐའ་མར་བྱང་སེམས་ཤེས་རབ་བཟང་པོས་རྗེ་ཙོང་ཁ་པའི་ཕྱག་བཞེས་བཙུགས་པར་མཛད་པ་ཡིན། བྱང་སེམས་ཤེས་རབ་བཟང་པོ་ནི་ལ་དྭགས་ཁྲི་རྩེའི་ཡུལ་དུ་སྐུ་འཁྲུངས། བོད་དུ་སློབ་གཉེར་ལ་ཕེབས་ཏེ་རྗེ་ཙོང་ཁ་པའི་དྲུང་ནས་མདོ་སྔགས་ཀྱི་གདམས་ངག…… རྣམས་གསན། མང་ཡུལ་ལ་དྭགས་སུ་ལོག་ནས་སངས་རྒྱས་ཀྱི་བསྟན་པ་

དར་སྤེལ་མཛད་མཁན་ཞིག་ཡིན་འདུག   བྱང་སེམས་ཤེར་བཟང་གི་དངོས་སློབ་དཔལ་ལྡན་ཤེས་རབ་ཕྱི་ལོ་ ༡༠༥༦ ནང་ཁྲི་རྩེ་ཚུལ་ཁྲིམས་རྣམ་དག་…བླང་བཞེངས་པར་མཛད།   དགེ་འདུན་གྱི་འདུས་སྡེ་དང་།   རྫོང་ཁ་པའི་ཕྱག་བཞེད་བཙུགས།   རྒྱལ་རབས་བཅུ་དྲུག་པ་ཆོས་རྒྱལ་གྲགས་པ་འབྱུར་སྡེའི་སྐབས་སུ་མཁས་གྲུབ་རྗེའི་དངོས་སློབ་གསང་ཕུ་བ་ལྷ་དབང་བློ་…གྲོས་ཀྱིས་ཕྱི་ལོ་ ༡༤༠༠ ནང་དཔེ་ཐུབ་དགོན་པར་རྫོང་ཁ་པའི་ཕྱག་བཞེད་…བཙུགས།   དེ་བཞིན་ཀླུ་འཁྱིལ་དགོན་པར་ཡང་རྫོང་ཁ་པའི་ཕྱག་བཞེད་བཙུགས།   དཔེ་ཐུབ་དགོན་ནི།   དང་པོ་དགྲ་བཅོམ་ཉི་མ་གྲུང་པས་བྱིན་གྱིས་བརླབས།   ལྷ་བླ་མ་བྱང་ཆུབ་འོད་ཀྱིས་གཙིན་པོ་ 'འོད་སྡེ' ཞེས་པ་མང་ཡུལ་དུ་ཕེབས།   ཕྱི་ལོ་ ༡༠༡༡ ནང་ལྷ་ཁང་བཞེངས།   དགེ་འདུན་གྱི་སྡེ་བཙུགས།   མཐའ་མ་བླ་མ་ལྷ་དབང་བློ་གྲོས་ཀྱིས་རྫོང་ཁ་པའི་ཕྱག་བཞེད་བཙུགས་པ་ཞིག་ཡིན།

ཀླུ་འཁྱིལ་དགོན་ནི་རྒྱལ་རབས་ (༢༠) ལྷ་ཆེན་རྒྱལ་པོ་འི་སྐབས་བླ་མ་གྲུབ་དབང་ཆོས་རྗེས་ཕྱི་ལོ་ ༡༠༦༤ ནང་ལ་དགོན་པ་བཞེངས། དགེ་འདུན་གྱི་འདུས་སྡེ་བཙུགས།   རྗེས་སུ་བླ་མ་ལྷ་དབང་བློ་གྲོས་ཀྱིས་རྫོང་ཁ་པའི་ཕྱག་བཞེད་བཙུགས་པ་ཞིག་ཡིན།   དེ་བཞིན་བླ་མ་རྒྱལ་མཚན་ཀླུ་སྒྲུབ་ཀྱིས་སྟོང་སྡེ་དགོན་པར་ ༡༥༠༠ ༡༦༠༠ ནང་ལ་རྫོང་ཁ་པའི་ཕྱག་བཞེད་བཙུགས།   སྟོང་སྡེ་དགོན་པ་ནི་སྔར་བླ་མ་མར་པས་ཕྱག་བཏབ་པར་མཛད། དེ་རྗེས་སུ་སྟོང་སྡེ་ཤཱཀྱ་བཟང་པོས་དར་རྒྱས་མཛད།   བླ་མ་རྒྱལ་མཚན་ཀླུ་སྒྲུབ་ཀྱིས་རྗེ་བླ་མའི་ཕྱག་བཞེད་བཙུགས་པའི་དགོན་པ་ཞིག་བཞེངས།

རྒྱལ་པོ་ཚེ་དབང་རྣམ་རྒྱལ་གྱི་སྐབས་སུ་མངའ་རིས་ཚང་ 'བློ་བཟང་དགེ་ལེགས' ཞེས་པར་གྲགས་པས་ཕྱི་ལོ་ ༡༤༣༠ ལོར་རང་ཡུམ་དགོན་པ་ 'བཤད་

སྐྱབ་འཇམ་གླིང་རྒྱན་’ བཞེངས། དགེ་འདུན་གྱི་འདུས་སྡེ་དང་། རྗེ་ཙོང་ཁ་པའི་ཕྱག་བཞེད་བཙུགས། བླ་མ་ཚུལ་ཁྲིམས་ཉི་མས་ཕྱི་ལོ་ ༡༨༠༡ ལོར་རི་རྫོང་དགོན་པ་དབུ་མ་བྱང་ཆུབ་གླིང་དང་། ཕྱི་ལོ་ ༡༨༠༦ ལོར་བསམ་གཏན་གླིང་དགེ་འདུན་གྱི་འདུས་སྡེ་དང་། རྗེ་ ཙོང་ཁ་པའི་ཕྱག་བཞེད་བཙུགས་པར་མཛད། གོང་གསལ་དགོན་ཁག་དེ་དག་མིན་པ་གླིང་ཤོད་སོགས་རྗེ་ཙོང་ཁ་པའི་ཕྱག་བཞེད་མཛད་མཁན་དགོན་ཆུང་ཁ་ཤས་ཡོད་ཀྱང་… དེ་དག་གི་ལོ་རྒྱུས་གསལ་བའི་མ་དཔེ་མ་མཇལ་སྐབས་ཞུ་ནུས་མ་སོང་།

དགེ་ལུགས་པའི་ཆོས་ལུགས་བྱུང་ཚུལ་ནི།—

ཕྱི་ལོ་ ༡༣༥༧ ལོར་འཁྲུངས་པའི་རྗེ་ཙོང་ཁ་པས། རྗེ་བཙུན་རེ་མདའ་བ་ལ་སོགས་པའི་ས་སྐྱ་བཀའ་རྒྱུད་ཀྱི་མཁས་གྲུབ་དུ་མ་དང་། རྗེ་བཙུན་འཇམ་དབྱངས་ལ་བརྟེན་ནས་མདོ་རྒྱུད་དགོངས་འགྲེལ་དང་བཅས་པའི་དགོངས་དོན… འཁྲུལ་མེད་ཐུགས་སུ་ཆུད་ནས་ཕྱི་ལོ་ ༡༤༠༩ ལོར་བོད་དབུས་སུ་དགའ… ལྡན་རྣམ་པར་རྒྱལ་བའི་གླིང་བཞེངས། ངོས་སློབ་རྒྱལ་ཚབ་མཁས་གྲུབ་ནས་བརྒྱུད་པ་ལ་གེ་ལུགས་ཞེས་དགོན་པ་ཆགས་ཡུལ་གནས་ཀྱི་ཆ་ནས་མཚན…… ཐོགས་པ་ཡིན།

འབྲི་གུང་བཀའ་བརྒྱུད་ཀྱི་ཆོས་རྒྱུད་བྱུང་ཚུལ་ནི་—

རྒྱལ་རབས་ཉི་ཤུ་པ་ཆོས་རྒྱལ་འཇམ་དབྱངས་རྣམ་རྒྱལ་གྱི་སྐབས་འབྲི་གུང་ཆོས་རྗེ་ལྡན་མ་ཀུན་དགའ་གྲགས་པས་ཕྱི་ལོ་ ༡༤༣༠ ནང་སྐྱང་སྔོན་བཀྲ་ཤིས་ཆོས་རྫོང་བཞེངས། དགེ་འདུན་གྱི་འདུས་སྡེ་དང་། འབྲི་གུང་བཀའ་བརྒྱུད་ཀྱི་ཕྱག་བཞེད་བཙུགས། ཕྱི་ལོ་ ༡༤༣༣ ཡན་མན་ལ་གཡུང་དྲུང་ཐར་པ་གླིང་ལ་འབྲི་གུང་བཀའ་བརྒྱུད་ཀྱི་ཕྱག་བཞེས་བཙུགས། གཡུང་དྲུང་དགོན་ནི་དགུ་བཅོམ་ཉི་མ་དཀྱུང་པས་གནས་དེར་དགོན་པ་ཆགས་པའི་ལུང་…

བསྟན་། བརྒྱ་ཕྲག་བཅུ་གཅིག་ལ་པཎ་ཆེན་ན་རོ་པས་སྐྱབ་པ་མཛད་ནས་བཞུགས་པའི་སྐྱབ་ཁང་ད་ལྟའང་མཇལ་རྒྱུ་ཡོད། བརྒྱ་ཕྲག་དགུ་པའི་མཇུག་ཙམ་ལ་ལོ་ཆེན་རིན་ཆེན་བཟང་པོས་དགོན་པ་དང་། དགེ་འདུན་གྱི་འདུས་སྡེ་དང་། བཀའ་གདམས་པའི་ཕྱག་བཞེད་བཙུགས། རྗེས་སུ་ཆོས་རྗེ་ལྷན་མས་འབྲི་གུང་གི་ཕྱག་བཞེད་བཙུགས་པ་ཡིན། དེ་བཞིན་ཤར་དགོན་སོགས་འབྲི་གུང་ཕྱག་བཞེད་ཡོད་པ་འགའ་ཤས་ཡོད་ཀྱང་། དེ་དག་གི་ལོ་རྒྱུས་གསལ་བའི་ཕྱག་དཔེ་མ་མཇལ་བས་འབྲི་མ་ནུས༎ སྤྱིར་འབྲི་གུང་བཀའ་བརྒྱུད་ཀྱི་ཆོས་བརྒྱུད་བྱུང་ཚུལ་ནི། ཕྱི་ལོ་ ༡༠༧༣ ལོར་འཁྲུངས་པའི་རྗེ་མར་པ་ཆོས་ཀྱི་བློ་གྲོས་ཀྱིས་རྒྱ་གར་དུ་ལན་གསུམ་བྱོན་ནས་པཎ་ཆེན་ན་རོ་པ་སོགས་གྲུབ་ཆེན་དུ་མའི་ཞབས་ལ་གདུགས་ནས་ཚད་ལྡན་གྱི་གཞུང་ལུགས་བཤད་བསྒྲུར་མཛད། དེའི་སློབ་མ་རྗེ་བཙུན་མི་ལ་རས་པའི་བརྒྱུད་འཛིན། རྗེ་འཕགས་མོ་གྲུབ་པའི་སློབ་མ་སྐྱོབ་པ་འཇིག་རྟེན་མགོན་པོ། འབྲི་གུང་མཐིལ་གྱི་དགོན་པ་བཞེངས། དགེ་འདུན་གྱི་སྡེ་བཙུགས། དེའི་བརྒྱུད་པ་ལ་'འབྲི་གུང་བཀའ་བརྒྱུད་'ཅེས་དགོན་པ་ཆགས་ཡུལ་གྱི་གནས་ཀྱི་ཆ་ནས་མཚན་ཐོགས་པ་ཡིན།

བྲག་ཐོག་དགོན་པ་ནི། —

རྒྱལ་རིགས་ཉེར་བདུན་པ་ཆོས་རྒྱལ་ཚེ་དབང་རྣམ་རྒྱལ་གྱི་སྐབས་བཀའ་ཐོག་རིག་འཛིན་ཆེན་པོ་ཚེ་དབང་ནོར་བུས་ཕྱི་ལོ་ ༡༨༦༠ ནང་ལ་བྲག་ཐོག་'པདྨ་གླིང་'དུ་ར་ཕྱུས་མཛད། དེར་གསང་སྔགས་རྙིང་མའི་ཆོས་བརྒྱུད་དང་། དེ་འཛིན་པའི་དགེ་འདུན་གྱི་སྡེ་བཙུགས་པར་མཛད། ལ་དྭགས་ནང་གསང་སྔགས་རྙིང་མའི་ཆོས་བརྒྱུད་ཕྱག་བཞེད་མཛད་པའི་དགོན་པ་ཞིག་དང་པོར་བཞེངས་...

པར་མཛད། གསང་སྔགས་རྙིང་མའི་ཆོས་བརྒྱུད་ནི་–

ཕྱི་ལོ་ ༨༡༠ ལོར་སློབ་དཔོན་ཆེན་པོ་པདྨ་འབྱུང་གནས་བོད་དུ་ཕྱིན་ཏེ་… བསམ་ཡས་མཆིམས་ཕུར་སྒྲུབ་སྡེ་ཆེན་པོ་བརྒྱད་ལ་སོགས་པའི་བརྒྱུད་དང་། སྒྲུབ་ཐབས་བསྒྱུར། རྗེ་འབངས་ཉེར་ལྔ་སོགས་ལ་རྡོ་རྗེ་ཐེག་པའི་ཆོས་འཁོར་བསྐོར། དེ་ལས་རིམ་གྱིས་བརྒྱུད་པ་ལ་གསང་སྔགས་རྙིང་མའི་ཆོས་བརྒྱུད་ཅེས་དུས་རབས་ཀྱི་ཆ་ནས་མིང་ཐོགས་པ་ཡིན།

འབྲུག་པ་བཀའ་བརྒྱུད་ཀྱི་ཆོས་ལུགས་བྱུང་ཚུལ་ནི།–

ཕྱི་ལོ་ ༡༤༧༦ ལོར་རྒྱལ་སྲས་བདེ་བ་རྒྱ་མཚོས་ 'བར་གདན་དགོན་' ཕྱག་བཏབས། དགེ་འདུན་གྱི་སྡེ་དང་། འབྲུག་པ་བཀའ་རྒྱུད་ཀྱི་ཕྱག་བཞེད་དར་བར་མཛད། 'བར་གདན་དགོན་' འདི་བཞིན་ཕྱི་ལོ་ ༡༤༧༦ ལོར་བཞེངས་པར་འདོད་པ་དང་། ཡང་ཧེ་མི་དགོན་པ་དང་། དུས་མཉམ་དུ་བཞེངས་པར་འདོད་པ་བཅས། བཞེད་ཚུལ་འདི་འདྲ་བ་གཉིས་སུ་སྣང་ངོ་། །ཆོས་རྒྱལ་འཇམ་དབྱངས་རྣམ་རྒྱལ་གྱི་སྐབས་ཆོས་རྗེ་འཇམ་དབྱངས་པད་དཀར་…གྱིས་ཕྱི་ལོ་ ༡༤༨༠ ལོར་སྟག་སྣ་དགོན་པ་བཞེངས། དགེ་འདུན་གྱི་སྡེ་དང་། ལྷོ་འབྲུག་བཀའ་བརྒྱུད་ཀྱི་ཕྱག་བཞེད་གསར་དུ་བཙུགས་པར་མཛད། རྒྱལ་རབས་ཉི་ཤུ་རྩ་གཅིག་པ་སེངྒེ་རྣམ་རྒྱལ་གྱི་སྐབས་གྲུབ་ཐོབ་བརྒྱད་ཅུའི་ཞལ་…མངོན་སུམ་དུ་གཟིགས་པའི་ཟླ་ཤ་སྟག་ཚང་རས་པས་ཕྱི་ལོ་ ༡༦༣༡ ལོར་ལྷེ…བདེ་དགོན་པ། ཕྱི་ལོ་ ༡༦༢༦ ལོར་ཧེ་མི་དགོན་པ་བྱང་ཆུབ་བསམ་གླིང་གཉིས་གསར་དུ་བཞེངས་ནས་དགེ་འདུན་གྱི་སྡེ་བཙུགས་ནས་འབྲུག་པ་བཀའ་བརྒྱུད་ཀྱི་ཕྱག་བཞེད་དར་རྒྱས་མཛད་པ་ཡིན། འབྲུག་པ་བཀའ་བརྒྱུད་ཅེས་པ་ནི། དགོན་པ་ཆགས་ཡུལ་གནས་ཀྱི་ཆ་ནས་མིང་ཐོགས་པ་ཡིན་ནོ།།

འདི་གཞི་དགོན་པ་ཁག་ཆགས་རིམ་གྱི་ལོ་ཚིག

		ཕྱི་ལོ
༡།	ཨལ་ཆི་དགོན་པ་	༩༨༦
༢།	དཔེ་ཐུབ་དགོན་པ་	༡༠༡༡
༣།	སྟོང་སྡེ་དགོན་པ་	༡༠༢༩
༤།	ཀྱུ་འཁྱིལ་དགོན་པ་	༡༠༦༥
༥།	མང་སྤྱོ་དགོན་པ་	༡༢༧༦
༦།	བདེ་དགོན་	༡༤༢༠
༧།	ཁྲི་རྩེ་དགོན་པ་	༡༤༤༦
༨།	ཕྱི་དབང་དགོན་པ་	༡༥༣༠
༩།	གཡུང་དྲུང་དགོན་པ་	༡༥༣༢
༡༠།	བྲག་ཐོག་དགོན་པ	༡༥༦༠
༡༡།	བར་གདན་དགོན་པ	༡༥༧༦
༡༢།	སྟག་སྣ་དགོན་པ་	༡༥༨༠
༡༣།	ལྕེ་བདེ་དགོན་པ་	༡༦༢༡
༡༤།	ཧེ་མི་དགོན་	༡༦༢༦
༡༥།	རང་ལྡུམ་དགོན་པ་	༡༧༢༦
༡༦།	རི་རྫོང་དགོན་པ་	༡༨༤༡
༡༧།	བསམ་གཏན་གླིང་	༡༨༤༦
༡༨།	དཀར་ཤ་དགོན་	༡༤༣༠

དགེ་དཀོན་མཆོག་རྣམ་རྒྱལ།

ལས་འབྲས་ཀྱི་རྣམ་བཞག་ཚུང་ཟད་ཤུ་ན་དེ་ཡང་སྤྱི་ཚོགས་ནང་སྐྱིད་སྡུག་མི་འདྲ་བ་མང་པོ་ཡོད་ཅིང་། དེ་དག་ན་ཕལ་ཆེ་བ་ནི་ཚེ་འདིའི་ལས་བཟང་ངན་ལ་མ་ལྟོས་པར་སྐྱེ་བ་སྔོན་མའི་ལས་བཟང་ངན་གྱི་འབྲས་བུ་ཡིན་པར་འདོད་དགོས་པ་ཡིན་ལ། དེ་ཡང་རང་གི་འབྲས་བུ་བདེ་བ་བཟང་པོ་འབྱུང་བྱེད་ཀྱི་ལས་ལ་དགེ་བའི་ལས་སམ་ལས་བཟང་ཞེས་འཇོག་པ་ཡིན། རང་གི་འབྲས་བུ་ངན་པའམ་སྡུག་བསྔལ་འབྱུང་བྱེད་ཀྱི་ལས་ལ་མི་དགེ་ངར་འཇོག་པ་ཡིན།

དེས་ན་དགེ་སྡིག་གི་ལས་འབྲས་ཀྱི་སྐོར་ཕྲན་བུ་ཤུ་ན། དེ་ཡང་ཇི་སྐད་དུ་ འཇམ་མགོན་ཙོང་ཁ་པ་ཆེན་པོའི་གསུངས་ལས :—

དེ་ཡང་དཀར་ནག་ལས་འབྲས་ལེགས་བསམ་ན། །
གླིང་དོན་ཚུལ་ཞིན་སྒྲུབ་ལ་རག་ལས་སོ། །

ཞེས་གསུངས་པ་ལྟར་ ལས་འབྲས་སྤྱིའི་རྣམ་བཞག་དང་དགེ་བ་དང་མི་དགེ་བའི་ལས་འབྲས་བྱེ་བྲག་ཏུ་བཤད་པ་དགེ་སྡིག་གཉིས་ཀྱི་འབྲས་བུ་སོ་སོར་བསྟན་ནས་སྤང་བླང་བྱ་ཚུལ་ལོ། །དང་པོ་ལས་ཀྱི་ངོ་བོ་དཔེ་དང་བཅས་ནས་བཤད་པ་ནི། དཔེར་ན་ཞིང་པས་ཞིང་འདག་བཙམས་པ་ནས་འཇུག་མ་ཇོར་བར་གྱི་འབད་རྩོལ་བྱེད་པ་ལ། ཞིང་ལས་བྱེད་པར་འཇོག་ཅིང་། དེ་ལ་ཡང་ཞིང་པ་གཅིག་གིས་ལས་བྱེད་པ་དང་ཞིང་པ་མང་པོས་ལས་ཐུན་མོང་བར་བྱེད་པའི་ལས་ཀྱང་ཡོད། དེ་དག་གིས་ལས་བཟང་ངན་གྱི་རྗེས་སུ་འབྲས་བུ་བཟང་ངན་བྱུང་བ་ནི། ཕྱི་དངོས་པོའི་འབྲས་བུ་སྨིན་ཚུལ་ཡིན་ལ།

ནང་སེམས་བཟང་ངན་གྱི་རྗེས་སུ་འབྲས་བུ་བྱུང་བའི་ལས་ནི་སེམས་རྒྱུད་ཁོ་ན་དང་འབྲེལ་བས་དགེ་སྡིག་གིས་ལས་ནི་རྟེན་གང་ཟག་ཁ་ནར་ཡོད། དེའི་ཕྱིར་ལས་ཀྱི་རྣམ་པར་སྨིན་པ་ཡང་གང་ཟག་གི་སྟེང་དུ་གྲུབ་ཅིང་ཕྱི་རོལ་གྱི་ཡུལ་སྟེང་དུ་མི་གྲུབ་བོ། །དེ་ཡང་ཕྱི་རོལ་ཡུལ་ལ་ཡོད་པའི་ས་བོན་འདེབས་པ་སོགས་བྱ་བྱེད་ཀྱི་ལས་དག་ནི་རྟེན་མི་བརྟན་པ་དང་གནོད་པ་མང་བས་འགལ་····རྐྱེན་སྟོབས་ཅན་དང་མ་ཕྲད་ཀྱང་ཆུད་ཟ་བ་སྲིད་དེ། ཛ་གསར་ནང་གི་ཆུ་བཞིན་ནོ།། །ནང་སེམས་ཀྱི་སྟེང་དུ་བཞག་པའི་ལས་ནི་རྟེན་བརྟན་པ་དང་གནོད་པས་རྐྱེན་གཅོད་པ་དཀའ་བ་ཡིན་པས་ལས་དེ་ཆུད་ཟ་བ་མེད་དེ། རྡོ འི་བུམ་པའི་ནང་གི་ཆུ་བཞིན་ནོ། །

དེ་ནས་འགལ་རྐྱེན་སྟོབས་ལྡན་དང་མ་ཕྲད་ན་འབྲས་བུ་ངེས་པར་འབྱིན་ལ་རྒྱུན་དང་སྟོབས་གོང་འཕེལ་འགྲོ་བ་ནི་དགེ་སྡིག་ལས་ཀྱི་ཆོས་ཉིད་ཡིན་ཏེ། མདོ་ལས:—

སེམས་ཅན་དག་གིས་ལས་རྣམས་ནི། །
སྐལ་པ་བརྒྱར་ཡང་ཆུད་མི་ཟ། །
ཚོགས་ཤིང་དུས་ལ་བབས་པ་ན། །
འབྲས་བུ་ཉིད་དུ་སྨིན་པར་འགྱུར། །

ཞེས་དང་། རིག་པའི་དབང་ཕྱུག་གིས:—

རྒྱུ་ཚོགས་པ་ལས་འབྲས་སྐྱེ་བར། །
རྗེས་སུ་དཔོག་པ་གང་ཡིན་པ། །
དོན་གཞན་ལ་ནི་མི་ལྟོས་ཕྱིར། །
དེ་ནི་རང་བཞིན་ཡིན་པར་བརྗོད། །

གསུངས་པ་ལྟར་ཡིན།

དེ་ལྟར་ན་སེམས་རྒྱུན་གཅིག་པོ་འི་སྟེང་དུ་འང་དགེ་སྡིག་གི་ལས་བརྗོད་ཀྱི་མི་ལང་པ་ཡོད་པ་ལ་ལྷུང་རིགས་མེད་པ་ཅི་ཡིན་ཞེ་ན་སྐྱོན་མེད་དེ།

འབྲས་བུ་ཐ་དད་མཐོང་བའི་ཕྱིར། །
ལས་ཀྱི་ནུས་པ་ཐ་དད་དོ། །

ཞེས་པ་ལྟར་དཔེར་ན་སྨན་རིལ་བུ་གཅིག་ལ་ནད་དུ་མ་འཛོམས་པའི་ནུས་པ་ཡོད་ཀྱང་། དུས་དེར་མི་མངོན་ལ་ཕྱིས་སྨན་ཟོས་ན་ནད་ཞི་བ་ན་སྔར་གྱི་སྨན་ལ་ནུས་པ་འདི་འདྲ་འདུག་སྙམ་དུ་མངོན་པ་བཞིན་ནོ། །དཔེར་ན་དུག་ཟས་དེ་ཡུན་རིང་སོང་ནས་འབྲས་བུ་སྨིན་པའི་ཚེ་མ་གཏོགས་དུག་གི… ཉེས་པ་མི་མངོན་པ་བཞིན་ཡིན། གས་དུས་ཀྱི་སྡུག་བསྔལ་ཀུན་གཞིན་དུས་སུ་བཤད་ན་ཡིད་མི་ཆེས་པ་བཞིན་ཡིན་ནོ། །གཉིས་པ་དགེ་སྡིག་གི་ལས་བསགས་ཚུལ་ལ། བཞི་སྟེ་

༡ བྱས་ལ་མ་བསགས་པའི་ལས། །
༢ བསགས་ལ་མ་བྱས་པའི་ལས། །
༣ བྱས་བསགས་གཉིས་ཀའི་ལས། །
༤ བྱས་བསགས་གཉིས་ཀ་མིན་པའི་ལས་དང་བཞི་ཡོད་ལ། །

༡ བྱས་ལ་མ་བསགས་པའི་ལས་ནི། དཔེར་ན་རྨི་ལམ་དུ་བྱས་པ་དང་། ཆེད་དུ་མིན་པར་བྱས་པ་བརྗོད་ནས་བྱས་པ། ནོར་ནས་བྱས་པ། མི་འདོད་བཞིན་དུ་གཞན་གྱི་དབང་གིས་བྱས་པ་རྣམས་ཡིན་དེ། ལས་ཀྱི་དངོས་གཞི་ཙམ་སྐྱེས་ཀྱང་རྒྱུན་བརྟན་པར་མི་ནུས་པའི་ཕྱིར་རོ། །

༢ བསགས་ལ་མ་བྱས་པའི་ལས་ནི། །ལས་དེ་བྱེད་པར་འདོད་པའི་ཀུན་སློང་འདུ་ཤེས་ལ་ཡུན་རིང་བསམས་ཀྱང་བྱ་བའི་དངོས་གཞི་མ་བྱས་པ…… རྣམས་ཡིན་དེ། དེའི་ལས་ལ་སྒོམ་པ་བྱེད་ཀྱང་དངོས་གཞི་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།།

༣ བྱས་བསགས་གཉིས་ཀའི་ལས་ནི། བསམ་བཞིན་དུ་བྱས་པའི་དངོས་གཞི་བྱས་པའི་ལས་རྣམས་ཡིན་ཏེ། ལས་ལམ་ཡོངས་སུ་རྫོགས་པའི་ཕྱིར་རོ། །

༤ མ་བྱས་ཤིང་མ་བསགས་པའི་ལས་ནི། ལས་ཀྱི་ཀུན་སློང་ཡུད་ཙམ་བསྐྱེད་ནས་འདུན་པ་ལོག་པའི་ལས་ཕྲ་མོ་རྣམས་ཡིན་ཏེ། རྒྱུན་མི་གནས་ཤིང་དངོས་གཞི་ཡང་མ་བྱས་པའི་ཕྱིར་རོ། །

གཉིས་པ། རྣམ་སྨིན་གྱི་འབྲས་བུ་སྤྱོང་ཚུལ་ལ་མཉམ་མེད་འབྲི་གུང་པས། རང་དགར་མི་འཇུག་ལས་ཀྱི་དབང་དུ་འགྲོ །དཀར་ནག་རྒྱུ་འབྲས་བདེ་སྡུག་སོ་སོར་སྨིན། །གསུངས་པ་ལྟར་དུས་ཀྱི་སྒོ་ནས་དབྱེ་ན་མཐོང་ཆོས་སྤྱོང་འགྱུར་གྱི་ལས། སྐྱེ་ནས་སྤྱོང་འགྱུར་གྱི་ལས། ལན་གྲངས་གཞན་ལ་སྤྱོང་འགྱུར་གྱི་ལས་དང་གསུམ་ཡོད།

༡ མཐོང་ཆོས་འསྤྱོང་འགྱུར་གྱི་ལས་ནི། ཚེ་སྟོད་ལ་བྱས་པའི་ལས་ཀྱི་འབྲས་བུ་ཚེ་སྨད་ལ་སྨིན་པ་དཔེར་ན། ཚེ་སྟོད་ལ་བཤན་པ་བྱས་པའི་ཚེ་སྨད་ལ་དབུལ་པར་འགྱུ་བ་དང་། ཚེ་ཐུང་དུ་འགྲོ་བ། དེ་བཞིན་ཚེ་སྟོད་ལ་དགེ་སྦྱོར་སྟོབས་ཆེན་བསགས་པས་ཚེ་འཇུག་ལ་སྐྱིད་པོ་ཡོང་བ་སོགས་⋯ མང་པོ་ཡོད་པ་ཡིན།

༢ སྐྱེ་ནས་སྤྱོང་འགྱུར་ནི་ཚེ་ཕྱི་མ་ལ་སྤྱོང་འགྱུར་རྣམས་སོ། །

༣ ལན་གྲངས་གཞན་ལ་སྤྱོང་འགྱུར་ནི་ཚེ་འདི་ནས་སྐྱེ་བ་གཉིས་པ་ཕན་⋯ ཆད་དུ་སྨིན་བྱེད་ཀྱི་ལས་དང་། ཚེ་གསུམ་ལ་རྫོགས་པའི་འདུ་བྱེད་ཀྱི་ལས་རྣམས་ཡིན།

བཞི་པ་ལས་བསྡུས་ཚུལ་ལ། རྫོགས་བྱེད་ཀྱི་ལས་དང་། འཕེན་བྱེད་ཀྱི་ལས་གཉིས་སུ་འདུས་ཏེ། མཐོང་ཆོས་སྤྱང་འགྱུར་གྱི་ལས་ནི་རྫོགས་

བྱེད་ཀྱི་ལས་ཁོ་ན་ཡིན་ལ། སྐྱེ་ནས་སྐྱོང་འགྱུར་གཉིས་པ་དང་ལན་གྲངས་གཞན་ལ་སྐྱོང་འགྱུར་གཉིས་ལ་འཕེན་རྫོགས་གཉིས་ཀྱི་ལས་རེ་ཡོད་པས། འདི་ལ་མུ་བཞི་སྟེ།

༡ འཕེན་བྱེད་དགེ་བས་འཕེན་ལ་རྫོགས་བྱེད་མི་དགེ་བས་རྫོགས་པ།

༢ འཕེན་བྱེད་མི་དགེ་བས་འཕེན་ལ་རྫོགས་བྱེད་དགེ་བས་རྫོགས་པ།

༣ འཕེན་བྱེད་དགེ་བལ་རྫོགས་རྫོགས་བྱེད་ཀྱང་དགེ་བས་རྫོགས་པ།

༤ འཕེན་བྱེད་མི་དགེ་བ་ལ་རྫོགས་བྱེད་ཀྱང་མི་བས་རྫོགས་པ་བཅས···· ཡོད་པ་ཡིན།

དང་པོ་ནི། མིར་སྐྱེས་ཀྱང་མི་དགེ་བས་ཤིན་ཏུ་དབུལ་པོ་ལྟ་བུའོ། གཉིས་པ་ནི། །རྒྱལ་པོ་དང་བློན་པོའི་གཟིམ་ཁྱི་ལྟ་བུ། གསུམ་པ་ནི། སྟོབས་འབྱོར་ཅན་གྱི་རྒྱལ་པོ་དང་བློན་པོ་ལྟ་བུ། བཞི་པ་ནི། མ་གཙང་བའི་སེབ་ཀྱི་བྲང་བུ་དང་དུད་འགྲོ་ཉམ་ཐག་ལྟ་བུ་ཡིན་ནོ། །འཇིག་རྟེན་བས་ཁ་རྒྱུན་དུ། སྤྲང་པོའི་མི་ལས་ཕྱུག་པོའི་ཁྱི་སྐྱིད་ཟེར་བ་ཡང་འཕེན་རྫོགས་ཀྱི་ལས་ཀྱི་རྣམ་བཞག་མ་ཤེས་པའི་དབང་གིས་ཡིན་པར་བསམ། དེ་ནང་བཞིན།

༡ འཕེན་བྱེད་དགེ་བས་འཕེན་ལ་རྫོགས་བྱེད་ཀྱང་དགེ་བ་འབབ་ཞིག་གིས།

༢ འཕེན་བྱེད་མི་དགེ་བས་འཕེན་ལ་རྫོགས་བྱེད་ཀྱང་མི་དགེ་བ་འབབ···· ཞིག་གིས་རྫོགས་པ།

༣ འཕེན་བྱེད་དགེ་བས་འཕེན་ལ་རྫོགས་བྱེད་དགེ་མི་དགེ་འདྲེས་མས···· རྫོགས།

༤ འཕེན་བྱེད་མི་དགེ་བས་འཕེན་ལ་རྫོགས་བྱེད་དགེ་སྡིག་འདྲེས་མས··· རྫོགས་པ་དང་། བཞི་ཡོད། དང་པོ་ནི····བསམ་གཏན་གཟུགས་མེད་

ལྟ་བུའོ། །གཉིས་པ་ནི་དམྱལ་བ་དང་ཡི་དགས་དང་། དུད་འགྲོ་ཕལ་ཆེར་ཡིན།། གསུམ་པ་ནི་འདོད་པའི་ལྷ་མི་དང་། རྒྱལ་ཆེན་རིགས་བཞི་ལྟ་བུའོ།། །།བཞི་པ་ནི····ཡི་དྭགས་སྟོབས་ཅན་དང་། ཀླུ་འགའ་ཞིག་སོགས་ཀྱི་ཆོག་པ་ཡིན་ནོ། །

དེ་ནང་བཞིན་ལས་ཀྱི་འབྲས་བུ་འཕེན་ཚུལ་ལ་དང་པོ། །ལས་གཅིག་གིས་རྣམ་སྨིན་གཅིག་འཕེན་པ་དང་། ལས་གཅིག་གིས་རྣམ་སྨིན་དུ་མ་འཕེན་པ་ཡོད་ལ། ལས་དུ་མས་འབྲས་བུ་གཅིག་འཕེན་པ་དང་། ལས་དུ་མས་འབྲ་བུ་རྣམ་སྨིན་དུ་མ་འཕེན་པ་སོགས་ཡོད་པ་མངོན་པ་ཀུན་བཏུས་ལྟར་སྣ་བཞི་ཡོད། དཔེར་ན། མི་དགེ་བའི་ལས་གཅིག་གིས་དམྱལ་བའི་ལུས་རྟེན་གཅིག་འཕེན་པ་མང་པོ་ཡོད།

གཉིས་པ····ལས་གཅིག་གིས་རྣམ་སྨིན་དུ་མ་འཕེན་པ་ནི་མཚམས····མེད་པའི་ལས་གཅིག་གིས་དམྱལ་བའི་ལུས་རྟེན་དུ་མ་དང་། སོར་ཕྲེང་ཅན་གྱིས་སྔར་དགེ་འདུན་གྱི་གཉེར་པ་བྱེད་པའི་སྐབས་སྨོན་ལམ་ཁྱད་པར····ཅན་ཞིག་བཏབ་པ་མི་སྟོང་གི་འདོད་པ་ཡོར་ལོངས་སྤྱོད་པའི་ཕྱུགས་སྟོབས····དང་། རིགས་གཟུགས་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པའི་མིའི་ལུས་རྟེན་སྐྱེ་བ་ལྔ་བརྒྱ་བར་འཕེན་པ་དང་། སྔོན་བརྟེད་གཅིག་གིས་རྩོད་པ་རྩོད་པའི་སྐབས་སྲུ་རང་གྱི་རྩོད་གྲོགས་གཅིག་ལ་ཞེས་ཚིག་རྩུབ་པོ་སྨྲས་པ་ལས་སྐྱེ་བ་ལྔ་བརྒྱའི་བར····བྱད་མེད་དུ་སྐྱེ་བ་སོགས་ལས་འབྲས་ཀྱི་ཀོར་བཀའ་དང་བསྟུན་བཅོས་ཚད····ལྡན་ནས་གསུངས་པ་ལྟར་ལས་གཅིག་གིས་རྣམ་སྨིན་དུ་མ་འཕེན་པ་ཤེས······དགོས། ལས་དུ་མས་རྣམ་སྨིན་གཅིག་འཕེན་པའང་ཡོད་དེ། ཆོས་རྒྱལ་མྱ་ངན་མེད་ཀྱི་ཀུ་ཚེའི་སྟོད་ལ་མ་གསོད་པའི་ལས་དུ་མ་བསགས་པ····ལས་མཐར་ཚ་ཕྱིན་གྱི་སྐྱེ་བ་ཅིག་སླངས་པ་དང་། དེ་བཞིན་བསོད་ནམས་

མ་ཡིན་པའི་ལས་རིགས་མཐུན་དུ་མ་བསགས་པ་ལས་མཐར་དལ་བགྲེད……འབྱོར་བཅུའི་ལུས་རྟེན་གཅིག་འཕེན་པ་ལྟ་བུ་དང་། གཞན་ཡང་སྐལ་པ་གྲངས་མེད་པར་བསོད་ནམས་ཀྱིས་ལས་བསགས་པ་ལས་ལོངས་སྤྱོད་རྫོགས…པའི་སྐུ་གཅིག་གྲུབ་པ་ཡང་དུ་མས་འབྲས་བུ་གཅིག་གྲུབ་པའི་དཔེ་ཡིན་ནོ། །མིར་སྐྱེ་འགྱུར་གྱི་ལས་དུ་མ་བསགས་པ་ལས་མིའི་སྐྱེ་བ་འཕེན་པ་ལྟ་བུའོ། །ཕྱི་རོལ་གཟུགས་ཅན་ལ་མཚོན་ན། ས་བོན་གཅིག་གིས་འབྲས་བུ་སྡོང་པོ་དུ་མ་སྐྱེ་བ་དང་གཅིག་སྐྱེ་བ་ཡོད་ལ། དེ་ནང་བཞིན་ས་བོན་དུ་མས་སྡོང་པོ་གཅིག་སྐྱེད་པ་དང་། དུ་མ་སྐྱེད་པ་སོགས་མངོན་སུམ་དུ་མཐོང་བ་བཞིན་ནོ།། དེ་བཞིན་དུ་འཕེན་བྱེད་ཀྱི་ལས་ལ་གསུམ་ཡོད་དེ། མི་གཡོ་བའི་ལས། བསོད་ནམས་ཀྱི་ལས། བསོད་ནམས་མ་ཡིན་པའི་ལས་དང་གསུམ།

༡ ཁམས་གོང་མ་གཟུགས་མེད་ཁམས་དང་། གཟུགས་ཁམས་གང་རུང་དུ་སྐྱེ་བ་འཕེན་བྱེད་ཀྱི་ལས་རྣམས་དང་པོ་ཡིན་ལ། དེ་ལ་མི་གཡོ་བའི་ལས་ཞེས་བརྗོད་པའི་རྒྱུ་མཚན་ནི། ཐོག་མར་ལས་ཀྱིས་གང་དུ་འཕེན་པའི་གནས་དེ་ཉིད་ལས་རྣམ་སྨིན་གཞན་དུ་མི་གཡོ་བས་དེ་ལྟར་བཤད་པའི་ཕྱིར་རོ། །

༢ བསོད་ནམས་ཀྱི་ལས་འདོད་པའི་ལྷ་དང་མིའི་སྐྱེ་བ་འཕེན་བྱེད་ཀྱི……ལས་རྣམས་ཡིན་ནོ། །

༣ གསུམ་པ་བསོད་ནམས་མིན་པའི་ལས་ངན་སོང་གསུམ་དུ་འཕེན་བྱེད…ཀྱི་ལས་རྣམས་ཡིན་ནོ། །

གོང་དུ་ཕྱུས་པའི་དགེ་སྡིག་གི་ལས་འབྲས་ཀྱི་རྣམ་གཞག་ཕྲ་ཞིང་ཕྲ་བ…རྣམས་ཚུལ་བཞིན་དུ་ཤེས་ནས་རང་གིས་སྤང་བླང་ལ་འཇུག་པ་དེ་ཉམས་སུ……བླངས་ན་རང་གཞན་ཚང་མར་བདེ་སྐྱིད་ཡོང་བའི་རྒྱུ་ཡིན་པར་སེམས་སོ། །

སརྦ་མངྒ་ལམ། །

ཀཱ་ཤྲ་མཱིར་དང་ལ་དྭགས་ཀྱི་ཆོས་རིག་འབྲེལ་པ,

དགེ་རྒན་བསོད་ནམས།

ཨོཾ་སྭསྟི

རྣམ་འདྲེན་བཞི་པ་ཟམ་ཙང་སྨྲས་པོ་ཡི། །
གསུང་གི་བདུད་རྩི་ལྗོང་གིས་གཟིགས་མ་ཡང་། །
འཛིག་རྟེན་འདི་ནས་ཨུ་དུམ་ཝཱ་ར་ལྟར། །
མཚུངས་མེད་ཤཱཀྱའི་རྒྱལ་པོ་ཨི་བསྟན་པ་ལ། །
རྫུ་འཕྲུལ་མཆོག་བརྙེས་ཉི་མ་གུང་པ་ཡིས། །
ཞབས་ཀྱིས་བཅགས་པའི་ཤྲཱི་ན་གར་འདི། །
རྨ་བྱའི་མགྲིན་འདྲ་ལྡ་ནས་སྟུག་པའི་ལྗོངས། །
ཁང་གཉིས་སྣ་ཚོགས་སྨྲ་དབྱངས་བསྒྱུར་བའི་གནས། །
སེ་ཤུག་གཡུ་ལོ་འབར་བའི་དགའ་ཚལ་འདི། །
སྔོན་འབྱུང་ལོ་རྒྱུས་མདོ་ཙམ་འབྲི་བ་ལ། །
རྩ་གསུམ་ལྷ་ཚོགས་རྣམས་ཀྱིས་ཇིན་གྱི་རློབས། །

ཞེས་ཤིས་པར་བརྗོད་པའི་ཚིག་གི་མངོན་བསྡུས་ཏེ་གང་གློང་བར་བྱ་བ་ནི། ཀཱ་ཤམིར་དང་ལ་དྭགས་གཉིས་སྔོན་ནས་འབྲེལ་པ་བྱུང་བའི་ལོ་རྒྱུས་མདོར······ བསྡུས།

སངས་རྒྱས་མྱ་ངན་ལས་འདས་ནས་རྒྱ་གར་དུ་རྒྱལ་པོ་མཐོང་ལྡན་བདེ་བའམ་མ་སྐྱེས་དགྲ་ཞེས་པའི་སྨྲས་ལག་བཟང་གིས་རྒྱལ་སྲིད་ལོ་བཅུ··བདུན་ཙམ་དུ་སངས་རྒྱས་ཀྱི་བསྟན་པ་རྒྱ་ཆེར་མཆོད་དོ། །དེའི་ཚེ་འཕགས·པ་ཤ་ནའི་གོས་ཅན་གྱིས་ཀྱང་བསྟན་པ་སྐྱོང་ལ། གཙོ་བོ་ནི་འཕགས·པ་མཱ་ཛྷྱ་ནྟི་ཀ་འམ་ཉི་མ་གུང་པས་ཡུལ་ཝཱ་ར་ན་སེར་བཞུགས་ཏེ་འཁོར་རྣམ··

པ་བཞི་ལ་ལྗོང་འབོགས་པར་བྱེད། བྲམ་ཟེ་དང་ཁྱིམ་བདག་རྣམས་ལ་རྟོས་བསྟོད་པར་མཛད་དོ། །དུས་ནམ་ཞིག་ན་དགེ་སློང་སློང་བ་པོ་མང་པོས་ཝཱ་ར་ཎ་སིའི་བྲམ་ཟེ་དང་ཁྱིམ་བདག་མང་པོ་ཞིག་ཡིད་སྨོན་པར་གྱུར་ཏེ་དགེ་སློང་རྣམས་ལ་བསོད་སྙོམས་ཀྱི་སྤྱོད་ཡུལ་གཞན་མེད་པ་ལྟ་ཞེས་ཁ་ཟེར་བར་གྱུར་བ་དང་ཝཱ་ར་ཎ་སི་བས་ལོངས་སྤྱོད་མེད་པ་འགའ་ཡང་མེད་ཟེར་བ་བྱུང་བས་བདག་…ཅག་གིས་ཁྱེད་རྣམས་གསོ་དགོས་ན་ཁྱེད་དག་གིས་ཁོ་བོ་ལ་ཚང་ཟད་ཅིག་ཀྱང་མི་བྱིན་པར་ལྟ་ཟེར་བའི་རྐྱེན་གྱིས་འཕགས་པ་དགྲ་བཅོམ་ཆེན་པོ་ཉི་མ་གུང་…པ་དགྲ་བཅོམ་ཁྲི་ཕྲག་གིས་བསྐོར་ཏེ་ནམ་མཁའི་ལམ་ནས་འཕུར་ཞིང་གཤེགས་…ནས།། བྱང་ཕྱོགས་རི་ཨུ་ཤི་རར་བྱོན་ནོ། །དེར་ཁྱིམ་བདག་ཨ་ཛ་ཞེས་བྱ་བས་ཕྱོགས་བཞི་དགེ་འདུན་ཐམས་ཅད་བསྐུས་ཏེ་དུས་སྟོན་གྱི་མཆོད་པ……བྱས་པས་དགྲ་བཅོམ་བཞི་ཁྲི་བཞི་སྟོང་འདུས་སོ། །རྐྱེན་དེ་ལ་རྟེན་ནས་བྱང་ཕྱོགས་སུ་བསྟན་པ་ལྷག་པར་དར་བར་གྱུར་ཏོ། །དེ་ལྟར་ན་དགྲ་བཅོམ་ཆེན་པོ་ཉི་མ་གུང་པས་ཁ་ཆེའི་ཡུལ་བཏུལ་ལམ་སེམས་སོ། །དེ་ཡང་ཉི་…མ་གུང་པས་རྫུ་འཕྲུལ་གྱིས་ཁ་ཆེའི་གནས་སུ་བྱོན་ནས་ཀླུ་གནས་པའི་མཚོའི་…མགྲམ་དུ་བཞུགས་པས། དེའི་ཚེ་ཀླུའི་རྒྱལ་པོ་‘རྔོ་དུས’ འཁོར་དང་བཅས་པ་རྣམས་ཁྲོས་པས་རྫི་ཆར་དྲག་པོ་ཕབ་ཀྱང་ཆོས་གོས་ཀྱི་ཟུར་ཙམ་མ…གཡོས།། མཚོན་ཆ་སྣ་ཚོགས་ཀྱི་ཆར་ཕབ་པ་རྣམས་མེ་ཏོག་ཏུ་གྱུར་པས། ཀླུ་རྣམས་དངོས་སུ་འོངས་ཏེ། འཕགས་པ་ཅི་བཞེད་ཞུས་པས་ས་གཞི་བྱིན་ཅིག་གསུངས་པ་ས་གཞི་ཇི་ཙམ། སྐྱིལ་ཀྲུང་གཅིག་གིས་ཁྱབ་པའི་སའོ། །འོ་ན་འབུལ་ལོ་ཞུས། དགྲ་བཅོམ་ཆེན་པོས་རྫུ་འཕྲུལ་གྱིས་སྐྱིལ་ཀྲུང་གཅིག་གིས་ཁ་ཆེའི་ཡུལ་དགུའི་ས་གནོན་པར་མཛད་པ་ན་ཀླུ་རྒྱལ་ན་རེ། འཕགས་པ་ལ་འཁོར་ཇི་ཙམ། ལྔ་བརྒྱའོ། །དེ་ལས་གཅིག་མ་ཚང་ན་སླར་

འཕྲོག་གོ་ཟེར་བ་ན། འཕགས་པས་‘ས་འདི་ནི་སྟོན་པས་ལྷག་མཐོང་
དང་མཐུན་པའི་གནས་སུ་ལུང་བསྟན་པ་ཡིན་ན། གང་ན་སྦྱིན་པ་པོ་ཡོད་
པ་དེར་སློང་བ་པོ་ཡོད་པས། བྲམ་ཟེ་དང་ཁྱིམ་བདག་དག་ཀྱང་འདུག་
དགོས་སོ།’ །གསུངས་པས་ཀླུ་རྣམས་བགྲོས་ནས། དེར་སྐྱ་མ་མཁན་
གྱིས་སྐྱ་མའི་གྲོང་ཁྱེར་བྱེད་དུ་བཅུག་པས། དགྲ་བཅོམ་པས་བྱིན་གྱིས་
བརླབས་ཅིང་ཀྱེ་ཤིར་ནས་འཁོར་ཉི་མ་གུང་པས་ལྔ་བརྒྱ་པོ་རྣམས་དང་ཡུ་ར་ན་
སི་ནས་ཆོས་ལ་མངོན་པར་དང་པའི་བྲམ་ཟེ་དང་ཁྱིམ་བདག་རྒྱ་སྟོང་དུ་མ་དང་…
ལྷན་གཅིག་ཁ་ཆེ་བཞུགས་སོ། དེའི་རྗེས་རིམ་གྱིས་ཡུལ་སྣ་ཚོགས་ནས་སྐྱེ་
བོ་དུ་མ་འོངས་ཏེ་ཉི་མ་གུང་པ་བཞུགས་པའི་དུས་གྲོང་ཁྱེར་ཆེན་པོ་དགུ་དང་རི་
བོད་ཀྱི་གྲོང་མང་པོ་དང་རྒྱལ་པོ་འི་ཕོ་བྲང་གཅིག་དང་། གཙུག་ལག་ཁང་བཅུ་
གཉིས་དང་དགེ་འདུན་ཤིན་ཏུ་མང་པོ་བཅས་ཡུལ་བརྒྱན་པར་གྱུར་ཏོ། །དེ་
ནས་ཀླུ་རྣམས་ལ་ཞི་བར་བ་སོཊ་ཀྱི་ཆོ་འཕྲུལ་གྱིས་བརྟུལ་ནས་ཆོས་གོས་ཀྱི…
གྲིབ་མས་ནོན་པ་ས་ཆ་འབྱུལ་བར་ཁས་བླངས་སོ། །དགྲ་བཅོམ་ཆེན་པོ་རི་བོ་
སྤོས་ལྡན་དུ་བྱོན་ནས་གུར་གུམ་གྱི་མེ་ཏོག་བསླམས་ནས་སླར་ཡང་ཕྱུད་ཙམ་…
གྱིས་ཁ་ཆེར་ཕེབས་ནས་རྫུ་འཕྲུལ་གྱི་ནམ་མཁར་འཕུར་ནས་ཆོས་གོས་ཀྱི་གྲིབ་
མ་ཆེན་པོར་སྤྲུལ་ཏེ་དེའི་གྲིབ་མས་ནོན་ས་གུར་གུམ་གྱི་སྐྱེ་གནས་ཀྱིས་ཁྱབ་པར་
མཛད།། ‘མ་འོངས་པར་ཁྱེད་རྣམས་ཀྱི་ལོངས་སྤྱོད་འཕེལ་བའི་ཁྱད་པར་འདི་
ཡིན་ནོ’ ཞེས་ལུང་བསྟན་ཅིང་། ཁ་ཆེར་གནས་པའི་རྒྱལ་འབངས་ཐམས་ཅད་
ནང་བསྟན་ལ་བཙུད་ནས་ལོ་ཉི་ཤུ་ཙམ་ཁ་ཆེར་བཞུགས་ནས་ཆོས་བསྟན་པར་…
གྲགས་སོ། །སྐབས་ཤིག་དགྲ་བཅོམ་ཆེན་པོ་ཉི་མ་གུང་པ་ཟངས་དཀར་
དང་ལ་དྭགས་དཔེ་ཐུབ་པར་ཕེབས་ཡོད་པའི་ལོ་རྒྱུས་དང་གཡུང་དྲུང་དགོན་…
པ་ཆགས་སར་མཚོ་ཡོད་སར་ཕེབས་ནས་མ་འོངས་པ་ན་དགོན་པ་བྱུང་བའི་…

ལུང་བསྟན་ཡང་གནང་འདུག   དེའི་རྗེས་རྒྱ་གར་དུ་འཕགས་པ་ཧྲི་དེ་ཀས་
བསྟན་པ་སྐྱོང་བའི་སྐབས་དགེ་སློང་དཔག་མེད་བྱུང་།   དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་
གྲངས་མེད་འབྱུང་ངོ་།   །དེ་དུས་ཐོད་གར་གྱི་ཡུལ་ནས་ཁ་ཆེའི་ཡུལ་དུ་བོད་
བར་སོང་ནས་ཁ་ཆེའི་གནས་བརྟན་མང་པོ་ཞིག་དེར་ཡོང་ནས་བསྟན་པ་ཆེར…
དར་བར་གྱུར།   རྒྱ་གར་དུ་ཨ་ཤོ་ཀའམ་ཆོས་རྒྱལ་མྱ་ངན་མེད་པའི་དུས་
ཁ་ཆེ་དང་ཐོད་གར་གྱི་དགེ་འདུན་རྣམས་ལ་གསེར་བྱེ་བ་ཕྲག་བརྒྱ་རེ་འབུལ…
པ་དང་བཅས་པ་ལྷར་ཁ་ཆེ་ཡུལ་གྱི་དགེ་འདུན་རྣམས་ལ་རྫོགས་པར་ཕུལ……
ལོ༑   ༑གཡོ་བྱད་གཞན་ཡང་དེ་དང་མཉམ་པར་ཕུལ་ལོ།   །འཕགས་
པ་ཧྲི་དེ་ཀ་མྱ་ངན་ལས་འདས་ནས་དེའི་རྗེས་འཕགས་པ་ནག་པོས་བསྟན་པ…
སྐྱངས་ཏེ་འཁོར་རྣམ་པ་བཞི་ལ་གདམས་ངག་འབོགས་ཤིང་འབྲས་བུ་རྣམ་པ…
བཞི་ཐོབ་པ་ཡང་གྲངས་མི་ཆད་པར་ཡོད་དོ།   །

དེའི་ཚེ་ཁ་ཆེའི་ཡུལ་ན་བྲམ་ཟེའི་རིགས་ཀྱི་དགེ་སློང་གནས་པ་ཞེས…
བྱ་བདག་ཏུ་ལྟ་བ་ལ་མངོན་པར་དགའ་བ་ཞིག་གིས་སོ་སོའི་སྐྱེ་བོ་རྣམས……
ལྟ་བ་ངན་པ་ལ་བཀོད་པ་བྱུང་ངོ་།   །དེའི་རྗེས་དགེ་བའི་བཤེས་གཉེན་
ཞིག་གིས་རྗེས་སུ་བཟུང་ནས་གནས་བརྟན་གནས་པ་ཉིད་ཀྱང་མཐར་ལྟ་བ་མ…
ཉམས་པ་ལ་བཞུགས་ནས་དགྲ་བཅོམ་པའི་གོ་འཕང་ཐོབ་བོ།   །དེའི་རྗེས་རྒྱ་
གར་དུ་རྒྱལ་པོ་མཱི་ནནྡྲ་ཁྲི་ལ་བཀོད་རྗེས་ཀ་ཤ་མཱིར་བར་དབང་བསྒྱུར་ནས……
སངས་རྒྱས་ཀྱི་བསྟན་པ་ལ་སྲིད་ཞུ་རྒྱ་ཆེར་མཛད་འདུག   གཙུག་ལག་ཁང་
མང་པོ་བཞེངས་ཏེ་རབ་ཏུ་བྱུང་ནས་དགྲ་བཅོམ་པར་གྱུར་ཏོ།   །

རྒྱ་གར་དུ་རྒྱལ་པོ་མཧཱ་པདྨའམ་པདྨ་ཆེན་པོའི་དུས་ཁ་ཆེ་ཡུལ……
དུ་རྒྱལ་པོ་སེ་ནྐེ་ཞེས་བྱ་བ་ཞིག་བྱུང་སྟེ་ཕྱིས་ཁོང་རབ་ཏུ་བྱུང་ནས་མཆོན……
ལེགས་མཐོང་བརྟགས་ཏེ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཐོབ་ནས་ཁ་ཆེར་ཆོས་བསྟན་ཅིང………

བཞུགས་སྐབས་སུ་ཛ་ལནྡྷའི་ཡུལ་གྱི་རྒྱལ་པོ་ཀ་ནི་ཥྐས་ཐོས་ཏེ་ལྷག་པར་དད་
ནས་བྱང་ངོས་ཁ་ཆེར་ཕྱིན་ནོ། །འཕགས་པ་སེང་གེ་ལེགས་མཐོང་ལས་
ཆོས་ཉན་ཏེ་རེས་ཀྱང་བྱང་ཕྱོགས་ཀྱི་མཆོད་རྟེན་ཐམས་ཅད་ལ་མཆོད་པ་རྒྱ་ཆེར་
བྱས། ཕྱོགས་བཞིའི་དགེ་འདུན་ལའང་དུས་སྟོན་ཡང་མང་ཙམ་བཙུགས།
མདོ་སྡེ་པའི་ཐོག་མ་ཁ་ཆའི་བཙུན་པ་ཆེན་པོ་གནས་བརྟན་འཁོར་དགེ་སློང་……
ལྔ་སྟོང་དང་བཅས་པ་རྟག་ཏུ་མཆོད་པར་བྱེད་ཅིང་། སྡེ་སྣོད་གསུམ་ལྷག་
པར་རྒྱས་པར་བྱས་སོ། །རྒྱལ་པོ་ཀ་ནིཥྐའི་དུས་རྒྱ་གར་དུ་ནཱགར་ཇུནའམ་
མགོན་པོ་ཀླུ་སྒྲུབ། བ་སུ་བནྡྷུ། ཁ་སོ་པྲ་དད། ཧྣ་མ་དད། སཾགྷ་
ནྡ་ར། ཛོ་ན་ཏ་ར་བཅས་དགྲ་བཅོམ་པ་མང་པོ་ཁ་ཆེར་ཕེབས། རྒྱལ་སྲི་
པོ་ཀ་ནིཥྐས་སྦྱིན་བདག་བྱས་ཏེ་ཁ་ཆེ་ནྣ་རྒྱན་གྱི་གཙུག་ལག་ཁང་དུ་གཞན་ཡང་
འཕགས་པ་རྩིབས་ལེགས་དང་དགྲ་བཅོམ་པ་ལྔ་བརྒྱ་བ་སུ་མི་ཏྲ་སོགས་བཙུན་
པ་ཆེན་པོ་བཞི་བརྒྱ་དང་། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ལྔ་བརྒྱ་དང་། མ་
ཟད་ཁ་ཆེ་འི་ཡུལ་ནས་རྒྱ་ནག་གི་གཙུག་ལ་ཞེས་བྱ་བའི་བར་གྱི་དགེ་སློང་……
མཐའ་དག་བསྡུས་ནས་བཀའ་བསྡུ་བ་གསུམ་པ་མཛད་ཅེས་ཁ་ཆེའི་ལོ་རྒྱུས་……
སུ་གསལ། དེ་རྗེས་རེ་ཞིག་རྒྱལ་པོ་ཀ་ནི་ཥྐ་ལ་དགས་ཟངས་དཀར་དུ་
ཕེབས་ནས་མཆོད་རྟེན་ཞིག་བཞེངས་འདུག་པས། དེང་སང་ཡང་ནི་ཥྐའི་
མཆོད་རྟེན་ཞེས་ཀུན་གྱིས་སྲུན་ལམ་དུ་མངོན་སུམ་དུ་མཇལ་རྒྱུ་ཡོད། ས་
ཚད་ད་ལྟའི་བར་དུས་སྟོན་ལོ་ལྟར་མཛད་སྲོལ་འདུག རྒྱ་གར་དུ་བྲམ་ཟེ་སྒྲ་
གཅན་འཛིན་གྱིས་ཡུལ་ལཱ་ར་ཊ་སཽར་བྱེ་བྲག་ཏུ་སྨྲ་བའི་བཙུན་པ་ཆེན་པོ་སངས་
རྒྱས་ལྷ་དང་། ཁ་ཆེའི་ཡུལ་དུ་མདོ་སྡེ་པའི་སློབ་དཔོན་ཆེན་པོ་བཙུན་པ་
དཔལ་ལེན་རྣམས་བྱུང་སྟེ། དེ་དག་གིས་ཉན་ཐོས་ཀྱི་ཐེག་པ་དར་བར་
བྱས་སོ། །རྒྱ་གར་དུ་རྒྱལ་པོ་ཀྶ་ཙནྡྲས་སྲིད་སྐྱོང་བའི་དུས་ཨ་ས་ངྒ་འམ་

འཕགས་པ་ཐོགས་མེད་ཀྱི་བསྟན་པར་བྱ་བ་རྒྱ་ཆེར་མཛད། སློབ་དཔོན་འདི་དང་། བོད་ཀྱི་རྒྱལ་པོ་ཐོ་རིས་གཉན་བཙན་དུས་མཉམ་ཡིན་འདུག་དེ་རྗེས་ཁ་ཆེའི་རྒྱལ་པོ་ཏུ་རུཥྐ་ཞེས་བྱ་བ་ཆོ་ལོ་མང་པོ་ཐུབ་པའི་ཆོས་རྒྱལ་ཞིག……བྱུང་། ནམ་ཞིག་རྒྱལ་པོས་ཁྲོ་བོ་བདུད་རྩི་འཁྱིལ་པ་བསྒྲུབས་ནས་ཞལ་གཟིགས་ཏེ་ཆོ་ལོ་མང་པོ་ཞིག་ཐུབ་ནས་རྒྱལ་སྲིད་ཀྱང་ལོ་མང་པོ་བསྐྱངས་པ…ཞིག་བྱུང་འདུག་དེའི་རྗེས་ཁ་ཆེར་ཆོས་རྒྱལ་ཀླུ་ག་ལྷ་ནའི་བཙུན་མོ་ཨཾ་རེད……བྲ་བ་འདྲིས་ཀྱང་སངས་རྒྱས་ཀྱི་བསྟན་པ་ལ་སྔོ་ཞུ་ཚད་མེད་མཛད་འདུག
དེའི་རྗེས་ཆོས་རྒྱལ། ཕྲ་ལྷར་སེན། ཞེས་པས་གཙུག་ལག་ཁང་མང་དུ་བཞེངས་ཏེ། དེའི་བྱ་རད་ནས་ཀྱང་གཙུག་ལག་ཁང་མང་པོ་ཞིག་བཞེངས། འདི་ལོ་རྒྱུས་རྒྱ་ནག་གི་མཁས་པ་ཡུན་སང་དང་། གཡུ་ཀོང་གཉིས་ནས་བྲིས་པའི་དཔེ་ཆ་མང་པོ་ཞིག་གི་ནང་གསལ་འདུག

རྒྱ་གར་དུ་གུཔྟ་ཕྲབྷའམ་ཡོན་ཏན་འོད་ཀྱི་འགྲོ་དོན་དར་བའི་དུས་ཁ…ཆེའི་ཡུལ་དུ་བཙུན་པ་དགེ་འདུན་འབངས་ཀྱིས་འགྲོ་དོན་རྒྱ་ཆེར་མཛད་དོ། །བཙུན་པ་དགེ་འདུན་འབངས་ནི་སློབ་དཔོན་དབྱིག་གཉེན་གྱི་སློབ་མ་ཞིག་སྟེ། དེས་རྡོ་རྗེ་གདན་དུ་ཡུན་རིང་བཞུགས་ཤིང་འདུལ་བ་དང་། མངོན་པའི་ཆོས་གཞི་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞི་བརྩམས། ཀ་ཤྲ་མཱི་རའི་རྒྱལ་པོ་ཏུ་རུས་སྤྱན་དྲངས་ཏེ་ཁ་ཆེར་བྱོན་ནས་རིན་ཆེན་སྦྲས་པའི་གཙུག་ལག་ཁང་དང་། ཀུམ་ཏྲ་ཀཎྜ་ལའི་གཙུག་ལག་ཁང་བཞེངས་ཏེ། ཐེག་པ་ཆེན་པོ་འི་ཆོས་མང་པོ་དར་བར་མཛད་ནས་ཡུལ་དེ་ཉིད་དུ་མྱ་ངན་ལས་འདས་སོ། །

ཁ་ཆེའི་ཡུལ་དུ་སྔོན་ཐེག་ཆེན་གྱི་བསྟན་པ་ཆེར་མ་དར་ཀྱང་ཐོགས་མེད་སྐུ…མཆེད་གཉིས་ཀྱི་སྐུ་རིང་དུ་དར་བར་མཛད་དོ། །སློབ་དཔོན་འདི་ནས་བརྩམས་ཏེ་ཛེ་དར་དུ་སོང་། དེ་རྗེས་ཉི་མ་སྦས་པ་ནས་ཀླུ་སྒྲུབ་ཐོགས་མེད་གཉིས་

བཞེད་པ་གཅིག་དུ་གསུངས་ཤིང་ཁ་ཆེ་དང་མ་ག་དྷར་མཆོད་གཞི་ཆེན་པོ……
བཅུ་གཉིས་བཙུགས་ནས་ཡོད་བྱད་ཐམས་ཅད་གཏོང་སྦྱིན་རྣམས་ལ་སྤྲོར་དུ……
འཇུག་གོ །དེ་དུས་གྱིལ་གྱིད་དུའང་ནང་པ་སངས་རྒྱས་པ་མང་པོ་ཡོད་
འདུག་དུས་སྐབས་ཤིག་ལ་བྱ་རྒྱུང་མང་པོ་ཞིག་གིས་རྩེད་མོ་རྩེ་བཞིན་བསྡད་
སྐབས་ས་འོག་ནས་མཆོད་རྟེན་ཞིག་ཐོན་པའི་ནང་ས་སྒྲི་དའི་སྐད་དུ་བྲིས་པའི་
ནང་པའི་དཔེ་ཆ་མང་པོ་ཞིག་ཐོན་འདུག རྒྱ་གར་དུ་ཤྲཱིནྣེན་དེ་ལྷའས་ཞི་
བ་ལྷས་འགྲོ་དོན་མཛད་དུས་ཁ་ཆེར་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པའི་བཤེས་གཉེན་ནི་ཁ་
ཆེའི་རྒྱལ་པོ་ཞིག་གི་ཟུར་བྱ་ཞིག་ཡིན་འདུག བྲིས་པ་ཆུང་ངུའི་སྐབས་
ཁང་སྟེང་དུ་བསྐྱལ་ནས་ཨ་མ་མེ་ཏོག་འཕྲུར་སོང་བ་ལས་བྱ་རྒྱུང་བྱ་གོད……
ཞིག་གིས་ཁྱེར་ཏེ་ཡུལ་དབུས་དཔལ་ན་ལནྡྲའི་གནྡྷོ་ལ་ཞིག་གི་རྩེར་བཞག
པཎྜིཏ་རྣམས་ཀྱིས་དེ་བླངས་ནས་གསོས་ཏེ་ཆེར་གྱུར་ནས་བློ་རྣོ་བར་གྱུར།
དགེ་སློང་སྡེ་སྣོད་འཛིན་པའི་བར་གྱུར། ཇོ་བཙུན་མ་འཕགས་མ་སྒྲོལ་མ་
བསྐྲུབས་པས་ཞལ་གཟིགས་ཤིང་ལོངས་སྤྱོད་ཟད་མི་ཤེས་པ་བྱུང་བ་ལས……
ཐམས་ཅད་སྦྱིན་པར་བཏང་ངོ་། །ཉི་མ་སྦས་པའི་སློབ་མ་ཡིན་ནོ། །དུས་
འདི་ཙ་ན་གྲུབ་ཆེན་ནཱ་བི་ཏེ་ཙ་ཀ་དང་། གྲུབ་ཆེན་ཇོ་ཇེ་དྲིལ་བུ་པ་ཡང་བྱུང་
ངོ་། །དུས་སྐབས་འདི་ནས་ཁ་ཆེའི་ཡུལ་དུ་བཟོ་རིགས་དར་ཚུལ་རྒྱ་གར་ནས་
ཤར་ནུབ་ལྷོ་བྱང་སོགས་ཀྱི་ལུགས་མང་པོ་ཡོད་འདུག་ཀྱང་འདི་ནི་ནུབ་ཕྱོགས་
པའི་རྗེས་སུ་འབྲངས། ཕྱིས་ཏ་བྱ་ར་ཛ་ར་བ་ཞིག་གིས་བྲིས་འབྱར་གཉིས་
ཀའི་སྒྲོལ་གསར་དུ་གཏོད་པའི་ལུགས་ལ་དེའང་ཁ་ཆེ་མ་ཟེར་རོ། །

རྒྱ་གར་དུ་ཧྣམ་ཀྱི་དེའམ་ཆོས་ཀྱི་གྲགས་པས་ཕྱི་རོལ་རྒོལ་ངན་ཚར……
བཅད་པའི་དུས་ཁ་ཆེའི་ཡུལ་ན་བྲམ་ཟེ་པིཏ་སིདྡྷ་ཞེས་དང་། དེ་ལྟ་བིང་
ཀར་ཞེས་བྱ་བ་དང་། དེ་བ་སིདྡྷ་ཞེས་བྱ་བའི་སློབ་དཔོན་གསུམ་ཆོས་ཀྱི་

གྲིགས་པའི་དྲུང་དུ་འོངས་ནས་གྲུབ་མཐའ་ལ་བགྲལ་བརྟག་མང་དུ་བྱས་པས···
ཆོས་ཀྱི་གྲགས་པས་ཀུང་ཡང་དག་པའི་རིགས་པའི་གནས་ལྟ་བླངས། གྲུབ་
མཐའ་ཅན། ཁྱད་པར་ཚད་མ་སྡེ་བདུན་ཅན་པས་ཤིན་ཏུ་མཁས་པར་གྱུར་
ནས་བྱང་ཕྱོགས་ཁ་ཆེའི་ཡུལ་དུ་སོང་ནས་ཆོས་ཀྱི་གྲགས་པའི་ལུགས་དར·····
བར་བྱས། དེ་དུས་ཁ་ཆེའི་རྒྱལ་པོ་ཀར་ཀོཊ་ཞེས་པ་བྱུང་། དེ་དུས་
ཀུང་རྒྱ་ནག་པ་ཡུན་སང་དང་། གཡུ་ཀོང་གཉིས་ཀྱིས་ཀ་ཤྨིར་དུ་ནང་པའི་
གཙུག་ལག་ཁང་གསུམ་བརྒྱ་ཙམ་འདུག་ཟེར་ནས་ལོ་རྒྱུས་མང་ནང་བྲིས······
འདུག རྒྱལ་པོ་འདིའི་དུས་ཧོ་འི་ལྷ་སྐུ་བཞེངས་པའི་སྲོལ་ཆེར་དར་ཡོད་པ་
འདྲ། ཀ་ཤྨིར་དང་གྱིལ་གྱིད་ཤི་སྐར་ལ་དྭགས་སོགས་ལ་ཡང་ཧ་སྐུ་
བཞེངས་ཡོད་པ་དང་། རྒྱལ་པོ་འདོ་དུས་བོད་དུ་ཆོས་རྒྱལ་སྲོང་བཙན་སྒམ་
པོ་བྱུང་འདུག བོད་ཀྱི་རྒྱལ་པོས་ཐུ་མི་སཾབྷོ་ཊ་རྒྱ་གར་དུ་སློབ་སྦྱོང་ཕྱིར་
བཏངས། ཁོང་གིས་རྒྱལ་པོ་འི་བཀའ་བཞིན་བྲམ་ཟེ་གསལ་བའི་ལེགས་བྱིན་
གཙོས་མཁས་པ་མང་པོ་བསྟེན་ཅིང་ཏ་ཙང་སྦྱངས་བརྩོན་མཛད། ཕྱིས་ཁོང་
ཀ་ཤྨིར་དུ་བསྐྱོད་ནས་སཾ་སྐྲི་ཏ་དང་། ཁ་ཆེའི་ཡུལ་སྐད་ཤྲཱ་ད་སོགས་
སློབ་སྦྱོངས་མཐར་འཁྱོལ་མཛད། བོད་དུ་ཕེབས་ནས་བོད་ཡིག་གསར་དུ་
མཛད་དོ། །དེའི་རྗེས་སུ་ཁ་ཆེའི་ཡུལ་དུ་འདུལ་འཛིན་མ་ཁོལ་ཞེས་དྲུག་
བྱུང་འདུག རྒྱན་དྲུག་བཞུགས་པའི་དུས་ན་ཐེག་ཆེན་གྱི་སློབ་དཔོན་རྣམས་
ཆོས་ལ་མཁས་ཤིང་དགེ་འདུན་ཡང་བཟང་པོ་ཡོད་པ་མ་གཏོགས་གྲངས་ཐོས··
ཁོན་ཆེས་མང་ལ། དུས་འདི་ཙམ་ནས་བཟུང་སྡེ་ལྔོ་ཕྱོགས་ཀྱི་བསྟན་པ་
ཡང་རྗེ་ཞན་ལ་སོང་མི་རིང་བར་ཉུབ། པཎ་ལ་ཀུན་གྱི་རིང་ལ་མ་ག་དྷ་བརྡ་
ལ་ཡོ་ཊིའི་བི་ཤཱ། ཁ་ཆེའི་ཡུལ་རྣམས་ལ་བསྟན་པ་ཤིན་ཏུ་དར་བར་གྱུར།

རྒྱ་གར་དུ་རྒྱལ་པོ་པཱ་ལའི་དུས་དང་བོད་དུ་རྒྱལ་པོ་ཁྲི་རལ་པ····

དུས་མཉམ་བྱུང་། དེ་དུས་ཁ་ཆེར་རྒྱ་མཚོ་སྤྲས་པའི་གཙུག་ལག་ཁང་
བཞེངས་པའི་ལོ་རྒྱུས་འདུག བོད་དུ་ཨཱ་ཙཱ་ཏཱུ་བ་ཧཱི་སདྷ་ནི་རྒྱལ་པོ་ཀོ་ར་ལ་
ནས་རྒྱ་བོ་རྣམ་ཕཱལའི་བར་དུ་བྱུང་འདུག དེ་རྗེས་ཤཱཀྱ་བཤེས་གཉེན་སྐྱ
ཆེའི་སྐད་ལ་ཁ་ཆེར་བྱོན་ནས་འགྲོ་དོན་རྒྱ་ཆེར་བྱུང་རྗེས་ཀ་ཤཱ་མཱིར་དུ་ཆོས…
རྒྱལ་མང་ཙམ་བྱུང་ཡང་བསྟན་པ་ལ་བྱ་བ་ཆེར་མཛད་པའི་ལོ་རྒྱུས་མི་གསལ…
ལོ།། །དུས་ཞིག་ལ་ཁ་ཆེའི་ཡུལ་དུ་སློབ་དཔོན་པད་མ་འབྱུང་གནས་
དང་། ཏོག་གེ་པ་ཆོས་འབྱུང་བྱིན་དང་འདུལ་འཛིན་སེང་གེ་གདོང་ཅན་ལ་
སོགས་པ་བྱུང་ངོ་། །

རྒྱ་གར་དུ་རྒྱལ་པོ་མ་ཧེ་པཱལའི་དུས་ཁ་ཆེར་འདུལ་འཛིན་ཛོ་ན་མིཏྲ་དང་
སརྦ་ཛྙ་དེ་ཝ། ཛྙཱ་ག་ཤཱིལ། སོགས་བྱུང་སྟེ་འདི་གསུམ་བོད་དུའང་བྱུང་
འདུག གྲུབ་ཐོབ་ཆེན་པོ་ཏི་ལཱི་པ་ཡང་དེ་དུས་བྱོན་པ་ཡིན། དེ་རྗེས་
ཀ་ཤཱ་མཱིར་དུ་རྒྱལ་པོ་ཨ་ནནྡ་ཡཤ་བྱུང་། འདིས་ཀྱང་ཉན་ཐོས་ཀྱི་དགེ་
འདུན་རྣམས་ལ་བསྙེན་བཀུར་ཚད་མེད་མཛད་ཅིང་གཙུག་ལག་ཁང་རྣམས…
ལ་མཆོད་གཞི་མང་ཙམ་བཙུགས་གནང་འདུག འདི་དང་དུས་མཉམ་དུ་
མཁས་གྲུབ་ཆེན་པོ་ན་རོ་པ་ཡང་འཁྲུངས་འདུག ཁབ་ཏུ་བཞུགས་པའི་ཚེ་སྒྲ་
དང་ཚད་མ་ལ་སོགས་རིག་གནས་རྣམས་ལ་སྦྱངས་བརྩོན་མཛད། མཁན་
པོ་སངས་རྒྱས་སྐྱངས་ལས་རབ་ཏུ་བྱུང་ནས་སྡེ་སྣོད་གསུམ་རྒྱུད་སྡེ་རྣམས་ལ…
སྦྱངས་ཤིང་ཡོངས་སུ་རྫོགས་པའི་པཎྜི་ཏ་ར་གྱུར་ནས་མཁས་གྲུབ་ཀྱི་སློབ……
མ་ས་སྟེང་ཁྱབ་པར་མཛད་ནས། སྐབས་ཤིག་ན་རོ་པ་ཆེན་པོ་ལ་དྭགས་
ཟངས་དཀར་དུ་ཕེབས་ནས་རྫོང་ཕུག་མོ་ཆེར་ལོ་ཤས་བཞུགས་ནས་བསྟན་པ…
བསྐྱོང་སྐབས་མར་པ་ལོ་ཙ་ཡང་ཕེབས་ནས་མཇལ། དེ་རྗེས་གཡུང་དྲུང་དུ་
ཕ་བས་ནས་ད་ལྟའི་དགོན་པའི་འདུ་ཁང་གི་ཕུག་པར་ལོ་གསུམ་ཙམ་བཞུ…

ཏེ་འགྲོ་དོན་མཛད་པའི་ལོ་རྒྱུས་དེང་སང་ཡང་རོ་ཕྱུག་ཞེས་གཡུང་དྲུང…… དགོན་གྱི་འདུ་ཁང་ནང་དུ་འདུག་དེ་དུས་གཡུང་དྲུང་ནས་ཀ་ཤྨ་མིར་བར་གྱི…… ཡུལ་ཁག་ཐམས་ཅད་ནང་པ་སངས་རྒྱས་པ་ཡིན་པའི་ལོ་རྒྱུས་འདུག སྔོན་ཁ་ཆེའི་ཡུལ་དུ་བྲམ་ཟེ་ཞིག་གིས་ལྷ་དབང་ཕྱུག་ཆེན་པོ་བསྒྲུབས་ནས་ལུང…… བསྟན་ཐོབ་སྟེ། ཁྱོད་ཀྱི་རིགས་རྒྱུད་ལ་མཁས་པར་གྲགས་ལྡན་ཤ་སྟག་འབྱུང་ཞེས་ལུང་བསྟན། དེ་ལྟར་འབྱུང་བ་མི་རབས་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞི་ཡན་ཆད་མུ་སྟེགས་པ་ཡིན། ཙ་ལྦ་པ་བྲམ་ཟེ་ར་ཏྣ་བཛྲ་བྱ་བས་སངས་རྒྱས་པ་དང་། བསྟན་པ་དབང་བཙུགས་ཏེ་རྩོད་པས། རྩོད་པ་ཕམ་སྟེ་ནང་པའི་བསྟན་པ་ལ་ཞུགས།། ཆོས་ཀྱང་མཁས་པར་མཁྱེན་ཏེ་པཎྜི་ཏ་ར་གྱུར། བྲམ་ཟེ་རིན་ཆེན་རྡོ་རྗེ་ཡིན། རྟེན་དགེ་བསྙེན། དགུང་ལོ་སུམ་ཅུའི་བར་དུ་ཁ་ཆེ་ཉིད་དུ་ལེགས་པར་སྦྱངས་ཏེ། དོ་སྔགས་ཀྱི་རིག་གནས་མཐའ་དག་ཐུགས་སུ་ཆུད། དེ་ནས་མ་ག་དྷར་བྱོན་ནས་སྒྲུབ་པ་མཛད། སླར་ཡང་ཁ་ཆེར་ཕེབས་ཏེ་མུ་སྟེགས་པ་མང་པོ་དང་རྩོད་པས་སུན་ཕྱུང་ནས་སངས་རྒྱས་ཀྱི…… བསྟན་ལ་བཀོད། སྐུ་ཚེ་སྨད་ལ་ནུབ་ཕྱོགས་ཨོ་རྒྱན་དུ་གཤེགས། ཁ་ཆེའི་ཡུལ་ན་བྲམ་ཟེ་མུ་སྟེགས་ཀྱི་གྲུབ་མཐའ་འཛིན་པ་མཁས་པ་ཞིག་ལྷ་དབང་ཕྱུག་གི་ཞལ་མཐོང་བ་ཞིག་ཡོད། དེ་ལ་ཁོ་རང་གི་ལྷས་ཨོ་རྒྱན་དུ་སོང་ཞིག་དོན་ཆེན་པོ་འགྲུབ་ཅེས་ལུང་བསྟན་པས། ཁོ་ཨོ་རྒྱན་དུ་ཕྱིན་ནས་བྲམ་ཟེ་རིན་ཆེན་རྡོ་རྗེ་དང་མཇལ། བསྟན་པ་དབང་དུ་བཙུགས་ནས་རྩོད་པས། རིན་ཆེན་རྡོ་རྗེ་རྒྱལ། དེ་སངས་རྒྱས་ཀྱི་བསྟན་པ་ལ་ཞུགས་ཏེ་མིང་དུ་གུ་ཧྱ་པྲ་ཛྙཱ་ཞེས་བཏགས། སྔགས་ཀྱི་ཐེག་པ་ལ་བསླབས་པས་ཕྱིས་དངོས་གྲུབ་ཀྱང་ཐོབ། བོད་དུ་བྱོན་པས་ཨཱ་ཙཱ་དམར་པོར་གྲགས་པ་དེ་ཡིན་ནོ། །

ཀྱི་གར་དུ་རྒྱལ་པོ་ཧ་ཡ་བལཱའི་དུས་ཙམ་ན་ཁ་ཆེའི་ཡུལ་ན་བྲམ་ཟེ་

བདེ་བྱེད་དགའ་བ་ཞེས་བྱ་བ་བྱུང་སྟེ། གཞུང་ལུགས་སྤྱི་དང་ཚད་མ་ལ་ཤིན་ཏུ་མཁས་པས་སློ་བདུན་ལ་འགྲེལ་པ་བརྩམས། ཡོངས་སྤྱོད་ཤིན་ཏུ་ཆེ་བར་བྱུང་བ་གྲགས་སོ། །དེ་དུས་ཀ་ཤ་མིར་དུ་རྒྱལ་མོ་ཧྲི་ཧྲཱ་ར་ཎི་ཞེས་པ་བྱུང་། དེས་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཉན་ཐོས་དགྲ་བཅོམ་པ་རྣམས་ཡུན་རིང་ཡོ་བྱད་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་བསྙེན་པ་མཆོད་པར་བྱས་སོ། །དེ་དུས་ལོ་ཙཱ་བ་རིན་ཆེན་བཟང་པོ་གུ་གེ་སྐྱུཊ་ང་རཏྣ་ཙ་སྐྱུ་འཁྲུངས་ནས་ལོ་ཤས་ལོན་པ་དང་། པཎྜིཏ་བསོད་སྙོམས་པ་གཅིས་གིས་རྒྱ་དཔེ་ཀློག་པར་གཟིགས་པས་ཐུགས་……བྱུང་ནས་ཤིང་གི་འདབ་མ་ཞིག་ལ་གཟིགས་པས། མནལ་ལམ་དུ་མཁའ་འགྲོ་མའི་རྟགས་ལྡན་བུད་མེད་གཅིག་གིས་སྦྲིན་བུའི་ཁ་རྒྱུས་རང་ལུས་པ་ལྟར། །

ཡུལ་ལ་ཞེན་པས་བདུད་ཀྱི་རྒྱ་ཙ་ཚད། །
དེ་འདྲས་ཐར་པ་ཐོབ་པའི་མི་སུ་དག །
བྱང་ཕྱོགས་ཁ་ཆེར་ཕྱིན་ནས་ནི། །
རྒྱ་གར་ཤར་ནུབ་རྒྱ་བཞིན་གཉལ་ནས་ནི། །
དམ་ཆོས་རྒྱ་མཚོ་བོད་དུ་བསྒྱུར་ནས་བདེ། །

ཞེས་པའི་ཉན་པའི་ཀྱེན་བྱས་ནས་དཀའ་སྤྱད་དུ་མས་ཁ་ཆེར་ཕྱིན། ཀ་ལ་ལྷ་རི་ཞེས་བྱ་བའི་གྲོང་དུ་སླེབས་པས་བྲམ་ཟེ་ཞིག་གིས་རི་མོ་ཙ་བལྟས་ཏེ་ཤིས་པར་བརྗོད། ཀྱང་མགྱོགས་ཡིད་བཞིན་ནོར་བུ་ལ་བརྟེན་ཏེ་དཔལ་སདྡྷི་ནས་པཎྜི་ཏ་ཤྲདྡྷཱ་ཀ་ར་ཝརྨ་ཏེ་ཡོ་གའི་རྒྱུད་གྲུབ་ཐབས་རྣམས་གསན་ཞིང……བསྒྱུར། པཎྜིཏ་གཞན་ཡང་པོ་ལའང་སྨྲ་འདོགས་བཅད་དེ་བོད་དུ་བཞེད་པའི་ཆེ་རྨི་ལམ་གྱི་ལྟས་ལ་བརྟེན་ནས་པདྨ་ཆེན་ན་ར་པ་དང་། ཀ་མ་ལ་གུཔྟ་ཛི་ན་མི་ཏྲ་སོགས་ལས་ཟབ་པའི་ཆོས་དཔག་ཏུ་མེད་པ་གསན། མདོར་ན་པཎྜིཏའི་བླ་མ་ཡང་བདུན་ཅུ་རྩ་ལྔ་ཙམ་བསྟེན་ནས་གསུང་རབ་རྒྱ་མཚོ་འི་ཕ་རོལ་

ཏུ་སོན་ཞིང་བསྟན་པ་སྔ་དར་ལས་ཕྱི་དར་སྔགས་ཀྱི་བསྟན་པ་བོད་དུ་དར་བ···
ཡང་ལོ་ཙཱ་བ་འདི་ཁོ་ནའི་བཀའ་དྲིན་ཡིན་མངའ་རིས་སུ་ཕེབས་ནསརྒྱལ་བསྟན་ཉིན་མོ་ལྟར་གསལ་བར་མཛད། ལ་དྭགས་སུ་ཕེབས་ནས་ལྷ་ཁང་བ་རྒྱཙ་དང་། རྟེན་བརྒྱ་ཙ་སོགས་བཞེངས་ནས་སངས་རྒྱས་པའི་བསྟན་པ་དར་ཁྱབ་མཛད། སྨར་ཡང་ཁ་ཆེར་ཕེབས་ནས་གསོ་རིག་གི་བསྟན་བཅོས་བོད་སྐད་ད་སྒྱུར་བར··ཕེབས་ནས་ཡན་ལགས་བརྒྱད་པའི་སྙིང་པོ་བསྡུས་པ་བསྒྱུར་ནས་སྟོད་དུ་ཕེབས། དེ་དུས་མི་བཞི་ཁོང་གི་ཞབས་ལ་གཏུགས་ནས་གསོ་བ་རིགས་པའི་སྨན་ངག··མང་པོ་ཞུས་ཏེ་ དེ་རྣམས་ཀྱི་རིགས་བརྒྱུད་མང་མང་པོ་དྭགས་ཀྱི་ཡུལ་གྲུ་ཐམས་ཅད་ལ་དེང་སང་བར་ཡོད་པས། ཨམ་ཅི་ཞེས་མཚན་ཐོགས། དེ་དུས་ལོ་ཆེན་རིན་ཆེན་བཟང་པོས་ཁ་ཆེ་ཡུལ་གྱི་ལྷ་བཟོ་བྲིས་འབུར་མི་གྲངས་སུམ་ཅུ་སོ་གཉིས་འཁྲིངས་ནས་ཨ་ལྩི་དང་། ཉར་མ། ཕྱི་སྤྱིང་། པ་སྒྱུང་དྲུང་སོགས་སྟོད་གཤམ་ལ་དགོན་པ་མང་བར་བཞེངས། དེང་སང་ཡང་ལོ་ཙཱ་བའི་རི་མོ་ཞེས་ཧ་ཅང་ཙ་ཆེར་རྩེ་སྤྲོལ་འདུག

ལ་དྭགས་ཉར་མའི་གཙུག་ལག་ཁང་དུ་ཁ་ཆེ་པཎྜི་ཏ་དང་ལོ་ཆེན་རིན་ཆེན་བཟང་པོ་རྣམས་དབུར་གནས་ཚོགས་པའི་ལོ་རྒྱུས་ཀྱང་འདུག དེ་དུས་པཎྜི་ཏ་ཤཱཀྱ་ཤྲཱི་ཀ་ཤ་མིར་ད་སངས་རྒྱས་ཀྱི་བསྟན་པ་སྤེལ་སྐབས་ཁོང་བོད་དུ··ཕེབས་ནས་ས་སྐྱའི་ལུགས་དར་ཁྱབ་མཛད། དེ་རྗེས་ཀ་ཤ་མིར་དུ་ཆོས་རྒྱལ་ཛ་ཡ་ཕིཊ་ཞེས་པ་བྱུང་། དེས་ཀྱང་ནང་པའི་བསྟན་པ་ལ་སྤྲི་ཞུ་ཆེན་པོ་མཛད། བློན་པོ་དཔལ་ཏ་ནི་བཙུན་མོ་སྦྲ་ས་མནས་ཀྱང་གཙུག་ལག་ཁང་དང་། ནང་བསྟན་ལ་སྤྲི་ཞུ་ཚད་མེད་མཛད་རྗེས་སུ་རབ་ཏུ་བྱུང་ནས་དགྲ་བཅོམ་པར་གྱུར་ཏོ། །

དེའི་རྗེས་ནང་བསྟན་ཇི་ཞན་དུ་སོང་ནས་ལོ་མང་ཙམ་ལ་རྒྱལ་ཕྲན···

འདི་ལ་སིལ་བྲུར་སོང་ནས་ལོ་མང་རྗེས་ཤ་མཱིར་ཟེར་བ་དང་། སྐུས་ཡིམ་རྒྱལ་པོ་སི་ཀོན་ཛར་གཉིས་ཀྱི་དུས་སུ་བཙན་དབང་གིས་ནང་བའི་གཙུག་ལག་ཁང་ཐམས་ཅད་བཤིག་ནས་རྩ་མེད་བྱས། ཉན་ཐོས་དགེ་སློང་རྣམས་ལ་དྭགས་དང་བོད་ཕྱོགས་སུ་བྲོས་ཏེ་ཕེབས་དགོས་བྱུང་། ལ་དྭགས་རྒྱལ་ཁབ་རང་བཙན་གཙང་མ་ཡིན་པར་ཀ་ཤ་མཱིར་དང་ལ་དྭགས་གཉིས་ཁྲིམ་མཚམས····ཀྱི་ཚོལ་དུ་གནས་འདུག་པས་སོ། །

སན་མདྲ་ལམ༔

འཛིག་རྟེན་ཡོངས་ཀྱི་ཕན་བདེའི་ཆད་ལ་དམིགས་ལྷོངས་འདྲེན་ནང་པའི་རིག་གནས་ཀྱི་སློབ་སྦྱོང་།

དགེ་དཀའ་ཆེན་བློ་བཟང་ཆོས་འཕེལ།

འཛིག་རྟེན་ཡོངས་ཀྱི་ཕན་བདེའི་ཆེད་ལ་དམིགས་ལྷུངས་འདྲེན་ནང་པའི་… རིག་གནས་ཀྱི་སློབ་སྦྱོངས་ཀྱི་དགོས་གལ་ཞེས་པའི་དོན་ནི། མཁས་པའི་གཞུང་ལ་བལྟས་ཏེ། ཅུང་ཟད་ཞུ་ན། དེང་སང་འཛམ་གླིང་ཡུལ་གྲུ་ཀུན་ཏུ་ནང་པའི་ཆོས་དང་རིག་གཞུང་རྣམས་ལ་དོ་སྣང་མཛད་མཁན་དང་སློབ་སྦྱོང་… མཛད་མཁན་ཡར་རྒྱས་འགྲོ་དང་། འགྲོ་བཞིན་པའི་དུས་འདིར་རང་རེའི་མང་ཡུལ་ལ་དམིགས་ཀྱི་ལྷོངས་སུ་ཡང་ནང་པའི་རིག་གནས་བླ་ན་མེད་པ་འགྲོ… བ་སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ཀྱི་ཕན་པ་དང་བདེ་བའི་གཞི་རྩ་དེ་ཉིད་མི་ཉམས…… གོང་འཕེལ་དང་། ཉམས་པ་སོར་ཆུད་ཡོང་བའི་བརྩོན་འགྲུས་བྱེད་དགོས་པ་ནི། རང་ཅག་ནང་པ་ཚང་མས་མཛད་འོས་པའི་ཕྲག་ལས་ཡིན་ཏེ། མཁས་པའི་གསུང་ལས་—

སྒྲ་ཚད་བཟོ་གསོ་ནང་དོན་མདོ་སྔགས་ཆོས། །
སྙན་ངག་མངོན་བརྗོད་སྡེབ་སྦྱོར་ཟློས་གར་རྩིས། །
ཆེ་ཆུང་གནས་ལྔ་རིག་པའི་གཞུང་ལུགས་དོན། །
ཇི་བཞིན་རྟོགས་ནས་མཁས་པའི་མཐར་སོན་ཤོག །

ཅེས་གསུངས་པ་བཞིན། དང་པོ་ནང་དོན་རིག་པ་ནི་མདོ་སྔགས་ཀྱི་གཞུང་ལུགས་ལ་སློབ་སྦྱོང་མཛད་དེ། བཀའ་དང་བསྟན་བཅོས་རྣམས་ཀྱི་དགོངས་དོན་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་མཛད་རྒྱུ་དང་། ཆུད་ནས་ཀྱང་འཛིག་རྟེན་ཡོངས་ལ་ཕན་པ་དང་བདེ་བའི་འབྱུང་གནས་སངས་རྒྱས་ཀྱི་བསྟན་པ་དར་ཞིང་

རྒྱུས་དགོས་པ་ཡིན་ནོ། མཁས་མཆོག་དབྱིག་གཉེན་གྱི་གསུང་ལས–

ཚུལ་གནས་ཐོས་དང་བསམ་ལྡན་པས། །
སྒོམ་པ་ལ་ནི་རབ་ཏུ་སྦྱོར། །

ཞེས་གསུངས་པ་ལྟར་རང་ཅག་གིས་སྔོན་གྱི་སྐྱེས་བུ་དམ་པ་རྣམས་ཀྱི་རྗེས་སུ་སློབ་དགོས་ཤིང་། དེ་ཡང་མཛོད་ལས་ཇི་སྐད་གསུངས་པ་ད་ལྟ་དྲངས་མ་ཐག་དེ་ལྟར་གཞི་ཚུལ······ཁྲིམས་རྣམ་པར་དག་པའི་ཐོག་ནས་རྒྱལ་བའི་གསུང་རབ་ལ་ཐོས་བསམ་སྒོམ··གསུམ་གྱིས་ཞུགས་དགོས་པས། ཐོག་མར་བླ་མ་དགེ་བའི་གཤེས་གཉེན་དམ་པའི་ཞབས་དྲུང་ནས་ཐོས་པས་ངེས་པར་བྱེད། དེ་ནས་རང་གིས་བསམ་སྒོམ་སོགས་ཉམས་དག་བྱེད་དགོས། དེ་བྱེད་པའི་གཞི་བརྟན་པའི་རྨིང་པོའམ་གསུང་རབ་ཀུན་གྱི་བརྗོད་བྱའི་གནད་བསྡུས་པ་ལྟ་བུ་ནི་ཚུལ་ཁྲིམས་དང་། སྐྱབས་འགྲོ་ཡིན། སྐྱེས་བུ་གསུམ་གྱི་ལམ་ཐམས་ཅད་སྐྱབས་འགྲོར་ཡང་འདུ་ལ་ཚུལ་ཁྲིམས་སུ་ཡང་འདུ། སྐྱེས་བུ་ཆུང་ངུའི་སྐབས་ཀྱི་མི་དགེ་བཅུ་སྤོང་གི་ཚུལ་ཁྲིམས་དང་། སྐྱེས་བུ་འབྲིང་གི་སྐབས་སོ་ཐར། སྐྱེས་བུ་ཆེན་པོ འི་སྐབས་བྱང་སེམས་དང་། གསང་སྔགས་ཀྱི་ཚུལ་ཁྲིམས་རྣམས་རིམ་བཞིན་རྒྱ་ཆེ་རུ་སོང་བ་ཡིན། ཚུལ་ཁྲིམས་ནི་སྐྱ་སེར་མཐོ་དམན་ཚང་མ་ལ་བསྲུང་དུ་ཡོད་དེ་མདོ་ལས་–

ཚུལ་ཁྲིམས་ལྡན་པ་རྒྱན་རྣམས་ཀུན་གྱི་མཆོག །

ཅེས་གསུངས། ཚུལ་ཁྲིམས་སོགས་ཉམས་ན་ཀླུ་དང་། ཡི་དྭགས་སོགས་སུ་སྐྱེ། དེས་ན་ཚུལ་ཁྲིམས་བསྲུང་བ་འདི་ཤིན་ཏུ་ཁག་ཅན་ཡིན་ནོ། དབུ་མ་འཇུག་པ་ལ་ལས–

སོ་སོ་སྐྱེ་བོ་རྣམས་དང་གསུང་སྐྱེས་དང་། །
རང་བྱང་ཆུབ་ལ་བདག་ཉིད་ངེས་རྣམས་དང་། །

རྒྱལ་སྲས་རྣམས་ཀྱི་ངེས་པར་ལེགས་པ་དང་། །
མངོན་མཐོ འི་རྒྱུ་ནི་ཚུལ་ཁྲིམས་ལས་གཞན་མེད། །

ཅེས་གསུངས། འདིར་ཚུལ་ཁྲིམས་མ་གཏོགས་དགེ་བ་གཞན་མངོན་མཐོ འི་རྒྱུར་མི་འགྲོ་གསུངས་པ་མིན། དགེ་བའི་རྩ་བ་བྱས་ཚད་ཐམས་ཅད་ཚུལ་ཁྲིམས་དང་འབྲེལ། ཚུལ་ཁྲིམས་གཞིར་བྱས་ཏེ་འགྲོ་དགོས་པའི་དོན་ཡིན༎ མི་དགེ་བའི་ལས་བསགས་ཟིན་ན་རང་གིས་བྱས་ཤིང་བསགས་པའི་ལས་ཀྱི་འབྲས་བུ་ནི་ཕྱི་རོལ་གྱི་ས་ཧོ་སོགས་ལ་མི་སྨྲིན་པས། རང་ཉིད་གཅིག་པུའི་སྟེང་དུ་སྨིན་དགོས་པས། ད་ལྟ་རང་གི་ལག་ན་ཡོད་སྐབས་དགེ་སྡིག་གི་བླང་དོར་ངོ་ཤེས་པར་བྱས་ནས་ལག་ལེན་མཛད་དགོས། དེ་ལ་མི་དགེ་བ་བཅུ་ཤེས་དགོས། སྡིག་པ་ཡོད་ཚད་མི་དགེ་བ་བཅུར་མི་འདུ་ཡང་མདོར་དུ་–

དེ་ལས་ཆེ་ལོང་བསྡུས་ན་ནི། །
དགེ་དང་མི་དགེ་ཅི་རིགས་པར། །
ལས་ཀྱི་ལམ་ནི་བཅུར་གསུངས་སོ། །

གསུངས་པ་ལྟར་གནས་རག་པ་གཙོ་ཆེ་བ་རྣམས་སངས་རྒྱས་ཀྱིས་དགེ་མི་དགེ་བཅུར་བསྡུས་ནས་གསུངས་པ་ཡིན་པས། སྤང་དོར་བྱ་སའི་གཉེར་མི་དགེ་བ་བཅུ་སྟེ།

ལུས་ཀྱི་ལས་ནི་རྣམ་པ་གསུམ། །

ཞེས་སོགས་ལྟར་སྲོག་གཅོད་པ། མ་བྱིན་པར་ལེན་པ། ལོག་གཡེམ་སྟེ་ལུས་ཀྱི་གསུམ། རྫུན། ཕྲ་མ། ཚིག་རྩུབ། ངག་འཁྱལ་ཏེ་ངག་གི་ལས་བཞི། བརྣབ་སེམས། གནོད་སེམས། ལོག་ལྟ་སྟེ་ཡིད་ཀྱི་ལས་གསུམ་བཅས་མི་དགེ་བ་བཅུ། དེ་རེ་རེ་ལ་གཞི། བསམ་པ།

སྦྱོར་བ། མཐར་ཐུག་བཞི་བཞི་དང་། བསམ་པ་ལ་འདུ་ཤེས་ཉོན་མོངས་ཀུན་སློང་གསུམ་རེ་ཡོད། སྲོག་གཅོད་ཀྱི་གཞི་རང་ལས་གཞན་པའི་སེམས་ཅན་ཕ་རོལ་པོ་ཞིག་དགོས་པས། མི་དགེ་བ་བཅུའི་ངོས་འཛིན་གཞུང་དུ་གསལ་བ་ལྟར་ལ། བསམ་པས་ཁྲོ་གསོད་སྙམ་ནས་མི་བསད་པ་ལྟ་བུ་ནི། སྲོག་གཅོད་ཀྱི་ལས་ལམ་མ་རྫོགས། འདོད་ཆགས་ཀྱིས་སྲོག བཅད་པ་ཤ་དོན་དུ་གཉེར་བ་ལྟ་བུ། ཞེ་སྡང་ནི་དགྲ་བསད་པ་ལྟ་བུ།། གཏི་མུག་ནི་མུ་སྟེགས་པ་སོགས་ཀྱིས་ཆོས་མིན་ལ་ཆོས་སུ་འཁྲུལ་ནས་དམར་མཆོད་འབུལ་བའི་དོན་དུ་ལུག་བསད་པ་ལྟ་བུ་ལས་ལམ་རྫོགས་…པ་ཡིན། མི་བཅུ་གྲོས་མཐུན་གྱིས་ལུག་གཅིག་བསད་ཀྱང་ལས་ཀྱི་རྣམ་སྨིན་ནི།། མི་བཅུ་སོ་སོ་ནས་ལུག་རེ་བསད་པའི་སྡིག་པ་ཆ་ཚང་རེའི་འབྲས་བུ་མྱོང་དགོས། དམག་འཐབ་སར་མི་ཅི་ཙམ་ཤི་བའི་གྲངས་ཀྱི་སྡིག་པ་བྱུང་པས།། དམག་མི་མང་པོས་མི་ཅི་ཙམ་བསད་པའི་སྡིག་པ་ཆ་ཚང་རེ་དམག་དཔོན་ལ་འབྱུང་བ་ཡིན། ཤིག་དང་འབུ་ལྟ་བུ་བསད་ཀྱང་སྲོག་གཅོད་ནི་མི་དགེ་བ་ཆེན་པོ་ཡིན་པས། དམྱལ་བའི་རྒྱུར་འགྲོ་བ་ཡིན་ཞིང་། རང་གི་རང་སྲོག་ལ་ཅི་ཙམ་གཅེས་པ་དང་། རང་གསོད་མཁན་འབྱུང་ན་འཇིགས་སྐྲག་དང་སྡུག་བསྔལ་དེ་འདྲ་འོང་བ་ནི་དེ་བཞིན་དུ་གཞན་གྱི་སྲོག་གཅོད་པ…དང་། གཅོད་དུ་ཞུགས་པ་རྣམས་འདྲ་ཚུལ་བསམ་དགོས་པ་ཡིན་དེ། ཀླུ་སྒྲུབ་ཀྱིས…

སྲོག་གཅོད་ཚེ་ཐུང་ནད་མང་དང་། །
མ་བྱིན་ལེན་གྱིས་ལོངས་སྤྱོད་དབུལ། །
ལོག་གཡེམ་ཚུང་མར་དགྲ་དང་བཅས། །
རྫུན་གྱིས་སྐུར་འདེབས་མི་དགེ་དང་། །

ཕྲ་མས་བཤེས་ཉུང་མཛའ་དང་བྲལ། །
ཚིག་རྩུབ་ཀྱིས་ནི་མི་སྙན་ཐོས། །
ངག་འཁྱལ་རང་གི་ཚིག་མི་བཙུན། །
བརྣབ་སེམས་ཡིད་ལ་རེ་བ་འཇོམས། །
གནོད་སེམས་འཇིགས་ཤིང་སྐྲག་པ་དང་། །
ལོག་ལྟས་ལྟ་བ་ཟིང་ཟིང་པོ། །

ཞེས་གསུངས་སོ། །

ཚུལ་ཁྲིམས་རྣམ་དག་རྩ་བ་རབ་བརྟན་ཅིང་། །
ཐོས་བསམ་སྒོམ་པའི་ཡལ་ག་རབ་ཏུ་རྒྱས། །
དོན་གཉིས་འབྲས་བུའི་ཁུར་གྱིས་རབ་བཏུད་པའི། །
སྐལ་ལྡན་བྱུང་བའི་ཚོགས་རྣམས་འཕྲུར་འགྱུར་ཅིག །

ནུབ་ཕྱོགས་སུ་ལ་དྭགས་ཀྱི་ཤེས་རིག་གི་སློབ་སྦྱོང་།

ངག་དབང་ཚེ་རིང་།

ལ་དྭགས་ནི་རིག་གཞུང་དང་ཤེས་རིག་གི་ཐོག་ནས་ཤིན་ཏུ་ཕྱུག་པའི་ཡུལ་ཞིག་ཡིན། བོད་ཀྱི་ཆོས་རྒྱལ་སྲོང་བཙན་སྒམ་པོ་འི་བློན་པོ་ཐུ་མི་སཾ་བྷོ་ཊས་བཙམས་པའི་དབྱངས་བཞི་དང་། གསལ་བྱེད་སུམ་ཅུ་ཡོད་པའི་ཡི་གེ་བོད་པ་ཀུན་ལྟར་ལ་དྭགས་པ་ཀུན་གྱིས་ཀྱང་བརྒྱ་ཕྲག་བདུན་པ་ནས་བསྐྱང···· འབད་ཀྱིན་ཡོང་བཞིན་ཡིན། དེ་ལྟར་ན་ཁ་ཤས་ཀྱིས་ཡི་གེ་དང་སྐད་ཡིག་འདི་ལ་དྭགས་ཀྱི་སྐད་ཟེར། ཡང་ཁ་ཤས་ཀྱིས་བོད་པའི་སྐད་དང་། བྷོ་ཊ་ཡང་ཟེར། ངའི་བསམ་འཆར་གང་ཟེར་ནའང་དོན་འགྲེལ་མི་འདུག གང་ལགས་ཞུ་ན་བོད་པ་དང་ལ་དྭགས་གཉིས་སྔོན་དུས་ནས་སྐད་དང་ཡི་གེ་·· ངག་གཞུང་དང་ཤེས་རིག ཆོས་དང་དཔལ་འབྱོར་གྱི་ཐོག་ནས་ཡུལ་གཅིག་ལྟ་བུར་གནས་ཡོད། དཔེར་ན་སྐད་ཀྱི་གནས་ཞུ་ན་བོད་མི་ཡིན་ནའང་འདྲ། ལ་དྭགས་པ་ཡིན་ནའང་འདྲ། སྐད་ཆ་ཤོད་དུས་མིང་ཚིག་ཀུན་གཅིག་རང་ཟེར༏ དཔེར་ན། ས་དང་ཆུ། མེ་དང་རླུང་། ནམ་མཁའ་འབྱུང་བ་ལྔ་ལ་བོད་པས་ཀྱང་དེ་རང་ཟེར། ལ་དྭགས་པས་དེ་རང་ཟེར། དེ་བཞིན་དབང་པོ་ལྔ། མིག་རྣ་བ་སྣ་ལྕེ་ལུས། རིན་པོ་ཆེ་སྣ་ལྔ· གསེར། དངུལ༏ ཟངས། རགས། བྱུ་རུ། ཁ་དོག་ལྔ དཀར་པོ། དམར་པོ༏ སེར་པོ། སྔོན་པོ། ལྗང་ཁུ། སྤྱི་མིང་ཀུན་ལ་གཉིས་ཀས་ཀྱང་གཅིག་ལྟར་ཟེ་རོ། །

དེ་བཞིན་ཡི་གེ་དག་པོ་འབྲི་ཕྱིར་བོད་པ་དང་ལ་དྭགས་པ་གཉིས་ཀས·· ཐུ་མིས་བཙམས་པའི་སུམ་ཅུ་པ་དང་། རྟགས་འཇུག་པ་ལ་སློབ་སྦྱོང་བྱེད།

དེ་ལྟར་རིག་གཞུང་དང་།   ཤེས་རིག་གི་ཐོག་ནས་ཡུལ་གཉིས་ཀ་གཅིག་ལྟར་ཡིན། ལ་དྭགས་པ་ཀུན་དང་། བོད་པ་རྣམས་ཆོས་ཀྱི་ཐོག་ནས་མཐུན། ཡུལ་གཉིས་ཀའི་ནང་ནང་པ་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཐེག་པ་ཆེན་པོ འི་ཆོས་དར་བ་དང་མཉམ་ཆོས་ལུགས་ཚང་མའི་དགོན་པ་དང་། གྲུབ་མཐའ་རྣམས་ཡོད། དེ་བཞིན སྲིད་བྱུས་ཀྱི་ཐོག་ནས་ཀུང ལ་དྭགས་ཀྱི་རྒྱལ་པོ ་ཐོག་མ་དཔལ་གྱི་དགོན་བོད་ཀྱི་ཆོས་རྒྱལ་སྐྱིད་ལྡེ་ཉི་མ་མགོན་གྱི་སྲས་ཡིན་རྒྱལ་རབས་ཀྱིས་དཔང་པོ···བསྟན།   དེ་ལྟར་དཔལ་འབྱོར་གྱི་ཐོག་ནས་ལ་དྭགས་དང་། བོད་གཉིས་ཀྱི་བར་ ༡༢༥༢ བར་འབྲེལ་བ་ཡོད་པ་མ་ཚད་ལ་དྭགས་ནས་ཀུང་གྲྭ་བ་རྣམས་བོད་ཀྱི་ཆོས་གྲྭ་ཆེན་པོ་ཀུན་ལ་སློབ་སྦྱོང་ཕྱིར་སྐྱོད་པའི་སྲོལ་བཟང་ཡོད་པ·····ཡིན།   ཡིན་ཀུང་ད་བོད་རྒྱ་ནག་པོ ཅི་འོག་ཏུ་ཤོར་པ་ནས་བོད་འདི་རང་དབང་རང་བཙན་གྱི་ཡུལ་ཞིག་ཏུ་མ་ལུས།   བོད་མི་སྟོང་ཕྲག་མང་པོ་ཞིག་རང་རང་གི་ཕ་ཡུལ་དང་དགོན་པ་སྐུ་གསུང་ཐུགས་རྟེན་ཀུན་བཞག་ནས་རྒྱ་གར···ལ་ཐེབས་དགོས་བྱུང་།   གནས་ལུགས་འདི་ལྟར་ལ་བརྟེན་ལ་དྭགས་པ་ཀུན་ལ་རང་རེའི་ཆོས།   སྐད་དང་།   ཤེས་རིག་ལ་བདག་སྐྱོན་བྱེད་པའི་འགན་ཆེན་པོ ་ཞིག་ཐོག་པ་ཡིན་ནོ།   །དེ་བཞིན་ད་ལན་ངའི་རྩོམ་གྱི་དོན་དེ་ནུབ་ཕྱོགས་ནང་ལ་དྭགས་ཀྱི་ཤེས་རིག་གི་སློབ་གྲྭ་བཟོ་བ་ཡིན།

འདས་པའི་ལོ་བརྒྱ་ཕྲག་གཅིག་ནང་ནུབ་ཕྱོགས་སུ་བོད་ཡིག་སློབ་སྦྱོང་གི་ཐོག་ནས་ཡར་རྒྱས་ཆེན་པོ་འགྲོ་བཞིན་ཡིན་ནོ།   །འདི་ལྟ་བུའི་བོད་ཡིག་ལ་སློབ་སྦྱོང་ཞུགས་ཆེར་འབད་པས་མཁས་པ་ཀུན་ནས་ནང་པའི་ཆོས་དང་། ཤེས་རིག་གི་ཐོག་ནས་སྐྱེ་བ་སོ་མ་ལེན་མཁན་ལྟ་བུ་ཞིག་ཡིན་ཅེས་བརྗོད་དེ···འདུག   གང་ལྟར་ལོ་བརྒྱ་ཕྲག་གཅིག་གི་ནང་ནུབ་ཕྱོགས་ཀྱི་གླིང་ཕྲན་ཨ་མེ་རི་ཀ་དང་།   ཡོ་ཤེ་ཡེ་གླིང་ཕྲན་ནང་བོད་ཡིག་སོགས་སློབ་སྦྱོང་གི་ཐོག

ནས་ཡར་རྒྱས་ཤིན་དུ་ཤུགས་ཆེན་པོ་ཞིག་སླེབ། འཛམ་གླིང་གི་ཧྥ་ལམ་ཡུལ་ཚང་མའི་ནང་རང་ཅག་གི་སྐད་དང་ཤེས་རིག་ཀུན་ཁྱབ་སྤེལ་མང་པོ……ཞིག་སོང་ཡོད། དེ་ལྟར་འགྲོ་བའི་རྒྱུ་མཚན་གཅིག་ནི་རང་ཅག་གི་ཡི་གེའི་ནང་དུ་སངས་རྒྱས་ཐུགས་རྗེ་ཅན་གྱི་གསུང་ཟབ་མོ་རྣམས་སྔོན་ལྟར་མ་ཉམས…པར་ལུས་ཡོད་པས་ཡིན་ནམ་བསམ། གང་ལགས་ཞུ་ན་ཆོས་ཀྱི་སྐོར་ཙམ་ཞིག་རིག་གཞུང་རང་ཅག་གི་སྐད་དང་ཡི་གེའི་ནང་དུ་ཡོད་པ་དེ་ཙམ་ཞིག་སཾ་སྐྲིཏ་དང་། པཱ་ལིའི་སྐད་ཀུན་གྱི་ནང་དུ་མ་ལུས་པ་ཡིན།

དེ་བཞིན་ནུབ་ཕྱོགས་ནང་བོད་ཡིག་སློབ་སྦྱོང་གི་ཐོག་མར་སྐྱུལ་མ་བྱེད་མཁན་ནི་ཧང་ག་རི་པ་སྐུ་ཞབས་སོ་མ་ཏེ་ཀོ་རས་ཞུ་བ་ཡིན། ཁོང་ལ་མཁས་པ་ཀུན་གྱིས་ཧང་ག་རིའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཞུའོ། །བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སོ་མ་ཏེ་ཀོ་རས་ཀྱིས་རང་གི་བོད་ཡིག་སློབ་སྦྱོང་གི་བཀྲ་ཤིས་འགོ…འཛུགས་ནི་རང་རེའི་ལ་དྭགས་ནས་མཛད་པ་ཡིན་འདུག ཁོང་ཟངས་དཀར་གྱི་ཕུག་དལ་དགོན་པ་ཙ་ཕྱི་ལོ་ ༡༨༡༨ ནས་ ༡༨༢༣ བར་གྱི་དུས་ནང་བཞུགས…ནས་དགོན་པའི་མཁས་མཆོག་གྲུབ་པ་ཀུན་བསྟེན་ནས་བོད་ཡིག་བསླབས་པར་མཛད།། རྗེས་སུ་ཁོང་གིས་ཟངས་དཀར་གྱི་སློབ་དཔོན་སངས་རྒྱས་ཕུན་ཚོགས་དང་མཉམ་རང་གི་མིང་གྲགས་ཅན་གྱི་ཕྱག་དཔེ་བོད་ཡིག་དང་། དབྱིན་སྐད་ཀྱི་ཚིག་མཛོད་དེ་ ༡༨༣༤ ནང་ཀ་ལ་ཀ་ཏ་ནས་གཞུང་གི་འགྲོ་གྲོན་..གནང་ནས་སྤར་བསྐྲུན་མཛད། ཁོང་གི་ཕྱག་ལས་འདི་མཛད་པའི་རྗེས་སུ་ནུབ་ཕྱོགས་ཀྱི་ཡུལ་ཀུན་གྱི་ནང་བོད་ཡིག་སློབ་སྦྱོང་གྱི་ཐོག་རྒྱལ་རབས་སོ…མ་ཞིག་འགོ་འཛུགས་སོང་། དམིགས་བསལ་དུ་སོ་མོ་ཏེ་ཀོ་རས་མཆོག་གིས་རང་གི་ཚིག་མཛོད་བྲིས་པ་ནས་བོད་ཡིག་སློབ་སྦྱོང་མཛད་མཁན་ཀུན་ལ་རྒྱབ་སྐྱོར་ཆེན་པོ་ཞིག་ཐོབ།

སྐུ་ཞབས་སོ་མ་ཧེ་ཀོ་རས་ཀྱི་རྗེས་སུ་བོད་ཡིག་གི་ཐོག་ནས་རང་རེའི་ལ་དྭགས་ནང་དུ་ཕྱུག་ལས་མཛད་མཁན་ཤུབ་ཕྱོགས་པ་མཁས་པ་ཞིག་ནི་སྐུ་…ཞབས་ཧེན་རིཛ། ཡ་གསཊ། ཛས་ཀེ་ཡོན། ཁོང་མ་ཤྲི་ཀ་པའི་ཆོས་སྤེལ་མཁན་ཞིག་གི་ཚུལ་དུ། སྐྱེ་ལང་བརྒྱུད་ནས་ལ་དྭགས་སུ་ཕེབས། ཛས་ཀེ་མཆོག་ ༡༨༥༦ གྱི་དབྱར་དུས་སུ་ལ་དྭགས་སུ་ཕེབས། ནས་དོག་དུ་བསྐྱོད་དེ་སྐུ་ཞབས་བསོད་ནམས་རབ་རྒྱས་ཀྱི་ཁང་པར་བཞུགས་ཏེ་བོད་ཡིག…སྦྱངས་པར་མཛད། དེ་རྗེས་ཁོང་བོད་ཡིག་ལ་མཁས་པར་གྱུར་ནས་ཕྱི་རྒྱལ་པའི་སྐད་ཀྱི་དེབ་རེའང་ལ་དྭཊ་ཀྱི་སྐད་ཡིག་ནང་བསྒྱུར་བར་མཛད། དེ་རྟིང་ན་ཁོང་སྐྱེ་ལང་ལ་ལོག་ཕེབས་ཏེ། དེ་སྐབས་ཀྱི་སྐྱེ་ལང་གི་མི་ཤྲན་སློབ་གྲྭའི་ ཕྲུ་གུ་ཀུན་ལ་བསླབ་པའི་ཕྱིར་དབྱིན་ཇི་དང་། བོད་སྐད་ཤན་སྦྱར་པའི་དེབ་ཞིག་སྤེལ་བར་མཛད། དེ་བཞིན་ཁོང་ཐེ་ཚོམ་མེད་པར་བོད་ཡིག་གི་ཐོག་ནས་ནུབ་ཕྱོཊ་ཀྱི་མཁས་པ་ཚེ་ཤོས་ཀྱི་གྲས་སུ་བརྩི། ཕྱི་ལ་ ༡༨༦༥ ནང་ཁོང་གིས་སུམ་རྟཊ་ཀྱི་དེབ་ཅིག་སྤེལ་བར་མཛད། ཡང་ལོ་གཅིག་ནས་དབྱིན་སྐད་བོད་ཡིག་གི་ཚིག་མཛོད་ཆུང་ཆུང་ཞིག་སྤེལ་བའི་རྗེས་སུ་ཧྱིན་དེ་ཝུར་དུ་དང་། བོད་ཡིག་གི་ཚིག་མཛོད་ཀུང་སྤེལ་བར་མཛད། ཚིག་མཛོད་དེ་བོད་ཡིག་མཁྱེན་མཁན་ཀུན་གྱི་ནང་མིང་གྲགས་ཅན་སོང་། རྗེས་སུ་ ༡༨༩༥ ནང་དེབ་ཀྱི་ཕྱིར་བོད་ཀྱི་བཀྲ་ཤིས་ལྷུན་པོ་འི་དགོན་པ་ནས་ཁོང་ལ་དམིགས་བསལ་གྱི་ཞུ་པ་རེའང་ཕེབས། ཇར་མན་ཡུལ་དུ་ལོག་ཕེབས་ནས་ཁོང་གིས་བོད་ཡིག ཇར་མན་ཚིག་མཛོད་གཅིག་ ༡༨༧༦ ནང་སྤེལ་བར་མཛད། དེའི་རྗེས་སུ་ཕྱི་ལོ་ ༡༨༨༡ ནང་གཞུང་གི་འགྲོ་གྲོན་སྟུལ་ནས་ཁོང་གིས་འཛམ་གླིང་ནང་སྐད་གྲགས་ཡོད་པའི་བོད་ཡིག་དབྱིན་སྐད་ཀྱི་ཚིག་མཛོད་ཞིག་འདོན་སྤེལ་མཛད་དོ། །

ཛས་ཀེ་སྐུ་མདུན་གྱིས་རྗེས་སུ་ ༡༨༩༦ ནང་ལ་དྭགས་རྒྱལ་རབས་

འབྲི་མཁན་མཁས་པ་ཨ་གསྟ་ཧྲར་མན་ཕེ་རེངས་ཀེ་སྐུ་མདུན་བོད་ཡིག་ལ···· སློབ་སྦྱོངས་རྒྱས་པ་མཛད་ཆེད་སྒྲི་ཧྲ་ཕེབས། ཕྱི་ལོ་ ༡༨༩༩ ནང་ཁ་ལ་རྩེར་སྐུ་ཞབས་ཆོས་འཕེལ་ནས་རོགས་རམ་ལེན་ནས་མ་ཤྲི་ཀ་པའི་ཆོས་ཚིག·· ཤྲིག་བཙུགས། སྐུ་ཞབས་ཆོས་འཕེལ་ཞུ་མཁན་དེ་སྔོན་དུ་བོད་ལ་བསྐྱོད་མཁན་གྱི་གྲྭ་བ་ཞིག་ཡིན་ནོ། །ཕེ་རེངས་ཀ་ཡིས་ལ་དྭགས་ཀྱི་རྒྱལ་རབས་མཁར་དང་དགོན་པ་ཀུན་གྱི་སྐོར་དང་ལ་དྭགས་ཀྱི་གླུ སྒྲུང་དང་། གཏམ་དཔེའི་དཔེ་ཆ་མང་པོ་ཞིག་སྤེལ་བར་མཛད། ཕྱི་ལོ་ ༡༩༠༨ ནང་ཁོང་གིས་ལ་དྭགས་ཀྱི་སྐད་ཡིག་ཐོག་ལ་དྭགས་ཉིན་ཤོག་ཟེར་བའི་གསར་ཤོག···· ཞིག་ཀྱང་སྤེལ་བའི་འགོ་འཛུགས་མཛད། ཁོང་ནི་ཛམ་མུ་ཀ་ཤ་མིར་མངའ་སྡེའི་ནང་གསར་ཤོག་སྤེལ་མཁན་དང་པོ་རང་ཡིན། དེ་མིན་ཡང་ཁོང་གིས་མ་ཤྲི་ཀ་པའི་ཆོས་ཀྱི་བསྟན་བྱ་མང་པོ་ཞིག་བོད་ཡིག་ནང་དུ་སྤེལ་བ··· ན་རྗེས་སུ་ཁོང་བོད་ཡིག་ཐོག་སྐུ་ཡོན་ཆེན་པོ་ཡོད་སྐོར་ཇར་མན་ནང་དུ་གྲགས། ཡང་བར་ལེན་མཐོ་རིམ་སློབ་གྲྭས་ཕྱི་ལོ་ ༡༩༣༤ ནང་བོད་ཡིག་གི་དགེ་རྒན་གྱི་གོ་གནས་ཕུལ་ལོ། །

ཇས་ཀེ་དང་ཕེ་རེངས་ཀེ་གཉིས་ཀ་མ་ཤི་ཀ་པའི་ཆོས་སྤེལ་མཁན་གྱི··· ཚུལ་དུ་ལ་དྭགས་སུ་ཕེབས། འོན་ཀྱང་ཁོང་གཉིས་ཀྱིས་རང་རེའི་ལ་དྭགས་ཀྱི་སྐད་དང་ཤེས་རིག་གི་ཐོག་ནས་ཕྱུག་པོ་ཡོན་པ་དེ་ཤེས་ནས་རང་གི་དུས··· མང་པོ་ཞིག་ལ་དྭགས་སུ་རིག་གཞུང་དང་ཤེས་རིག་གི་ཞབས་ཏོག་ཞུ་ཡིན··· འཕུད་པ་ཡིན། འདི་ལྟ་བུའི་མཁས་པ་ཆེན་པོ་ཀུན་ཀྱིས་རང་ཅག་གི་སྐད་དང་ཡི་གའི་ཐོག་ནས་ཕྱུག་ལས་མཛད་ནས་བདེན་པར་ནུབ་ཕྱོགས་སུ་བོད···· ཡིག་སྤེལ་བར་རོགས་ཆེན་པོ་ཞིག་སླེབས། ངའི་བསམ་ཚུལ་ལྟར་ན་དེང་སང་ལ་དྭགས་སུ་ཇར་མ་ནི། སུ་ཟར་ལེན། དབྱིན་ཡུལ། ཕ་རན་སི།

དང་ཨེས་ཊ་ལི་ཡ་ལྷ་བྲུའི་ཡུལ་ཀུན་ནས་སྐོར་གཡེངས་པ་མང་པོ་ཞིག……ཕེབས་པའི་རྒྱུ་མཚན་དེ་ཡང་ཁོང་གིས་མཛད་པའི་ཕྱག་ལས་ཀུན་དང་གཞན……མོ་ར་བི་ཡན་ཆོས་སྤེལ་མཁན་ཀུན་གྱིས་ཐུགས་རྗེ་བཀའ་དྲིན་ཡིན་ནམ་སྙམ།

ཁོང་མིན་པར་རྒྱ་གར་གྱི་མཁས་པ་ཤ་རད་ཙན་དྲ་དཱས་ཀྱིས་ཀྱང་རང་གི་རིན་ཅན་བོད་ཡིག་དབྱིན་ཇིའི་ཚིག་མཛོད་སྟན་གྲགས་ཅན་དེ་འགྲེམ་སྤེལ……བྱས་པར་བརྟེན་ནུབ་ཕྱོགས་ཀྱི་ཡུལ་ཀུན་གྱི་ནང་བོད་ཡིད་སློབ་སྦྱོང་གི་ཐོག……རོགས་རམ་ཤུགས་ཆེན་པོ་སླེབས་ཏེ་ཡིན། དེ་མིན་ཡང་རང་རེའི་ལ་དྭགས་ཀྱི་མཁས་པ་སྐྱུ་ག་ཤེགས་དཀའ་ཆེན་ཡེ་ཤེས་དོན་གྲུབ་སྐྱུ་མདུན་གྱིས་ཀྱང་རོ་ཡལ་ཨེ་ཤི་ཡ་ཊིཀ་ཚོགས་པ་ཀ་ལ་ཀ་ཏར་བཞུགས་ནས་ནུབ་ཕྱོགས་སུ་བོད་ཡིག་སྤེལ་ཕྱིར་ཕྱག་ལས་འགངས་ཅན་མཛད་དོ། །

དེ་བཞིན་དེང་སང་ནི་ནུབ་ཕྱོགས་གླིང་ཕྲན་གྱི་ཡུལ་མང་པོ་ཞིག་གི་ནང་དུ་བོད་ཡིག་སློབ་སྦྱོང་གི་ཐོག་ནས་ཡར་རྒྱས་ཆེན་པོ་ཞིག་སླེབ་བཞིན་ཡིན་ནོ། ། ༡༩༨༣ ནང་གྲུས་པ་ཨ་མེ་རི་ཀའི་ནེའུ་ཡོག་གི་གྲོང་ཁྱེར་ནང་བོད་དང་ཧི་མ་ལ་ཡའི་ཤེས་རིག་ཐོག་མཛམ་གླིང་བགྲོ་གླེང་ཚོགས་འདུའི་ནང་དུ་འཐུས་མི་ར་འགྲོ་བའི་སྐབས་དབྱིན་ཡུལ་གྱི་རྒྱལ་ས་ལན་དན་ནང་ཧེ་ས་བཞི་ཙམ་བསྡད་ནས་ལན་དན་མཐོ་རིམ་སློབ་གྲྭའི་བོད་ཡིག་སློབ་ཁང་གྱི་ཡན……ལག་དེ་བལྟ་བའི་སྐབས་ཐོབ། དེ་སྐབས་སློབ་གྲྭའི་བོད་ཡིག་གི་དཔེ་མཛོད་ཁང་མཇལ། ཕྱོགས་གཅིག་ནས་བལྟ་ན་རང་རེའི་རིག་གནས་ཀྱི་དཔེ་ཆ་མང་ཙམ་ཞིག་ད་ལྟ་ཁོང་གིས་བསྡུས་ཏེ་ཡོད། དེ་ཙམ་ལ་དྭགས་ཉང་སེད་དམ་སྙམ།

དེ་མིན་ཡང་དེང་སང་དབྱིན་ཡུལ་གྱི་ཨོགས་ཕོཊ་དང་། སྐོ་ཊ་ལེན་ཊ་མཐོ་རིམ་སློབ་གྲྭ་ཀུན་གྱི་ནང་དུ་བོད་ཡིག་སློབ་པའི་གྲྭ་སྒྲིག་ཡོད་དེ……

ཡིན་ནོ། །དེ་བཞིན་ནུབ་ཕྱོགས་ཛར་མན་ནི་སོགས་ཀྱི་མཐོ་རིམ་སློབ་གྲྭ་དང་། ཨུ་ཤིག་ཀུན་གྱི་ནང་བོད་ཡིག་སློབ་པའི་གྲྭ་སྒྲིག་དང་། ཞིབ་དཔྱོད་བྱེད་སའི་གྲྭ་སྒྲིག་རྒྱས་པ་ཡོད་དེ་ཡིན་ནོ། །དེ་བཞིན་ཕ་རན་ས་ཀྱི་པེ་རི་ས་རྒྱལ་ས་དང་། ཧྭང་ག་རིའི་བུ་ཌ་པེས་ཊ། ཀུན་གྱི་ནང་བོད་ཡིག་སློབ་པའི་གྲྭ་སྒྲིག་ཡོད་དེ་ཡིན་ནོ། །དེ་མིན་ཡང་སུ་ཛར་ལེན། ཧོ་ལེན། ཊེན་མརག ནོར་ཝེ་བཅས་ནུབ་ཕྱོགས་ཀྱི་ཡུལ་མང་པོ་ཞིག་གི་ནང་བོད་ཡིག་སློབ་པའི་གྲྭ་སྒྲིག་རྒྱས་པ་ཡོད་དེ་ཡིན་ནོ། །གང་ལྟར་སངས་རྒྱས་ཐུབ་ཛེ་ཙན་གྱིས་བཀའ་བརྒྱད་སྟོང་པའི་ནང་དུ་གསུངས་པ་བཞིན····

མ་འོངས་པ་ན་ང་ཡི་བསྟན་པ་ལྷོ་ཕྱོགས་འདུལ་བ་སྐྱིང་པོར···
དར་བར་འགྱུར་རོ། །དེ་ནས་ཀྱང་བར་དུ་ནི་ཡུལ་དུ་དར་བར་འགྱུར་རོ །
དེ་ནས་ཀྱང་བྱང་དུ་དར་བར་འགྱུར་རོ། །དེ་ལྟར་མ་འོངས་པ་ན་ནུབ་ཕྱོགས་ནང་སངས་རྒྱས་ཀྱི་བསྟན་པ་དར་བ་དང་ཆབས་ཅིག་རང་རེའི་ཤེས་རིག་འདི···
ཡང་དར་ཞིང་རྒྱས་པར་འགྱུར་བར་ངེས་སོ།། ||

ལ་དྭགས་ཀྱི་དགོན་པ་རྣམས་ཀྱི་སྲུང་སྐྱོབ་དང་ཡར་རྒྱས་ཀྱི་དཀའ་ངལ།

ཨོ་རྒྱན་འགྲོ་འདུལ།

སྒྲོས་བྲལ་ཆོས་སྐུའི་ནམ་མཁའི་གྲོང་ཁྱེར་སྟོང་རྗེའི་རང་གིས……
བསྒྱུབས་པ་ལས། །
གཞན་དོན་སྤྲུལ་སྐུ་ག་བུར་འཛིན་པ་འགྲོ་བ་ཡོངས་ཀྱི་དཔལ་…
ཤར་བར། །
བདག་སོགས་མ་རུང་སྙིགས་གཉིས་ཚ་བའི་ནད་ཀྱིས་བདབ་པའི་·
འགྲོ་བ་ལ། །
དམ་ཆོས་བདུད་རྩིའི་བསིལ་ཟེར་འགྱེད་ཕྱིར་རྣམ་པ་ཀུན་ཏུ……
གྲུས་པས་བཏུད། །

ཅེས་མཆོད་པར་བརྗོད་པའི་མདུན་བསུས་སྟེ་གང་བརྗོད་པར་བྱ་བའི་གཞི་ནི་དགོན་པ་རྣམས་ཀྱི་སྲུང་སྐྱོབ་ཡིན་ལ། དེ་ཡང་རྒྱ་གར་བྱང་ཕྱོགས་སུ་ཆགས་པའི་དངུལ་དཀར་གྱི་ར་བས་བསྐོར་བའི་ལ་དྭགས་ཀྱི་ལྗོངས་འདི་ནི……ཤེས་རིག་གི་འདབ་བརྒྱ་སྣ་ཚོགས་རྒྱས་པའི་སྐྱེད་ཚལ་ཞིག་ཡིན། སྐྱེད་ཚལ་འདིའི་ཐུན་མོང་མ་ཡིན་པའི་ཤེས་རིག་གི་ཆུ་སྐྱེས་ལས་བྱུང་བའི་དྲི་ཞིམ་གྱི……ངད་ཕྱོགས་ཀུན་ཏུ་ཁྱབ་པར་བརྟེན། དེང་སང་འཛམ་གླིང་གི་ས་གནས་མང་པོ་ནས་སྐོར་གཡེངས་པའི་སྒྲང་རྩི་འཐུང་བ་མང་པོ་ཞིག་ཆུ་སྐྱེས་འདི་རྣམས……ལས་སྦྲང་རྩི་ལེན་ཆེད་འདུས་ཏེ་ཡོང་བཞིན་པ་ཡིན། འདིར་རྒྱས་པའི་ཤེས་རིག་ཕལ་ཆེ་བ་ནི་ཆོས་ལ་བརྟེན་པ་ཤ་སྟག་ཡིན། དེ་ཡང་ཆོས་ཀྱི་དགོས་དོན་ནི། སེམས་ཅན་གྱི་བདེ་སྐྱིད་ཡིན་ལ། སེམས་ཅན་ཅི་འདྲ་ཞིག་ཡིན་ཀྱང་བདེ་བ་འདོད་པ་དང་། སྡུག་བསྔལ་ཕྲན་བུ་ཙམ་ཡང་མི་འདོད་པའི་ངང་

ཚུལ་ཅན་ཡིན་པ་ནི་ཇི་སྐད་དུ–

སྡུག་བསྔལ་ཕྲ་མོ་ཙམ་ཡང་མི་འདོད་ཅིང་། །

བདེ་ལ་ནམ་ཡང་ཆོག་ཤེས་མེད་པ་ནི། །

ཞེས་གསུངས་པ་སོགས་ཡིན་ཅིང་། རྒྱུ་མཚན་དེས་ན་སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་སྡུག་བསྔལ་སྤོང་ཐབས་དང་། །བདེ་བ་སྒྲུབ་ཐབས་ལ་མཐའ་གཅིག་ཏུ་གཞོལ་བའི་ངང་ཚུལ་ཡིན་ཀྱང་ལས་ཉོན་གྱི་དབང་གིས་སྡུག་བསྔལ་གྱི་རྒྱུ་ལ་བདེ་བ་འབྱུང་བའི་ཐབས་སུ་རློམ་ཞིང་བདེ་བ་སྒྲུབ་པའི་ལན་སྡུག་བསྔལ་བརྒྱ་ཕྲག་ལ་རང་དབང་མེད་པར་སྦྱོར་བའི་རང་བཞིན་ཅན་ཡིན་པ་ནི། སྤྱོད་འཇུག་ལས་

སྡུག་བསྔལ་འདོར་འདོད་སེམས་ཡོད་ཀྱང་། །

སྡུག་བསྔལ་ཉིད་ལ་མངོན་པར་རྒྱུགས། །

ཞེས་གསུངས་པ་བཞིན་ནོ། །དེས་ན་སྡུག་བསྔལ་གྱི་རྒྱུ་ངོས་བཟུང་ནས་དེ་འགོག་པའི་ཐབས་ལ་འབད་པར་བྱའི་དེ་ཡང་སྤངས་རྟོགས་ཀྱི་ཡོན་ཏན་ཕུན་ཚོགས་དང་ལྡན་པའི་རང་ཅག་གི་སྟོན་པ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་འགྲོ་བ་གང་ལ་གང་འདུལ་གྱི་ཐབས་སྣ་ཚོགས་ཀྱི་སྒོ་ནས་སེམས་ཅན་རྣམས་སྡུག་བསྔལ་གྱི་དབའ་རླབས་བརྒྱ་ཕྲག་དྲག་ཏུ་འཁྲུགས་པའི་འཁོར་བའི་རྒྱ་མཚོ་ལས་གྲོལ་བའི་འབད་པ་སྣ་ཚོགས་བསྟན་ཅིང་། མི་ལོ་བརྒྱ་ཕྲག་ཉི་ཤུ་ཙ་ལྔ་ལྷག་ཙམ་གྱི་སྔོན་དུ་རྒྱལ་བ་ཐུབ་པའི་དབང་པོ་དེ་ཉིད་རྒྱ་གར་ཤར་ཕྱོགས་ཀྱི་གྲོང་ཁྱེར་ཞིག་ཏུ་ཤཱཀྱའི་རྒྱལ་རིགས་སུ་སྐྱེ་བ་བཞེས་ནས་རིམ་གྱིས་རྒྱལ་སྲིད་ཀྱི་དཔལ་འབྱོར་མངའ་ཐང་སོགས་ལྷུགས་ཀྱི་མཆིལ་མ་བཞིན་དུ་དོར་ནས་རབ་ཏུ་བྱུང་། རྡོ་རྗེ་གདན་དུ་སངས་རྒྱས་ནས་ཆོས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་བསྐོར་བ་ནི་འཇིག་རྟེན་ན་གླིང་ལྟར་གྲགས་ཆེའོ། །སངས་རྒྱས་ཞལ་བཞུགས་པའི་

སྐབས་སུ་ཁྲིམ་བདག་དང་། བྲམ་ཟེ་དང་། རྒྱལ་པོ་ལ་སོགས་པ་མང་པོས་སྦྱིན་བདག་མཛད་ནས་གཙུག་ལག་ཁང་རྣམས་དང་། དགོན་པ་མང་དུ་བཞེངས། དེར་སྟོན་པའི་རྗེས་འཇུག་སྐྱེ་སྡོད་འཛིན་པའི་དགེ་འདུན་རྣམས་ལ་འཚོ་བའི་ཡོ་བྱད་ཕུལ་ཞིང་། དེ་དག་གིས་ཀྱང་སེམས་ཅན་རང་རང་གི་ཁམས་དབང་བསམ་པ་དང་མཐུན་པའི་ཆོས་གསུངས་པར་མཛད། སྟོན་པ་སྐུ་མྱ་ངན་ལས་འདས་པའི་རྗེས་སུའང་སྟོན་པའི་གདན་རབས་རྣམས་ཀྱིས་དབུ་··· མཛད་ནས་དགེ་སློང་རྣམས་གཙུག་ལག་ཁང་དག་ཏུ་བཞུགས་ཤིང་། སེམས་ཅན་རྣམས་ལ་དམ་པའི་ཆོས་ཀྱི་ཆར་པ་ཕབས་ཏེ་རྒྱལ་ཁམས་ཀུན་ཏུ་སངས་··· རྒྱས་ཀྱི་བསྟན་པ་ཡུན་དུ་གནས་སོ། །

དེ་བཞིན་དུ་བོད་དུའང་སངས་རྒྱས་གཉིས་པ་སློབ་དཔོན་པད་མ་དང་····· མཁན་ཆེན་བོ་དྷི་ས་ཏྭ་གཉིས་ཐུགས་རྗེར་བརྟེན་ཆོས་རྒྱལ་རིམ་བྱོན་གྱིས་དགོན་པ་དང་། དགེ་འདུན་གྱི་སྡེ་མང་དུ་བཙུགས་ཤིང་ཐར་འདོད་སྐལ་ལྡན་གྱི་གདུལ་བྱ་ཚུ་སྐྱེས་གསར་གཞོན་རྣམས་ལ་དམ་ཆོས་བདུད་རྩིའི་ཆར་ཟླུམ་ཕབས་ནས་བཤད་སྒྲུབ་ཀྱི་དྲི་ངད་ཕྱོགས་ཀུན་ཏུ་ཁྱབ་པ་སོགས་བྱུང་བ་ཡིན། དེ་ལྟར་སྟོན་པ་སངས་རྒྱས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་བསྟན་པའི་ཉི་ཟེར་གང་དུ་ཁྱབ་··· པའི་གནས་དེར་སྟོན་པའི་བསྟན་པ་ནི་དཔེར་ན་འདབ་བརྒྱའི་བསྐྱེད་ཚལ་མངོན་··· པར་བཞད་པ་དཔལ་འགྲོའི་རྒྱན་ལ་རག་ལས་པ་བཞིན་དུ་དེར་གནས་པའི་······ དགོན་པ་དང་། དགེ་འདུན་ལ་རག་ལས་པ་ཡིན་ནོ། །

རང་ཅག་ལ་དྭགས་ཀྱི་ལྗོངས་སུའང་སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ཀྱི་ཕན་བདེ་·· མ་ལུས་པ་འབྱུང་བའི་གོ་གཅིག་བུ་རྒྱལ་བའི་བསྟན་པ་རིན་པོ་ཆེ་འདི་དཀར་··· ཕྱོགས་ཀྱི་ཟླ་བ་ལྟར་གོང་ནས་གོང་དུ་འཕེལ་ཞིང་རྒྱས་པ་ནི་གཙོ་བོ་གཙུག་··· ལག་ཁང་དང་དགེ་འདུན་རྣམས་ལ་རག་ལས་པ་ཡིན། འདིར་བརྗོད་བྱའི་དོན་

གྱི་ཉང་བོ་ནི། ལ་དྭགས་ཀྱི་དགོན་པ་རྣམས་ཀྱི་སྲུང་སྐྱོབ་དང་། དར་རྒྱས་ཀྱི་དཀའ་ངལ་ཡིན་ལ། དེ་ལ་རང་གི་བསམ་འཆར་ཚུང་ཞིག་ཕུ་ན། དེ་ཡང་དགོན་པའི་སྲུང་སྐྱོབ་དང་དར་རྒྱས་ནི་སྐུ་མང་པོ་བཞེངས་པ་དང་། གཙུག་ལག་ཁང་ཆེན་པོ་དང་། མཐོན་པོ་བཞེངས་པ་དང་། མཆོད་རྫས་རིན་ཐང་ཆེ་བ་གསེར་དངུལ་ལས་བྱས་པ་མང་པོ་ཕྱོགས་གཅིག་ཏུ་བསྡུ་བ་ཁོ···ན་ལ་ངོས་འཛིན་བྱེད་མི་དགོས་ཏེ། གཙོ་ཆེར་དགེ་འདུན་རྣམས་ཀྱི་ཐུགས་རྒྱུད་ལ་མངའ་བའི་ལུང་རྟོགས་ཀྱི་བསྟན་པ་ལ་ངོས་འཛིན་བྱེད་དགོས་པ་ཡིན། དེ་ཡང་དགོན་པ་གང་འདྲ་ཞིག་ཡིན་ཀྱང་དེ་རྣམས་འཛུགས་པ་པོ་འི་གང་ཟག··བླ་ཆེན་གྲུབ་ཐོབ་སུ་འདྲ་ཞིག་ཡིན་ཀྱང་དེ་རྣམས་ཀྱི་ཐུགས་དགོངས་ལ་གཙུག··ལག་ཁང་དང་དགེ་འདུན་གྱི་སྡེ་བཙུགས་པ་ནི་མི་ཁ་ཤས་ཀྱི་མི་ཚེའི་འཚོ་བ···སྐྱེལ་ཐབས་ཙམ་གྱི་ཆེད་དུ་མ་ཡིན་པར་ལུང་རྟོགས་ཀྱི་བདག་ཉིད་རྒྱལ་བའི····བསྟན་པ་རིན་པོ་ཆེ་ཉམས་པ་སླར་གསོ་དང་། མི་ཉམས་གོང་འཕེལ་གྱི་ཐོག་ནས་འཛིན་སྐྱོང་བྱེད་ཕྱིར་ཡིན་པ་ནི། ཆུ་བཏུང་བའི་ཆེད་དང་། གོས་གོན་པའི་ཆེད་དུ་ཡིན་པ་དང་། ཕྱོགས་ཀུན་ནས་མཚུངས་པ་ཀུན་གྱིས་མཁྱེན་ནུས་སོ། །

རྒྱུ་མཚན་དེས་ན་གལ་ཏེ་དགོན་སྡེ་གང་འདྲ་ཞིག་ཡིན་ཀྱང་དགོན་པར··གནས་དགོས་པ་ནི་རང་གི་འཚོ་བ་སྐྱེལ་བ་ཁོ་ནའི་ཆེད་ཡིན་པར་ངོས་འཛིན་བྱེད་པའི་སྐྱེ་བོ་འགའ་རེ་མཆིས་ན་དེ་ནི་ཤིན་ཏུ་ཡང་བའི་གདམ་ཡིན་ཏེ། དེ་བས་ཐབས་གཞན་གྱི་སྒོ་ནས་འཚོ་བ་སྐྱེལ་ཐབས་བྱེད་ན་ལེགས་བསམ་སྙམ། ཡང་དེང་སང་དགོན་སྡེ་མང་པོ་འི་ནང་དུ་དགེ་འདུན་པ་མང་པོ་ཞིག་དགེ་འདུན་གྱི··ཆས་གྱོན་ནས་སྤོས་བ་བསམ་གཏན་གྱི་འཁོར་ལོ་དང་། ཀློག་པ་ཐོས་བསམ་གྱི་འཁོར་ལོ་གང་ལ་ཡང་ཐུགས་བརྩོན་མི་གནས་པར་འགའ་རེ་ནི་ཚོང་བྱེད་པ

དང་། འགའ་རེ་ནི་དེ་མ་ཡིན་པའི་བྱ་བ་མང་པོ་ཞིག་ལ་ཞེན་ནས་བཞུགས་
པ་ནི་སྤྱིའི་མཐུན་སྣང་དུ་སྤྱོད་པ་འདུལ་བ་དང་མ་མཐུན་པའི་སྐྱོན་ཡིན་ཡང……
བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ང་དང་ང་འདྲ་བས་མ་གཏོགས་གང་ཟག་གིས་གང……
ཟག་གིས་ཚོད་བཟུང་བར་མི་བྱའི། ཉམས་པར་འགྱུར་ཏེ། ཞེས་
གསུངས་པ་བཞིན་གལ་ཏེ་ཐུགས་རྒྱུད་ཀྱི་རྟོགས་པ་བླ་ན་མེད་པ་དག་དང་ལྡན་
པ་འགའ་ཡན་ན་ནི་བཟོད་པར་གསོལ་ཞེས་ཞུ་རྒྱུ་དང་། མ་ཡིན་ན་ནི་སངས་
རྒྱས་ཀྱི་བསྟན་པ་ལ་ཉམས་ཆག་ཆེན་པོ་ཡོང་བའི་སྔ་ལྟས་ཡིན་ཏེ། དཔེར་
ན་ཐན་པའི་དུས་སུ་ངག་ནས་ཆར་འབེབས་བྱེད་ཀྱི་ཡོད་ཟེར་བཞིན་དོན་ལ……
གནམ་ཐང་བྱེད་པ་དང་མཚུངས་པས་གྲྭ་ཆས་བཞེས་ནས་བཞུགས་ཀྱང་རང……
ཉིད་ལ་གྲྭ་ཆས་གྱོན་པའི་བསོད་ནམས་ཙམ་ཞིག་འབྱུང་བ་མ་གཏོགས……
སངས་རྒྱས་ཀྱི་བསྟན་པ་ལ་ཆེས་ཕན་ཐོགས་པར་མི་སྣང་ལ། དེ་ཡང་སྔོན་
རྒྱ་གར་འཕགས་པའི་ཡུལ་དུ་ཐུབ་བསྟན་གྱི་ཉན་བྱེད་ས་གནས་དེའི་ལྷ་ལམ་དུ་
དུས་ཡུན་གྱི་བར་དུ་ཉམས་རྒྱུད་མཁའ་གླང་གིས་མ་བསྒྲིབས་པར་སྐལ་ལྡན་གྱི་
ཆུ་སྐྱེས་རྣམས་ལ་གནས་སྐབས་དང་། མཐར་ཐུག་གི་བདེ་བའི་ཚ་ཟེར་བཀྱེ་
ནས་བཞད་པར་བྱེད་ཅིང་། གནས་ཐུབ་པའི་རྒྱ་མཚན་གནད་ཆེན་གཅིག་ནི་
གཙུག་ལག་ཁང་རྣམས་སུ་བཞུགས་པའི་དགེ་འདུན་རྣམས་ཀྱིས་སྟོན་པའི་གསུང་
རབ་ཀྱི་དོན་ལ་ཐོས་བསམ་མཛད་པའི་ཐོག་རང་གིས་ཉམས་སུ་བླངས་ནས……
གཞན་རྣམས་ལ་ཆོས་ཀྱི་བཞེད་དོན་མ་འཁྲུལ་བར་བསྟན་པའི་ཐུགས་རྗེ་བཀའ……
དྲིན་ཁོ་ནར་བསམ་དགོས་སོ། །ཡང་དགེ་འདུན་པ་རྣམས་དམ་ཆོས་ཟབ་རྒྱས་
ཀྱི་བཞེད་དོན་ཀླུ་རྒྱལ་དང་ཐག་རིང་དུ་གནས་ན་འཛིག་རྟེན་གྱི་སྲིད་ཚལ་དུ་རྒྱས་
པའི་མི་དམངས་ཆུ་སྐྱེས་གསར་གཞོན་རྣམས་ཀྱི་ཆེད་དུ་དམ་ཆོས་ཀྱི་ཆར……
འབེབས་མི་ནུས་ཏེ། ཇི་སྐད་དུ་

ཐབས་བྱུང་དེ་རྒྱ་སྐོག་བྱུར་པ། །དེ་འཆད་པ་ནི་དཀའ་བ་ཡིན། །

ཞེས་གསུངས་པ་བཞིན་ཡིན་པས། དེས་ན་དགོན་པ་སྟོང་པ་ཐོག་ཚད་དགུ་བཅུ་ཡོད་པ་སོགས་ཅི་ཙམ་མང་ཡང་སེམས་ཅན་རྣམས་ལ་དེ་ཙམ་གྱི་ཕན་ཐོགས་མེད་དེ། དཔེར་ན་ད་ལྟ་རྒྱ་གར་ལྷོ་ཕྱོགས་སུ་བྲག་ལས་གྲུབ་པའི་ཁྲོད་ཆོས་དྲུ་མ་དང་ལྡན་པའི་གཙུག་ལག་ཁང་ངོ་མཚར་ཞིང་ཏུ་ལས་པ་ཨ···ཛན་ཏ་དང་། ཨེ་ལོ་ར་སོགས་དགོན་པ་ཡངས་ཤིང་རྒྱ་ཆེ་བ་མང་དུ་ཡོད་པ་དང་། ཡང་ཤར་ཕྱོགས་པ་ཡུལ་དྭང་སྔོན་གྱི་དགོན་རྙིང་མང་དུ་ཡོད་ཀྱང་མཛལ་ཁ་ཞུ་ཆེད་ཀྱི་ཁང་སྟོང་ཙམ་དུ་ཟད་ཀྱི་བསྟན་པ་ལ་ཆེས་ཕན་ཐོགས་པར་མི་སྣང་། དེས་ན་ཞུ་དོན་ངོ་མ་ནི་དགོན་པ་རྣམས་ཀྱི་སྲུང་སྐྱོབ་བྱེད་པ་ཁང་པ་དང་། སྐུ་དང་། ཐང་ཁ་མཆོད་རྫས་སོགས་ཁོ་ན་ལ་ངོས་འཛིན་མ་བྱེད་པར་གཙོ་ཆེར་དགེ་འདུན་རྣམས་ཀྱི་ཐུགས་རྒྱུད་ལ་མངའ་བའི་ལུང་རྟོགས་ཀྱི་བསྟན་པ་ཡར་རྒྱས་མཛད་ན་དེ་ལས་ལྷག་པའི་དགོན་པའི་ཡར་རྒྱས་མེད་དམ་སྙམ། ཡང་རང་གི་བསམ་པའི་ངོར་དགོན་སྡེ་ཕལ་ཆེ་བར་སངས་རྒྱས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་བཀའ་དང་། དེའི་དགོངས་འགྲེལ་རྗེས་འཇུག་མཁས་པའི་བསྟན་བཅོས་ལ་གསན་བསམ་བྱེད་པའི་ཐུགས་འགན་ནི་བླ་སྤྲུལ་ཁག·····གིས་དམིགས་བསལ་གྱིས་ཕྱུག་ལས་ཡིན་མ་གཏོགས་དགེ་འདུན་ཡོངས་ཀྱིས་དེ་འདྲ་ཐུགས་ཁུར་བཞེས་མི་དགོས་པའི་ཐུགས་བསམ་ཅན་གྱི་དགེ་འདུན·······མང་ཙམ་བཞུགས་ཡོད་ཤག ག་ལ་ཏེ་དེ་འདྲ་ཡོད་ཚེ་དེ་ནི་ལེ་ལོ་གསུམ་གྱི་ནང་ནས་བདག་ཉིད་ལ་བསྙས་པའི་ལེ་ལོ་ཡིན་ཞིང་། དེ་འདྲའི་ཐུགས་བསམ་དོར་ནས་སྟོན་པས་གསུངས་པའི་བདེན་བཞིའི་དོན་ལ་ཐོས་བསམ་མཛད་ཅིང་རང་གིས་ཉམས་སུ་བླངས་པའི་སྒོ་ནས་རང་གིས་གང་མཁྱེན་པ་དེ་ཚོག····གཅིག་ལས་མེད་ཀྱང་སེམས་ཅན་གཞན་ལ་འཆད་ཐུབ་ན་དོན་ཆེའོ། །

ཡང་འགའ་རེས་ཞུ་ཅིག་འདྲ་པོ་ཞིག་གིས་གཞུང་ལ་ཐོས་བསམ་བྱེད་ན་ཕན་ཅི་ཐོགས། མཁས་པ་ནི་འགྱུར་མེ་ཐུབ་ཟེར་བའི་སྐྱེ་བོ་འགའ་ཡང་མཐོང་གིས། དེ་འདྲ་གདན་ནས་གནང་མི་དགོས་དེ། རྩ་བ་ཉིད་ནས་ཆོས་ཀྱི་གནད་དོན་མི་ཤེས་པ་ལས་ཅུང་ཟད་ཤེས་པ་མཆོག་ཡིན་ཞིང་ནམ་ཞིག་གི…ཚེ་ན་མཁས་པའང་འགྱུར་སྲིད། ཅེས་དེ་མ་འབྱུང་ན་ཡང་ས་པཎ་གྱིས་

ཤིན་ཏུ་རྒས་པར་འགྱུར་ཚེ་ཡང་། །ཐོས་པ་མང་དུ་བཙལ་བར་བྱ། །
ཕྱི་མར་ཐོས་པས་ཕན་པ་ཙམ། །སྣོམ་པ་ཡིས་ཀྱང་ག་ལ་ཕན། །

ཞེས་གསུངས་པ་བཞིན་སྐྱེ་པ་སྔ་ཕྱི་མཁས་ལེན་པའི་གང་ཟག་ཅིག་ཡིན་ན་ནི་ཕྱི་མ་དམ་ཆོས་ལ་ཐོས་བསམ་བྱེད་པར་བག་ཆགས་བཞག་པའི་དགོས་པ…ཡོད།། ཡང་སྦྱིན་བདག་རྣམས་ཀྱིས་ཀྱང་སངས་རྒྱས་ཀྱི་གསུང་ཟབ་མོའི་རྗེས་སུ་འཇུག་ཅིང་དགེ་འདུན་རྣམས་ལ་བརྩི་བཀུར་ཆེན་པོ་བྱེད་པའི་ཐོག་དགོན་སྡེ་རྣམས་ཀྱི་མཆོད་གཞི་སོགས་ཉགས་པ་ལ་སྐྱར་གསོ་བར་མ་ཉམས…..གོང་འཕེལ་གྱི་ཕྱག་ལས་གནང་ཞིང་། གཙུག་ལག་ཁང་གི་སྲུང་སྐྱོབ་བྱེད་ན་རྒྱལ་བསྟན་ཡུན་རིང་དུ་གནས་ཤིང་། སེམས་ཅན་གྱི་བདེ་སྐྱིད་གོང་ནས་གོང་དུ་འཕེལ་ལོ། །དེ་ལྟར་དགེ་འདུན་རྣམས་འཆད་ཉན་ལ་བརྩོན་ཞིང་། སྦྱིན་བདག་རྣམས་བསྙེན་བཀུར་ལ་བརྩོན་ན་དེ་ལས་ལྷག་པའི་དགོན་པའི་སྲུང་…སྐྱོབ་མེད་ཅིང་། གཙུག་ལག་ཁང་ཡར་རྒྱས་ཀྱིས་དཀའ་ངལ་སེལ་ཐབས་ཀྱང་དེ་རང་ཡིན་པར་སེམས་སོ།། ||

परिसंवाद-गोष्ठी में सम्मिलित विद्वान्

- ओ ग्यन् डो दुल्
  केन्द्रीय बौद्ध विद्यासंस्थान, लेह, लदाख
- श्री कालीचरण
  उपशिक्षानिदेशक, दिल्ली
- प्रो० कृष्णनाथ
  काशी विद्यापीठ, वाराणसी
- श्री के० अंगरूप लाहुली
  पंजाब यूनिवर्सिटी, चण्डीगढ़
- श्री क्यब् जे शेस् रिम्पोछे
  रिजोङ् गोनपा
  लदाख
- श्री गे कछिन् लोब्जंग छोस् फेल्
  लदाख
- श्री गे कोन् छोग् नमग्यल्
  लदाख
- श्री गेनन् सोनम्
  लामा युरु
  लदाख
- श्री गेशे कुन् छोग् वङ् दुस्
  केन्द्रीय बौद्ध विद्यासंस्थान, लेह, लदाख
- श्री गेशे जङ् छुब् छुलठिम
  केन्द्रीय बौद्ध विद्यासंस्थान, लदाख

- श्री ग्यल् वङ् ड्रुग् छेन् रिन्पोछे
  हेमिस गोनपा
  लदाख
- श्री ङवङ् छेरिंग
  लदाख
- श्री जमयङ् ग्यल् छन्
  केन्द्रीय बौद्ध विद्यासंस्थान, लदाख
- डा० जी० एस० गहाबरा
  जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू
- श्री छेवंग रिगजिन
  प्राध्यापक
  केन्द्रीय बौद्ध विद्यासंस्थान, लेह, लदाख
- श्री टशी पलजोर
  प्रधानाचार्य
  केन्द्रीय बौद्ध विद्यासंस्थान, लेह, लदाख
- श्री नवांग छेरिंग
  प्राध्यापक-अंग्रेजी
  केन्द्रीय बौद्ध विद्यासंस्थान, लेह, लदाख
- श्री प्रेमसिंह जीना
  अध्यापक-अर्थशास्त्र
  केन्द्रीय बौद्ध विद्यासंस्थान, लेह, लदाख
- श्री फुन्छोक् छेरिंग
  लेह, लदाख
- प्रो० रमेशचन्द्र तिवारी
  काशी विद्यापीठ, वाराणसी
- प्रो० रामशंकर त्रिपाठी
  सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

- श्री लोब्जंग छेवांग

  प्राध्यापक–तुलनात्मकदर्शन

  केन्द्रीय बौद्ध विद्यासंस्थान, लेह, लदाख

- श्री एस० सी० सक्सेना

  प्राध्यापक–इतिहास

  केन्द्रीय बौद्ध विद्यासंस्थान, लेह, लदाख

- श्री सत्यदेव कौशिक

  प्राध्यापक–संस्कृत

  केन्द्रीय बौद्ध विद्यासंस्थान, लेह, लदाख

- श्री सोनम वांग चुग्

  प्राध्यापक–हिन्दी

  केन्द्रीय बौद्ध विद्यासंस्थान, लेह, लदाख